संस्कृतविश्वविद्यालय-ग्रन्थमालायाः 91 पुष्पम्

प्राकृतभाषा-अभिलेख

(ईसापूर्व प्रमुख प्राकृत अभिलेखों का समीक्षण)

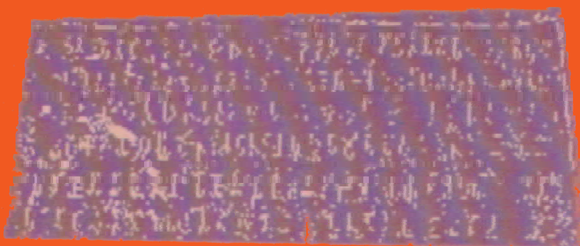

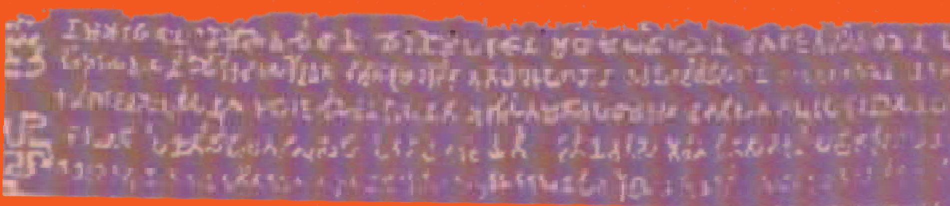

प्रधान-सम्पादक
प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति (प्रभारी)

सम्पादक
डॉ. जयकुमार उपाध्ये

शोध-प्रकाशनविभागः
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः
नवदेहली-110016

संस्कृतविश्वविद्यालय-ग्रन्थमाला 91 पुष्प

प्राकृतभाषा-अभिलेख

(ईसापूर्व प्राकृत कतिपय अभिलेखों का समीक्षण)

प्रधान सम्पादक
प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति (प्रभारी)

सम्पादक
डॉ. जयकुमार उपाध्ये

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः

नई दिल्ली-110016

प्रकाशकः

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः

बी–4, कुतुबसांस्थानिकक्षेत्रम्, नवदेहली–110016

© प्रकाशकाधीनः

प्रकाशनवर्षम् : 2014

पुनर्मुद्रणम् : 2025

ISBN : 81-87987-65-0

मूल्यम् : ₹ 650.00

मुद्रकः

डी.वी. प्रिन्टर्स

97–यू.बी., जवाहरनगरम्, देहली–110007

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति (प्रभारी)
श्री लाल बहादुर शास्त्री
राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
बी-4, कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र,
नई दिल्ली-110016

Prof. Ramesh Kumar Pandey
Vice Chanceller (I/C)
Shri Lal Bahadur Shastri
Rashtriya Sanskrit Vidyapeetha
B-4, Qutab Institutional Area,
New Delhi-110016

पुरोवाक्

प्रस्तुत पुस्तक को सुधी पाठकों के करकमलों में समर्पित करते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है, क्योंकि प्राकृतभाषा एवं अभिलेखशास्त्र के विश्रुत विशेषज्ञों के शोधपूर्ण आलेखों का यह संग्रह प्राकृतभाषा की समृद्ध परम्परा का प्रामाणिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

प्राकृतभाषा देश की एक प्रमुख धरोहर है, जिसका संरक्षण एवं संवर्धन भारतीयता की समग्रता के साथ अभिज्ञान के लिए अनिवार्य है। प्राकृत एक भाषा न होकर एक भाषिक समुदाय है। इस भाषा में दार्शनिकसाहित्य, काव्यसाहित्य, चरितसाहित्य के साथ-साथ वैज्ञानिक विषयों पर भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है, जिस पर गहन गवेषणा अपेक्षित है।

अभिलेख जैसी सम्पदा में ऐतिहासिक परिज्ञान के अतिरिक्त सामाजिक उत्थान की कई प्रवृत्तियाँ हैं। प्राकृत साहित्य के अभिलेखों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि जीवन में ज्ञान मीमांसा सर्वोपरि है। लोकभाषा के रूप में प्राकृतभाषा अति प्राचीनकाल से भारतवर्ष की अस्तित्व में रही है। साहित्य को संजीवनी प्रदान करने के लिए माधुर्य युक्त पदावली की आवश्यकता होती है, जिसमें अर्थ की स्पष्टता, उच्चारण की सहजता और मानवीय मूल्यों के विकास की प्रवृत्ति हो। प्राकृत अभिलेख इस दिशा में अत्यन्त सहायक हैं। प्राचीन साहित्य के व्यवस्थित अध्ययन में इन शिलालेखों का अध्ययन अत्यन्त उपादेय है। इनमें मानवता के पोषक सिद्धान्त अंकित हैं तथा साहित्य के विकास की अनेक विधाओं के बीज विद्यमान हैं।

ईसा-पूर्व के प्राचीन शिलालेखीय साहित्य का विचार ही इस ग्रन्थ का मूल केन्द्र है। इन अभिलेखों में प्रयुक्त भाषा स्थानीय विशेषताओं के कारण अनेक प्रकार की मानी गयी है। उनमें देशभेद के कारण विविधता दिखाई देती है। जनभाषा होने के कारण समय-समय पर उनमें परिवर्तन भी होते रहें हैं। मागधी प्राकृत मगध देश की राष्ट्रभाषा भी थी। मगध के अधिपति सम्राट् अशोक ने अपने साम्राज्य के प्रमुख नगरों तथा चतुर्दिक् सीमान्तों पर मागधी-प्राकृत में शिलालेखों में राजाज्ञाओं, आवश्यक सूचनाओं तथा लोककल्याणकारी उपदेशों को पाषाण पर उत्कीर्ण कराकर जनसामान्य के लिए सुलभ कराया था। उन्होंने प्राकृतभाषा में अनेक स्तम्भ-लेख, गुहालेख, शिलालेख ब्राह्मी एवं खरोष्ठीलिपि के माध्यम से उत्कीर्ण कराया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में अभिलेखों के प्राकृत मूलपाठ संस्कृत छाया एवं हिन्दी अनुवाद के साथ जिज्ञासुओं के लिए उपलब्ध कराया गया है। विशेष रूप से प्राकृतभाषा विभाग के उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के लिए यह सामग्री अत्यन्त उपयोगी है।

इसके प्रकाशन में शोध एवं प्रकाशन विभाग की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सम्पादन के गुरुतर भार का निर्वहन करने वाले प्राकृतभाषा विभाग को और विशेष रूप से डॉ. जयकुमार उपाध्ये जी को मैं हार्दिक साधुवाद देता हूँ, जिन्होंने पूर्ण तन्मयता से शोधनिबन्धों के संकलन एवं सम्पादन के कार्य को सम्पन्न किया है।

यह ग्रन्थ वैदिक एवं श्रमण संस्कृति के उन्नायक सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य विद्यानन्द जी की मुनि दीक्षा के 51वें वर्ष के पावन प्रसङ्ग पर प्रकाशित हो रहा है, यह परम हर्ष का विषय है। उनका आशीर्वचन समस्त लेखकों एवं पाठकों के लिए अतिशय कल्याणकारी होगा, इस विश्वास के साथ इस ग्रन्थ को श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली ने उनके कर कमलो में समर्पित कर अपने को धन्य समझता हूँ।

05 मार्च, 2014 **रमेश कुमार पाण्डेय**

आचार्यश्री विद्यानंदजी मुनिराज का आशीर्वचन

प्राचीनकाल से ही प्राकृत एवं संस्कृत दोनों भाषाएँ समानान्तर रूप में प्रवाहित होती रही हैं। इन दोनों ही भाषाओं ने माँ सरस्वती को असंख्य आश्चर्यजनक उपहार दिये हैं। महाकवि कालिदास ने इन दोनों भाषाओं की उपादेयता का एक सार्थक उदाहरण कुमारसंभव में शिवपार्वती के विवाह के प्रसंग में प्रस्तुत किया है, जहाँ मंगल-पाठ हेतु स्वयं सरस्वती उपस्थित होती हैं और शिव-पार्वती दोनों के लिए क्रमशः संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में अपना मंगल-पाठ प्रस्तुत करती हैं। यथा-

'द्विधाप्रयुक्तेन च वाङ्मयेन सरस्वती तन्मिथुनं नुनाव।
संस्कारपूतेन वरं वरेण्यं वधूं सुखग्राह्यनिबन्धनेन॥'

कुमारसंभव 7-90

पंचतंत्र में माँ सरस्वती का चिर वरदान निम्नलिखित संदर्भ से स्पष्ट हो रहा है यथा -

'एकोदराः पृथग्ग्रीवा अन्योऽन्यफलभक्षिणः।
असंहता तं विनश्यन्ति भारुण्डा इव पक्षिणः॥'

पंचतन्त्र 5.94

प्राकृत और संस्कृत इन दोनों भाषाओं की स्थिति उस भारुण्ड पक्षी के समान है, जिसका पेट एक ही होता है, पर मुख दो होते हैं। दोनों मुख एक ही उदर का पोषण करते हैं। यदि वे दो मुख परस्पर लड़ने लगें और एक दूसरे को विष खिलाकर मारने लगें तो समझ लेना कि वह पक्षी ही शीघ्र मर जायेगा।

अतः प्राकृत के सुधीजनों को संस्कृत का और संस्कृत के सुधीजनों को प्राकृत का भी संपोषक होना चाहिए। यह तो आज के युग की महती आवश्यकता है। यदि आज हम सब एक–दूसरे से मिलकर सौजन्य भाव से कार्य करें तो भारतीय संस्कृति का समुन्नयन सुनिश्चित है।

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली के प्रकाशन विभाग द्वारा 'प्राकृतभाषा अभिलेख' नामक ग्रन्थ का लोकार्पण हो रहा है। यह प्रसंग सारस्वत लोक को संतोष प्रदान करनेवाला है।

प्राकृतभाषा में शिलालेखों की अमूल्य विरासत उपलब्ध होती है, अतः भारतीय उदात्त मनीषा को समझने के लिए प्राकृतभाषा का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। यह ग्रन्थ छात्रोपयोगी, लोकोपयोगी होने की यथार्थता को प्रस्तुत करता है। संस्कृत विश्वविद्यालय में प्राकृत संगोष्ठी की सफलता सराहनीय है। संस्कृत विद्यापीठ एवं प्राकृतभाषा विभाग को उनके सार्थक प्रयास के लिए मंगल आशीर्वाद प्रदान करता हूँ।

दिनांकः 27/02/2014 **आचार्य विद्यानंद मुनि**

सम्पादकीय

प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विरासत के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए प्राकृत भाषा का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। प्राकृतभाषा लोकभाषा के नाम से सर्वत्र ख्यातिप्राप्त है। ईसापूर्व की पांचवीं शताब्दी में वडली (अजमेर), राजस्थान में प्राप्त प्रथम शिलालेख प्राकृतभाषा एवं ब्राह्मीलिपि में निबद्ध है। उसके शोध पूर्ण अध्ययन से यह जानकारी प्राप्त हुई है कि हमारे पूर्वजों ने इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को शिलालेखों में खुदवाकर सुरक्षित रखकर भावी पीढ़ी को उन ऐतिहासिक प्रसंगों से परिचित कराने का महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों के रुप में निर्माण किया है। परवर्ती काल में सम्राट् अशोक एवं सम्राट् खारवेल के शिलालेखों में प्रजा के हित में शासकों द्वारा किये गये महत्त्वपूर्ण कार्यों की जानकारी प्राप्त है। यह कार्य वर्तमान शासकों को भी अनुकरण हेतु प्रासंगिक है।

श्रद्धेय **स्व. प्रो. वाचस्पति उपाध्यायजी** (पूर्व-कुलपति श्री.ला.ब.शा.रा.सं.वि.) दूरगामी चिन्तन के धनी थे। वे संस्कृत विश्वविद्यालय के मध्य प्राकृतभाषा अध्ययन की सार्थकता एवं प्रासंगिकता को जानते थे। इसलिए उन्होंने अपने अग्रज संस्थापक कुलपति **स्व. पद्मश्री डॉ. मण्डन मिश्रजी** के स्वप्न को साकार करने हुए, राष्ट्र-निर्माण में प्राच्य-विद्या अध्ययन की आवश्यकता का उदात्त संकल्प साकार किया है। उसी श्रृंखला में आपके संरक्षण में विद्यापीठ के साहित्यसंस्कृतिसंकाय प्रमुख **प्रो. सुदीप कुमार जैन** के पावन प्रवर्तन में त्रि-दिवसीय राष्ट्रीय संस्कृत संगोष्ठी का आयोजन करने का निर्धारण किया गया। इसमें गुरुवार दिनांक 10/03/2011 को **"ईसापूर्व प्राकृत अभिलेखों का समीक्षण"** विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित करने का सौभाग्य मुझे

प्राप्त हुआ। **प्राकृतभाषा विभाग के अध्यक्ष एवं संगोष्ठी संयोजक के** पद पर रहकर शैक्षणिक योगदान देने का अवसर प्राप्त हुआ था।

इस संगोष्ठी में कुल पन्द्रह शोध-आलेख प्रस्तुत हुए। जिनमें प्राकृतभाषा, ब्राह्मी-लिपि, भाषिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, प्राशासनिक, दार्शनिक एवं राजनैतिक आदि विशिष्ट, बिन्दुओं पर आधारित आलेख प्रस्तुत हुए।

परमपूज्य राष्ट्रसन्त श्वेतपिच्छ आचार्य **श्री विद्यानंद जी मुनिराज**, इतिहास, पुरातत्त्व एवं प्राच्य-लिपि विद्या के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। मैंने भी उनके सान्निध्य में रहकर अध्ययन करते हुए ब्राह्मी-लिपि कार्यशाला, कुन्दकुन्द भारती प्राकृत शोध संस्थान एवं जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के संस्कृत अध्ययन केन्द्र के माध्यम से ज्ञान प्राप्त किया। मैं पुनः गुरुदेव के चरणों में सविनय वन्दन करता हूँ कि उन्होंने इस सम्पादित कृति को अपना आशीर्वाद प्रदान कर कृतार्थ किया है और इस शोध-लेखन के कार्य को प्रोत्साहित किया है।

इस सम्पादन के कार्य में प्राचीन अभिलेखों के मूल पाठों को जोड़ने की आवश्यकता महसूस हुई। अतः सम्राट् अशोक एवं सम्राट् खारवेल के सम्पूर्ण शिलालेखों के मूलपाठों को जोड़ा है। प्रस्तुत कार्य को सफल करने में दर्शनसंकायप्रमुख एवं जैनदर्शन विभागाध्यक्ष **प्रो. वीरसागर जैन** का निरन्तर सार्थक मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। विभागीय प्राध्यापिका **डॉ. कल्पना जैन** का सहयोग सराहनीय है। संगणक यंत्र द्वारा **विक्रम सिंह** का सहयोग प्रंशसनीय है। वे सब धन्यवाद के पात्र हैं।

मुझे पूर्वविश्वास है, यह कि कृति विश्वविद्यालय के भावी स्नातक एवं स्नातकोत्तर छात्रों, प्रबुद्ध पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी होगी। इस के सम्पादन-कार्य में जो त्रुटियाँ रह गई हैं उन्हें बताने की कृपा करे ताकि आगामी संस्करण में उन्हें सुधारा जा सके।

दिनांक 10/02/2014 **डॉ. जयकुमार उपाध्ये**

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
1.	प्राकृत-विद्या की अमूल्य विरासत सम्राट अशोक एवं सम्राट खारवेल के अभिलेख	प्रो. डॉ. राजाराम जैन	1
2.	हाथीगुम्फा लेख के आधार पर कलिङ्ग नरेश खारवेल की उपलब्धियाँ और उसकी तिथि का विवेचन	प्रो. किरणकुमार थपल्याल	56
3.	हेलिओदोर का बेसनगर गरुड़ अभिलेख एक ऐतिहासिक अध्ययन	प्रो. किरणकुमार थपल्याल	66
4.	ईसापूर्व अभिलेखों की ब्राह्मी लिपि का एक विश्लेषण	डॉ. रवीन्द्र कुमार वशिष्ठ	77
5.	खारवेल शिलालेख में निहित दार्शनिक तत्त्व	प्रो. वीरसागर जैन	83
6.	भारतीय पुरालेखों का क्रमिक विकास एवं विवेचन	डॉ. जयकुमार उपाध्ये	88
7.	सम्राट् अशोक के विविध अभिलेखों के पाठों की तुलनात्मक समीक्षा	डॉ. कल्पना जैन	102
8.	Human Rights in the Inscription of Ashoka	डॉ. केशव नारायण मिश्र	115

9. सम्राट् अशोक के अभिलेखों में दार्शनिक तत्त्व	डॉ. कुलदीप कुमार	121
10. सम्राट् खारवेल के शिलालेख की सूत्रात्मक शैली की दृष्टि से समीक्षा	डॉ. रंजना जैन	125
11. ईसापूर्व शिलालेखों की भाषा पर तत्कालीन शौरसेनीप्राकृत का प्रभाव	डॉ. मंजूषा संठी	132
12. सम्राट् अशोक के अभिलेखों का सामाजिक मूल्यांकन	डॉ. रजनीश शुक्ल	140
13. सम्राट् अशोक के अभिलेखों में अंकित शैक्षिक तत्त्वों का अनुशीलन	श्रीमती श्वेता बार्ष्णेय	157
14. सम्राट् खारवेल अभिलेख का भाषिक वैशिष्ट्य	दिनेश	162
15. परिशिष्ट		
(अ) सम्राट् अशोक अभिलेख के मूलपाठ		171
(ब) सम्राट् खारवेल अभिलेख के मूलपाठ		253
(क) ब्राह्मीलिपि, हिन्दी वर्णमाला, स्वरचिह्न, संयुक्त व्यञ्जन एवं संख्याएं		
(ड) प्राकृत साहित्य की महत्ता पर भाषण	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी	269

प्राकृत-विद्या की अमूल्य विरासत सम्राट् अशोक एवं खारवेल के अभिलेख

प्रो. राजाराम जैन, नोएडा

किसी भी देश के इतिहास के निर्माण में प्रमुख रूप से 5 प्रकार के साक्ष्यों की आवश्यकता होती है -

(1) प्राचीन साहित्य में उपलब्ध ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ-संकेत

(2) ग्रन्थ-प्रशस्तियाँ

(3) लोकोक्तियाँ

(4) पुरातात्विक-सामग्री एवं

(5) शिलालेख, प्राचीन मूर्ति एवं धातु-लेख

इनमें से शिलालेखीय साक्ष्य सर्वाधिक प्रामाणिक एवं महत्वपूर्ण माने गये हैं क्योंकि उनमें पुराण-ग्रन्थों के समान पाठ-पाठान्तर नहीं किये जा सकते।

यह तो सर्वविदित ही है कि स्वतंत्र-भारत का संवैधानिक नाम, कलिंग के हाथीगुम्फा-शिलालेख की दसवीं पंक्ति में उल्लिखित भारतवर्ष (भरधवस) के आधार पर देशरत्न डॉ. राजेन्द्रप्रासाद, पं. जवाहरलाल नेहरु, डॉ. भीमराव अम्बेडकर जैसे राष्ट्रिय नेताओं की उपस्थिति में संविधान-निर्मात्री परिषद् ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया था, पौराणिक-साहित्य के आधार पर नहीं।

इतिहासकारों के अनुसार पुराकाल में लेखन-कार्य की परम्परा नहीं थी। गुरु-शिष्य की कण्ठ-परम्परा से अथवा श्रुत या श्रवण-परम्परा से ज्ञान-सरिता प्रवाहित रहती थी। यही कारण है कि ऋग्वेद की ऋचाओं को श्रुति (अर्थात् ऋषि-मुनियों के श्रीमुख से शिष्यों द्वारा सुन-सुनकर ज्ञान प्राप्त करते रहने की कण्ठ-परम्परा) तथा जैनागमों एवं बौद्धागमों का सुत्त (अर्थात् गुरु-शिष्य की कण्ठ-परम्परा से सम्यग्ज्ञान-राशि को प्राप्त करने की परम्परा) कहा जाता था। श्रुत-ज्ञान की यह परम्परा स्मृति-शक्ति की तीक्ष्णता एवं एकाग्रता के कारण कुछ वर्षों तक अबाधगति से चलती रही।

किन्तु समय सदा एक सा नहीं रहता। प्रकृति के नियमानुसार परिस्थितियों में परिवर्तन होता ही रहता है। विदेशी आक्रमण, जन-संख्या में क्रमिक वृद्धि, तज्जन्य पारिवारिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तनों के कारण चित्तवृत्ति में परिवर्तन और एकाग्रता में बिखराव होना स्वाभाविक ही है। इन सब कारणों से परम्परा-प्राप्त श्रुति-ज्ञान तथा श्रुतज्ञान की सुरक्षा की दृष्टि से ऋषि-मुनियों के मन में उसे लिपिबद्ध करने का विचार अवश्य आया होगा। अतः उन्होंने उस कार्य में किस-किस प्रकार की लेखनोपकरण-सामग्री का प्रयोग किया होगा, उनकी लिपि क्या रही होगी, इसकी जानकारी नहीं मिल सकी है और यह वस्तुतः एक स्वतन्त्र शोध का विषय है।

बडली शिलालेख का महत्त्व - ईसा-पूर्व 433 का एक शिलालेख अजमेर (राजस्थान) के बडली (बर्ली) नामके ग्राम में अवश्य मिला है, जो एक शिला पर टंकित था और ग्रामीणों ने उसे तम्बाकू कूटने का सिलवट बना रखा था। इसी कारण उस शिलालेख के कुछ अक्षर घिस-मिट गये थे फिर भी पुरातत्व-विद्या के महर्षि महापण्डित **गौरीशंकर हिराचन्द ओझा** ने अविश्रान्त परिश्रम कर उसका अध्ययन कर घोषित किया था कि यह शिलालेख तीर्थंकर महावीर के परिनिर्वाण (ई. पू. 527) के 84 वर्ष के बाद शालामालिनी ने मज्झमिका-नगरी में, जो कि प्राचीन काल में मेवाड़-राज्य की

राजधानी थी, वहां कि शिला पर तीर्थंकर महावीर या अन्य किसी व्यक्ति की स्मृति में उत्कीर्ण कराया था। इसकी **भाषा प्राकृत** एवं **लिपि ब्राह्मी** है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार प्रो. डॉ. **राजबली पाण्डेय** ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है। शिलालेख से निम्न तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है –

(1) तीर्थंकर महावीर के परिनिर्वाण (ई. पू. 527) के 84 वर्षों में शिलाओं पर छैनी–हथौड़ी से खोद–खोद कर लिखने की परम्परा चल पड़ी थी। उस समय लेखनोपकरण की यह सामग्री प्रचलित थी।

(2) उस समय की लोकप्रिय जन–भाषा प्राकृत थी।

(3) ब्राह्मी–लिपि तत्कालीन लोकप्रिय एवं सर्वगम्य लिपि थी।

(4) तत्कालीन राजस्थान तथा उसके आसपास प्राकृत एवं ब्राह्मी–लिपि का प्रयोग सामान्य रूप में चल रहा था।

(5) ई.पू. 443 के आसपास तक कण्ठ–परम्परा से निःसृत ज्ञान–प्रवाह को सुरक्षा की दृष्टि से लेखनीबद्ध करने की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा तथा।

(6) ओझा जी के उक्त पाठालोचन के अनुसार उक्त शिलालेख का मूल पाठ निम्न प्रकार है –

सिद्धं .... वीराय भगवताय चतुरसीति वस .... का ये सालामालिनिय .... रंनि .... विठ .... माज्झमिके ....।

वर्तमान में उक्त शिलालेख अजमेर (राजस्थान) के राजकीय म्यूजियम में सुरक्षित है।

सम्राट अशोक के अभिलेख –

तत्पश्चात् मौर्यवंशी सम्राट अशोक ऐसा प्रथम शासक हुआ, जिसने विविध संघर्षो के बाद अपने साम्राज्य का विस्तार किया और

कलिंग के भीषण खूंखार-युद्ध के बाद तथा वहीं की एक अनाथ लघु कन्या-अमीता की क्रोधाकुल डॉट-फटकार से पीड़ित होकर उसने (अशोक ने) खड्ग युद्ध का सदा-सदा के लिये त्याग कर दिया और आगे से धर्म-युद्ध (अर्थात् सर्वधर्म-समन्वय एवं लोककल्याणकारी-कार्य) करते रहने की दृढ़ प्रतिज्ञा की थी। सम्राट अशोक के जितने भी अभिलेख उपलब्ध हुए हैं, वे सभी उसी के सुपरिणाम हैं और जो आगम-साहित्य के समान ही जन-मानस को भाव-शुद्धि, ज्ञान-पिपासा के तृप्ति और प्राणि-मात्र की सुरक्षा और सेवा प्रदान करते रहने की प्रेरणा देते हैं।

अभिलेखों की भाषा-प्राकृत एवं लिपि ब्राह्मी एवं खरोष्ठी

चूँकि अशोक का साम्राज्य भारत के कोने-कोने तक विस्तृत था, इस कारण साम्राज्य के सभी स्थलों पर उसका बार-बार आना-जाना सम्भव न था। अतः उसने प्रजाजनों के हितार्थं समकालीन सहजगम्य लोकप्रिय जन-भाषा प्राकृत एवं ब्राह्मी तथा खराष्ठी-लिपियों के टंकण-कार्य के लिये चारों दिशाओं से भाषा, उक्त दोनों लिपियों के मर्मज्ञों तथा कुशल-शिल्पियों टंककों को बुलाकर उनसे अपनी धर्माज्ञाएँ अथवा धर्मानुशासनों को टंकित करने का आदेश दिया होगा और साम्राज्य के विभिन्न प्रमुख केन्दों में स्थापित करने का आदेश दिया होगा।

अशोक के अभिलेखों का वर्गीकरण एवं उनके प्राप्तिस्थल

कुछ लोगों की यह धारणा रही है कि अशोक का एक-एक अभिलेख पृथक्-पृथक् स्वतंत्र शिलापट्ट तथा स्तम्भ पर टंकित कराकर स्थापित कराया गया होगा। किन्तु यह धारणा भ्रामक एवं तथ्य से परे हैं। केन्द्र-स्थलों की दूरी, वेगगामी वाहनों की कमी और व्ययसाध्य तथा श्रमसाध्य होने के कारण वह कार्य संभव भी न था। अतः इन जटिलताओं से बचने के लिये एक-एक विशाल शिलापट्ट पर एकाधिक अथवा समग्र शिलालेख तथा एक-एक विस्तृत उत्तुंग-स्तम्भ पर एकाधिक अथवा समग्र स्तम्भ-लेखों एवं शिलापट्ट पर ही गुहाभिलेखों को उत्कीर्ण

कराकर उन्हें प्रमुख केन्द्रों पर स्थापित कराया गया था, जिससे सभी धर्मनुशासनों का सभी स्थलों की जनता को जानकारी मिल सके। पुराविदों ने कठिन परिश्रम कर उस तथ्य की खोज एवं उनका वर्गीकरण किया है, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है : -

(i) **शिलाभिलेख** - (अर्थात् विस्तृत शिलाओं पर टंकित एकाधिक अथवा समग्र शिलालेख)

ऐसे शिलालेख भारत के नौ केन्द्रों पर स्थापित कराये गये थे। इनकी विशेषता यह रही कि किसी शिला पर 1-1, किसी-किसी पर 2-2, किसी शिला पर 13 और किसी पर 14 शिलालेख। इस प्रकार मूल शिलालेखों की कुल संख्या तो मात्र 14 हैं किन्तु प्रतिलिपियाँ मिलाकर कुल संख्या 116 उपलब्ध है। यथा -

(1) शूर्पारक (सोपरा, महाराष्ट्र) (ब्राह्मी-लिपि) - (आठवें शिलालेख की छह पंक्तियाँ मात्र) - 1

(2) भुइगाम (महाराष्ट्र) (ब्राह्मी-लिपि) - (नौवें शिलालेख की ग्यारह पंक्तियां मात्र) - 1

(3) धौली (उड़ीसा) (ब्राह्मी-लिपि) - (एक से दस तक तथा चौदहवां शिलालेख) - 13

(4) जौगड (उड़ीसा) (ब्राह्मी-लिपि) - (13 तथा दो अन्य शिलालेख इनके कुछ अंश नष्ट हो गये हैं।) - 13

(5) शाहबाजगढ़ी (पेशावर, पाकिस्थान) (खरोष्ठी-लिपि)- 14 (प्रथम शिलालेख से लेकर ग्यारहवें तक तथा तेरहवाँ एवं चौदहवाँ शिलालेख। इनसे कुछ दूरी पर बारहवाँ शिलालेख भी उपलब्ध है। यह शिलालेख खरोष्ठी-लिपि में लिखित है।)

(6) मानसेहरा (हजारा जिला, पाकिस्तान) (खरोष्ठी-लिपि) - 14 प्रथम शिलालेख से तेरहवें तक तथा चौदहवें की कुछ पंक्तियां

मात्र। यह शिलालेख भी खरोष्ठीलिपि में लिखित है।

(7) गिरिनगर या गिरनार (सौराष्ट्र, गुजरात) (ब्राह्मी-लिपि) - 14

(समस्त 14 शिलालेख उपलब्ध एवं सुपठनीय)

(8) इरागुड़ी (आन्ध्र-प्रदेश-कुर्नूल जिला तथा अनन्तपुर जिले में उपलब्ध) - 16

(ब्राह्मी-लिपि) (समस्त 14 शिलालेख त्रुटित रूप में उपलब्ध तथा अन्य दो शिलालेख भी इसी शिला पर टंकित किये गये।)

(9) कालसी (चकरौता, देहरादून, उत्तराखण्ड) (ब्राह्मी-लिपि)- 14

(समस्त 14 शिलालेख उपलब्ध किन्तु धुंधले हो गये हैं।)

निम्न केन्द्रों पर भी 1-1 अथवा 2-2 या कुछ अधिक शिलालेख उपलब्ध हुए हैं -

(1) इरागुडी - (आन्ध्र प्रदेश, कुर्नूल जिला तथा गूंटी अनन्तपुर जिले में) (ब्राह्मी-लिपि) - 14

(पृथक्-पृथक् चट्टानों के टुकड़ो में त्रुटित रूप में समस्त शिलालेखों की कुछ-कुछ पंक्तियां-मात्र उपलब्ध हैं।)

(2) राजुल-मण्डगिरि (आन्ध्र प्रदेश के कुनूर्ल - जिले के जूटूरू ग्राम में) (ब्राह्मी-लिपि) - 2

(प्रथम एवं द्वितीय शिलालेख की कुछ पंक्तियां मात्र उपलब्ध हैं।)

(3) ब्रह्मगिरि (मैसूर के जानगि-हल्ल ग्राम में) (ब्राह्मी-लिपि)- 2 (प्रथम एवं द्वितीय शिलालेख के अंश मात्र)

(4) सिद्दापुर (पूर्वोक्त के समान ही) (खरोष्ठी लिपि) - 2

(5) जटिंग-रामेश्वर- पूर्वोक्त के समान ही (ब्राह्मी-लिपि) - 2

(6-7) गवीमठ एवं पालकीगुंडु (मैसूर, कर्नाटक) (ब्राह्मी-लिपि)- 1
(ध्वस्त शिलाखण्ड पर आंशिक रूप में उपलब्ध)

(8) मास्की (मैसूर, कर्नाटक) (ब्राह्मी-लिपि) (ब्राह्मी-लिपि)- 1
(ध्वस्त रूप में कुछ पंक्तियां मात्र उपलब्ध)

(9) सासाराम-(सासाराम-बिहार) की चन्दनपीर नामकी पहाड़ी पर उपलब्ध) (ब्राह्मी-लिपि) - 1

(कब्रगाह बना लेने से वर्तमान में यह मुसलमानों का तीर्थस्थल बना हुआ है।)

(10) रूपनाथ-(मध्यप्रदेश के जबलपुर जिला में स्थित) (ब्राह्मी-लिपि)-1

(11) गुजर्रा-(मध्यप्रदेश के दतिया जिले में स्थित(ब्राह्मी-लिपि)- 1

(12) वैराट (राजस्थान-जयपुर जिले में भीमडूँगरी तथा बीजक-पहाड़ी पर उपलब्ध दो शिलालेख।) - 2 (ब्राह्मी-लिपि)

इस प्रकार 14 मूल शिलालेख तथा उनकी 102 प्रतिलिपियां कुल 116 अभिलेख विभिन्न स्थलों पर प्राप्त हुए हैं।

यहाँ पर ध्यातव्य है कि गिरिनगर की शिला पर उपलब्ध 14 मूल शिलालेख सम्पूर्ण एवं पठनीय हैं। अतः उन्हीं की विशेष ख्याति हुई तथा विविध पाठ्यक्रमों में उन्हें ही प्रथम स्थान दिया गया है।

(ii) स्तम्भाभिलेख -

पाषाण-स्तम्भों पर उपलब्ध होने के कारण अशोक के ये अभिलेख स्तम्भ-लेख के नाम से प्रसिद्ध हैं। मूल स्तम्भ-लेखों की कुल संख्या-7 है और वे उन्हीं-उन्हीं स्थानों पर उपलब्ध हुए हैं, जहाँ-जहाँ पूर्वोक्त शिलालेख स्थापित नहीं किये गये थे।

ये स्तम्भ-लेख विभिन्न 6 प्रमुख केन्द्रों पर उपलब्ध हुए हैं तथा शिलालेखों के समान इनकी भी प्रतिलिपियां उपलब्ध हुई हैं। किसी

स्तम्भ-लेख पर 6 तो किसी पर 7 और किसी-किसी पर 1-1 स्तम्भलेख टंकित कराए गये थे। उनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है-

(1) दिल्ली-टोपरा स्तम्भलेख

वर्तमान में यह स्तम्भ-लेख दिल्ली में स्थापित है। इसमें सातों मूल अभिलेख टंकित हैं। इस स्तम्भ-लेख की एक अन्य विशेषता यह भी है कि अन्तिम सातवाँ स्तम्भ-लेख भी इसी में उपलब्ध है जबकि अन्य स्तम्भों में वह नहीं मिला है। इसके लेख पठनीय भी है। अतः यही स्तम्भ-लेख सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर सका है। मूलतः यह स्तम्भ-लेख अम्बाला (हरियाणा) के टोपरा-ग्राम में स्थित था जिसे दिल्ली का **सुलतान फीरोज तुगलक (** सन् 1351-1388) के टोपरा ग्राम से उठवाकर दिल्ली ले आया था और जिज्ञासा-वश उसने पण्डितों से उसे पढवाने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु उसे कोई पढ न सका था। इस कारण वह बड़ा निराश हो गया। फीरोज तुगलक ने इस स्तम्भलेख को जिस परिसर में स्थापित कराया था, वर्तमान में वह **फरोजशाह का कोटला** के नाम से प्रसिद्ध है।

उक्त मूल सात स्तम्भ-लेखों की यत्र-तत्र कुल 37 प्रतिलिपियाँ भी मिली हैं, जो निम्न प्रकार हैं -

(2) दिल्ली-मेरठ स्तम्भ (ब्राह्मी-लिपि) -

यह स्तम्भ-लेख भी उक्त सुलतान फिरोज तुगलक सन् 1356 में मेरठ से दिल्ली ले आया था। दुर्भाग्य से वह टूट-फूट कर पाँच टुकड़ों में बिखर गया था, इस कारण उसे रायल एशियाटिक सोसायटी बंगाल, कलकत्ता ले जाया गया था। इसमें प्रथम छह स्तम्भलेख टंकित कराये गये थे।

(3) दिल्ली-कोसम (कौशाम्बी) स्तम्भ (ब्राह्मी-लिपि) -

इस स्तम्भ पर भी प्रथम छह लेख टंकित कराये गये थे। यह कोसम (कौशाम्बी) में स्थापित किया गया था। बाद में उसे इलाहाबाद के

किले में सुरक्षित कर दिया गया। इसके प्रथम दो लेख छोड़कर बाकी सभी भग्नावस्था में हैं।

आगे चलकर इसी स्तम्भ पर गुप्त सम्राट्समुद्रगुप्त (चौथी सदी ईस्वी) की प्रयाग–प्रशस्ति तथ मुगल सम्राट् जहाँगीर (सन् 1605) के एक अभिलेख को भी टंकित करा दिया गया था।

(4) लौरिया–अरेराज–स्तम्भ (ब्राह्मी–लिपि) –

यह स्तम्भ बिहार के चम्पारण जिले के अरेराज में उपलब्ध है। इसमें प्रथम छह लेख टंकित हैं। इसके प्रायः सभी लेख पठनीय हैं।

(5) लौरिया–नन्दनगढ़–स्तम्भ (ब्राह्मी–लिपि) –

यह स्तम्भ बिहार के चम्पारण जिले के नन्दनगढ़ में उपलब्ध है। इसमें भी प्रथम छह लेख टंकित हैं और पठनीय हैं।

(6) रामपुरवा–स्तम्भ (ब्राह्मी–लिपि) –

यह स्तम्भ बिहार के बेतिया जिले के रामपुरवा–ग्राम में उपलब्ध है। इसमें भी प्रथम छह लेख टंकित हैं और प्रायः सभी पठनीय हैं।

(iii) गुहाभिलेख (ब्राह्मी–लिपि) –

इनकी कुल संख्या 03 है और ये सभी बिहार के गया जिले के समीप बराबर–नागार्जुन नामकी पहाड़ी की गुफा में उपलब्ध हुए हैं।

इस प्रकार उक्त सभी मूल शिलालेखों, स्तम्भ–लेखों तथा गुहाभिलेखों की कुल संख्या 14+7+3=24 है और उनकी कुल प्रतिलिपियाँ 130 (मूल को छोड़कर) और ये सभी कुल मिलाकर 32 केन्द्रों में उपलब्ध हैं।

अशोक के शिलालेख विस्मृति के गर्भ में –

सम्राट् अशोक के बाद अथवा मौर्य–शासन की समाप्ति के बाद समय बदला। परिस्थितियां बदली। विदेशियों के आक्रमण हुए। शासक

भी बदले। विदेशी शासकों ने अपनी-अपनी बस्तियां स्थापित कीं। वे अपने साथ अपनी-अपनी बोलियां/भाषाएं भी लाये, जिनका प्रभाव स्थानीय बोलियों / भाषाओं पर पड़ा। इस कारण अशोककालीन जनप्रिय भाषा-प्राकृत तथा ब्राह्मी एवं खरोष्ठी लिपियां क्रमशः प्रभावित होकर विस्मृत होने लगी।

फाहियान को शिलालेख के वर्ण्य-विषय को कोई भी न बता सका-

जिस समय चीनी यात्री **फाहियान** (चौथी सदी ईस्वी) भारत में आया तो जिज्ञासा वश उसने यह जानाना चाहा कि पाषाणों या स्तम्भों पर क्या-क्या लिखा है। उनका वर्ण्य-विषय क्या है? उसने स्वयं उन्हें सीखना भी चाहा, किन्तु दुर्भाग्य से उस समय उसे कोई भी उन्हें पढने अथवा पढाने अथवा उनका वर्ण्य-विषय बतलाने वाला नहीं मिला। इस कारण वह (फाहियान) बड़ा निराश हो गया। चूंकि वे (अभिलेख) पाषाणोत्कीर्ण थे, अतः वह लगभग 6-7 सौ प्राच्य भारतीय पाण्डुलिपियों के साथ कुछ अभिलेख भी ले जा सकता था किन्तु बोझिल होने के कारण ही वह सम्भवतः एक भी पाषाण-खण्ड न ले जा सका।

तात्पर्य यह है कि अशोक के वे अभिलेख चौथी सदी ईस्वी के आसपास तक तथा भाषा (प्राकृत) और उनकी दोनों लिपियाँ विस्मृत हो चुकी थीं।

अभिलेखों के खोज की लोमहर्षक कहानी -

17वीं-18वीं सदी तक ये अभिलेख अतीत की लोमहर्षक कहानी कैसे बनें। वे कब और कैसे प्रकाश में आये यह कहानी भी बड़ी सनसनीखेज किन्तु रोचक है। इतिहासकारों ने इसका श्रमसाध्य आकलन किया है जो सूत्र-शैली में निम्न प्रकार है -

इस खोज का प्रथम सूत्रधार था दिल्ली का तुगलक वंशी सुलतान फिरोजशाह (चौदहवीं सदी) जिसने अपने सन्देश-वाहकों से सूचना मिलते ही **टोपरा** (अम्बाला) तथा **मेरठ** से प्राचीन-लिपि वाले

दो स्तम्भों को सैकड़ो मन रुई में लिपटवाकर विशेष यान-वाहन में लदवाकर उन्हें अत्यन्त सावधानीपूर्वक दिल्ली में मंगवाया। जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है, प्रयत्न करने पर भी उनमें टंकित लेखों को कोई भी न पढ़ सका। इससे सुल्तान बड़ा दुःखी हो गया। तत्पश्चात् **सम्राट अकबर** ने भी उन्हें पढ़वाने का घोर प्रयत्न किया किन्तु कोई भी उन्हें पढ़ या समझ न सका।

तत्पश्चात् सोलहवीं सदी में कुछ पुर्तगालियों ने तत्कालीन मुंबई के समुद्र-तट पर अधिकार कर उन्होंने जब इधर-उधर भ्रमण किया, तो उन्हें एलिफैण्टा की गुफा में एक प्राचीन अभिलेख मिला। उन्होंने उसे पढ़ने का प्रयत्न किया, किन्तु न तो वे उसे स्वयं पढ़ सके, न कोई दूसरा ही उसे पढ़ सका। बहुत बाद में पढ़े जाने पर विदित हुआ कि वह अभिलेख आठवीं-नौवीं सदी का था।

अठारहवीं सदी के पूर्वार्ध के लगभग दिल्ली के एक पादरी सा (नाम अज्ञात) ने किसी स्थल पर एक स्तम्भ पर अज्ञात प्राचीन-लिपि में लिखा हुआ एक लेख देखा। उसकी लिखावट भी अत्यन्त धुंधली हो गई थी। इस कारण वे उसे पढ़ तो नहीं सके किन्तु उसके महत्वपूर्ण होने की उन्होंने अपने कुछ मित्रों से चर्चा अवश्य कर दी। इसी समय के आसपास एक-दूसरे पादरी हाजिस सा. को किसी ने सूचना दी कि **गया** (बिहार) के पास एक पहाड़ी गुफा में एक पत्थर पर तीन लेख ऊकेरे हुए हैं किन्तु उन्हें भी कोई पढ़ नहीं सका। जिज्ञासा-वश वे पादरी हाजिस सा. स्वयं उस गुफा के लेखों की खोज में निकले किन्तु आसपास के लोगों ने उन्हें चोर-डकैत समझकर उनकी हत्या ही कर डाली।

सन् 1758 में इतिहास प्रेमी हेरिंगटन सा. ने साहस बटोरकर उक्त अभिलेखों को खोज तो लिया किन्तु वे उन्हें पढ़ नहीं सके।

उसी समय एक अन्य व्यक्ति को दिल्ली में एक स्तम्भ पर वैसा ही अभिलेख देखने को मिला। किन्तु वे भी उसे पढ़ नहीं सके।

उन्होंने उसके महत्व की चर्चा कर दूसरों के मन में जिज्ञासा अवश्य उत्पन्न कर दी। इसी समय के आसपास **प्रयाग, गिरनार** तथा **शाहबाजगढ़ी** (वर्तमान में पाकिस्तान) में भी उसी प्रकार के कुछ अभिलेख मिले, किन्तु उन्हें भी उस समय तक कोई पढ़ नहीं सका था।

जेम्स-प्रिंसेप द्वारा अद्भुत खोज -

प्राच्य भारतीय विद्या के अनन्य प्रेमी एवं अत्यन्त जिज्ञासु विद्वान् जेम्स प्रिंसेप ने योरुपीय होते हुए भी उन अभिलेखों की उपलब्ध प्रतिलिपियों को सम्म्मुख रखकर एक-एक अक्षर की लिखावट को खोज-खोजकर मिलान करने का प्रयत्न किया। उसमें उन्हें कुछ सफलता भी मिली।

उन्होंने सर्वप्रथम ब्राह्मी-लिपि का अ-कार, इ-कार तथा अनुस्वार की पहचान कर ली। तत्पचश्चात् उन्होंने य-कार, व-कार की पहचान भी कर ली।

इसी बीच उन्होंने (जेम्स प्रिंपेस ने) प्राकृत-भाषा के विविध रूपों का गहन अध्ययन किया और सन् 1839 में ब्राह्मी-लिपि के समस्त वर्णों का ज्ञान प्राप्त कर दिल्ली स्थित पूर्वोक्त टोपरा-स्तम्भ पर खुदे हुए अभिलेख तथा गिरनार (जूनागढ़) के अभिलेखे पढ़ने प्रारम्भ कर दिए।

किट्टो का सराहनीय कार्य -

इसी बीच एक अन्य योरुपीय विद्वान् किट्टो को धौली (उड़ीसा) के घने जंगल में एक अन्य अभिलेख वाली शिला मिल गयी। उस पर दीर्घकाल से कीचड़ लगते-लगते वह सूख गया था। जब किट्टो सा. उसे साफ कर रहे थे, तभी एक मादा-भालू ने उन पर आक्रमण कर दिया। उन्होंने साहस जुटाकर उसे मार डाला। किन्तु उस दिन वे उक्त अभिलेख-स्तम्भ की पूरी सफाई किए बिना ही अपने आवास पर लौट आए। अगले दिन वे पुनः उसकी सफाई कर उसकी

प्रतिलिपि लेने पहुंचे, तो उसी मृत भालू के दो बच्चों ने उन पर भीषण आक्रमण कर दिया। किट्टो सा. को प्रथम बार यह अनुभव हुआ कि मृत भालू के बच्चे भी अपनी मां के हत्यारे से बदला लेने से चूकते नहीं। खैर जैसे–तैसे उन्होंने उन बच्चों को मार भगाया और अपनी घायल अवस्था में भी उस अभिलेख की नकल कर उसे जेम्स प्रिंसेप के पास भेज दिया।

सन् 1859 से सन् 1905 के मध्य और भी कुछ अभिलेख मिले। उनके अध्ययन से विदित हुआ कि वे किसी **देवानंपिय** द्वारा लिखवाए गए हैं। अतः यह भी खोजबीन की जाने लगी कि वह **देवानंपिय पियदसी** था कौन? वह कोई देव था या मानव?

डॉ. टर्नर का योगदान - उस समय संयोग से लंका सिविल सर्विस में कार्यरत योरुपीय विद्वान टर्नर (Turner) सा, जो कि उस समय A Dictionary of Pali Proper Names जैसा अतिमहत्वपूर्ण कोश–ग्रन्थ तैयार कर रहे थे, उन्होंने **दीपवंश** नामक बौद्ध–ग्रन्थ में उल्लिखित **चन्द्रगुप्त मौर्य** की **देवानंपिय पियदसि** की उपाधि की जेम्स–प्रिंसेप को जानकारी दी। इस सूचना से यह स्पष्ट हो गया कि उक्त उपाधि अशोक–मौर्य की थी।

आगे के दीर्घकाल अध्ययनों से यह भी जानकारी मिली कि वह (अशोक) मगध का सम्राट था। सारनाथ के एक स्तम्भलेख से यह भी विदित हुआ कि मगध की राजधानी पाटिलपुत्र थी। इस प्रकार दर्जनों गवेषक विद्वानों के शताधिक वर्षों के कठोर परिश्रम के बाद यह विदित हो सका कि देवानंपिय पियदसि अशोक–मौर्य मगध–साम्राज्य का अधिपति था तथा उसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। वह अशोक–मौर्य एक आदर्शवादी सम्राट था तथा उसने अनेक शिलालेख एवं स्तम्भलेख टंकित करवाकर उन्हें अपने साम्राज्य के विभिन्न केन्द्रों में स्थापित करवाये थे।

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है चीनी–पर्यटक फाहियान (चौथी सदी ईस्वी) एवं हे्नत्सांग (सातवीं सदी ईस्वी) जब भारत आए,

तो वे इन अभिलेखों के वर्ण्य-विषय को स्थानीय लोगों से सुनना-समझना चाहते थे किन्तु उस समय तक वे (स्थानीय लोग) प्राकृत-भाषा एवं ब्राह्मी-लिपि या खरोष्ठी-लिपि की पहचान ही भूल चुके थे। इससे उन पर्यटकों को बड़ी निराशा हुई। फिर भी अपने अनुमान से उन्हें तथागत बुद्ध की स्तुतियाँ मानकार उन्हें नमस्कार कर वे वापस लौट गए।

तात्पर्य यह कि तीसरी-चौथी सदी तक उन प्राचीन अभिलेखों की भाषा एवं लिपियों का पठन-पाठन उपेक्षित हो चुका था, जो लगभग अठारहवीं सदी के पूर्वार्ध तक उपेक्षित-विस्मृत बना रहा। किन्तु धन्य हैं वे फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेज एवं भारतीय विद्वान्, जिन्होंने उन्हें प्राच्य भारतीय-विद्या की अपूर्व विरासत मानकर उन पाषाणोत्कीर्ण अभिलेखों का कठोर परिश्रम कर बहुआयामी अध्ययन एवं मूल्यांकन किया और प्राच्य भारतीय इतिहास के लेखन के लिए प्रशस्त-मार्ग तैयार किया। इस दृष्टि से जेम्स प्रिंसेप, सेनार्ट, बुलन्हर, फ्रेंक, स्मिथ, फ्लीट, मायकेल्सन, ल्यूडर, कनिंघम, थॉमस, हुल्ट्स, डॉ. ओझा, डॉ. भाण्डारकर, डॉ. जायसवाल, डॉ. मुखर्जी, डॉ. बरुआ, डॉ. पाण्डेय, डॉ. अग्रवाल आदि दर्जनों महामनीषियों के एतद्विषयक अवदानों को कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकेगा।

खड्गयुद्ध छोड़कर धर्मयुद्ध की प्रतिज्ञा -

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कलिंग-युद्ध में अशोक ने जो लाखों लोगों का संहार किया था, उससे उसका स्वयं का हृदय दहल उठा था और उसी समय से उसने रणयुद्ध का त्यागकर धर्मयुद्ध करने की प्रतिज्ञा की थी, जिसकी झलक उसके अभिलेखों में मिलती है। प्रजाजनों की दैनिक-सुविधाओं, अनुशासन, प्रशासनिक व्यवस्था तथा नगर-विकास सम्बन्धी जो-जो कार्य सम्राट अशोक ने किए थे, प्रतीत होता है कि वर्तमानकालीन PWD City Corporation आदि के कार्य-कलाप उसी के अनुकरण हैं। इन सबसे प्रभावित होकर सुप्रसिद्ध इतिहासकार ने अपने इतिहास H-G-Wells ग्रन्थ - **'इतिहास की रूपरेखा'** में लिखा है -

'इतिहास के वर्गो–वर्गो में भीड़ लगाए सैकड़ो राजा–महाराजाओं के नामों में सम्राट अशोक का एकमेव नाम नक्षत्र के समान दमकता प्रतीत होता है। बोल्गा (रूस) नदी से लेकर जापान तक उसके नाम से अभी तक लोगों के मन में आदर–सम्मान घर किए हुए है। चीन, तिब्बत, बर्मा, मंगोलिया, श्रीलंका, भूटान, सिक्किम तथा भारत में उसकी महानता की स्मृतियाँ अभी तक जीवन्त हैं। कांस्टान्टाइन या शार्लमेन के केवल नाम ही लोगों को परिचित हैं, किन्तु उनसे कहीं अधिक लोगों को अशोक के नाम से केवल परिचय ही नहीं, अपितु उनकी स्मृति के प्रति भी आदर–भाव है।'

शम्सी–सिराज का आंखों देखा वर्णन –

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि सुल्तान फिरोजशाह टोपरा (अम्बाला) से अभिलेख वाला स्तम्भ दिल्ली ले आया था। उसका आंखों देखा रोचक तत्कालीन इतिहासकार **शम्सी–सिराज** ने इस प्रकार किया है–

- 'उस समय मैं बारह वर्ष का था और हजरत मीरखाँ के पास पढ रहा था। सुलतान फिरोजशाह हमेशा दिल्ली के आसपास शिकार खेलने जाया करता था। खिजराबाद दिल्ली से 90 कोस दूर है। उस विभाग में घूमते हुए टोपरा गांव में उसे यह पत्थर का बड़ा खम्बा दिखाई दिया। उसने उसे दिल्ली ले जाकर रखने का निश्चय किया।'
- 'उस खम्भे को जमीन पर किस प्रकार गिराया जाय, इस पर उसने बहुत विचार किया तथा आसपास के लोगों को घुड़सवार तथा पैदल–सेना के साथ वहां हाजिर होने का हुक्म दिया। उन्हें कहा गया कि लोग अपने साथ जो कुछ भी औजार और साधन हों उन्हें अपने–अपने साथ लेकर तुरन्त हाजिर हों'।
- 'उस खम्भे के पास सेमल की रूई के ढेर लगाये गये। उसके चारों ओर रुई से लपेटा गया और उस खम्भे के नीचे से मिट्टी

को धीरे-धीरे खोदकर निकाला गया तो वह खम्भा रुई पर धीरे-धीरे लुढ़क गया। फिर धीरे-धीरे नीचे की रुई निकाल कर सूखे घास और कच्ची चमड़ी उस पर लपेटी गई'

- 'उसके बाद उस खम्भे को 42 पहियों वाली बड़ी मजबूत और खासी लम्बी गाड़ी बनवाई गई। लम्बे-लम्बे मजबूत रस्से बांधे गये। हजारों लोगों ने मिलकर बड़ी कठिनाई से उसे गाड़ी पर लादा। फिर हर एक पहिये की धुरा को एक-एक मजबूत रस्से से बांधा गया और प्रत्येक रस्से को खींचने के लिये दो-दो सौ लोग लगाये गये और कुल मिलाकर 8400 लोगों ने इकट्ठी मेहनत कर उस गाड़ी को खींचा। इस प्रकार उसे जमुना नदी के किनारे तक ला पहुचांया।'
- 'वहां सुल्तान की सवारी ने खुद उस खम्भे की अगवानी की। असंख्य नावें वहां तैयार थीं। उनमें से कुछ तो इतनी बड़ी थी कि पांच से सात हजार टन का बोझ ढो सकती थीं। सबसे छोटी नाव भी दो हजार मन का बोझ ढो सकती थी। बड़ी हिफाजत से उस खम्भे को नावों पर चढाया गया और उसे फिरोजाबाद (पुरानी दिल्ली) ले आया गया।'
- 'उसके बाद जुम्मा-मस्जिद के पास उस खम्भे को खड़ा करने के लिये चूने तथा पत्थर का एक खास ठोस चबूतरा बनवाया गया। वह खम्भा वहां कैसे-कैसे पुहंचाया गया। हजारों हजार उस्ताद करीगर उसे सीढी दर सीढी किस-किस प्रकार उठा-उठाकर खिसकाकर ऊपर-ऊपर ले गये और आखिर में तीर के समान सीधा किस प्रकार उसे खडा कर रोप दिया गया, इसका भी विस्तृत वर्णन शम्सी-शिराज ने किया है।

यह घटना सन् 1356 ई. की है। कुछ लोग भ्रमवश फीरोजशाह की लाट भी कहते हैं। मात्र एक खम्भे (स्तम्भ) टोपरा से 150 मील दूर दिल्ली लाने में जब इतनी कठिनाई हुई तब कल्पना

की जा सकती है कि सम्राट् अशोक को अपने 33 अभिलेख और उनकी प्रतिलिपियां भारत के कोने–कोने में भेजकर स्थापित कराने में कितनी–कितनी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा होगा?

अभिलेखों में प्रयुक्त भाषा–

प्राकृत–भाषा स्थानीय विशेषताओं के कारण 25 प्रकार की मानी गई है। उनमें देश–भेद के कारण एकरूपता नहीं रही। जनबोली होने के कारण उनमें समय–समय पर परिवर्तन भी होते रहे।

मागधी–प्राकृत मगध–देश की राष्ट्रभाषा थी। अतः मगधाधिपति सम्राट् अशोक ने अपने साम्राज्य के प्रमुख नगरों तथा चतुर्दिक सीमान्तों पर मागधी–प्राकृत में अपने अभिलेखों में आवश्यक सूचनाएं, आदेशों तथा लोककल्याणकारी उपदेशों को तत्कालीन–उपलब्ध लेखनोपकरण–सामग्री अर्थात् पाषाण पर छैनी–हथौड़ी से टंकित कराकर प्रचारित–प्रसारित कराए थे। पूर्व में इसकी चर्चा की जा चुकी है।

चूंकि तत्कालीन भारत के पश्चिमोत्तर–सीमावर्ती–राज्यों (वर्तमानकालीन पाकिस्तान तथा कान्धार–अफगानिस्तान) आदि में पैशाची और चूलिका–पैशाची प्राकृतें लोकप्रिय थीं, अतः मागधी–प्राकृत में उनका भी मिश्रण मिलता है– जैसे मागधी का अहं पैशाची में हकं आदि। इसी प्रकार वहां की लोकप्रिय लिपि खरोष्ठी थी (दाई ओर से बाई ओर लिखी जाने वाली लिपि) कहा जाता है कि इसी लिपि से अरबी और फरसी–लिपियों का विकास हुआ। यद्यपि यह मत सर्वसम्मत नहीं है। उर्दू–लिपि भी इसका एक परवर्त्ती विकसित रूप है। उक्त पैशाची–प्राकृत का प्रभाव वर्तमान में भी पंजाब की बोली में पाया जाता है। जैसे घड़ा के स्थान में कडा। इस प्रकार उक्त खरोष्ठी–लिपि में वहां अशोक के अभिलेख उत्कीर्णित कराए गए थे।

सम्राट् अशोक के अभिलेख वर्तमानकालीन भारत की चारों दिशाओं में मिले हैं और जैसा कि कहा जा चुका है, उन अभिलेखों में

शौरसेनी, महाराष्ट्री, ओड्र, पैशाची एवं चूलिका-पैशाची से मिश्रित मागधी-प्राकृत है। फिर भी मागधी-प्राकृत को प्रमुख प्राकृत मानकर उसकी प्रमुख विशेषताओं की, जो कि सर्वत्र मिलती हैं, यहां चर्चा की जा रही है -

(1) र-कार के स्थान में ल-कार

	संस्कृत	**मागधी-प्राकृत**	**सन्दर्भ**
जैसे-	राजा	लाजा	स्तम्भ लेख 1/1, 6/1
	पुरुषः	पुलिशे	स्तम्भ 1/7
	वारिचरेषु	वालिचलेसु	स्तम्भ 2/4

(2) उ-कार के स्थान ई-कार

	संस्कृत	**मागधी-प्राकृत**	**सन्दर्भ**
जैसे-	पुरुषः	पुलिसे	धौली शिला 1/7-8

(3) कर्ता कारक एकवचन में अथात् विसर्ग के स्थान में ए-कार

	संस्कृत	**मागधी-प्राकृत**	**सन्दर्भ**
जैसे-	धर्मः	धंमे	स्तम्भ 2/2
	कृतः	कटे	स्तम्भ 2 / 4
	पुरुषः	पुलिसे	धौली शिला 1/7-8

(4) स, श, ष के स्थान पर श अथवा स

	संस्कृत	**मागधी-प्राकृत**	**सन्दर्भ**
जैसे-	शरीरं	शरीरं	शिनकोट अभि. 1/6
	शतं	शतं	शिला. 13/1
	प्रियदर्शी	प्रिअद्रशी	प्रथम शिला. (शाहवाजगढ़ी) 1/1
	पुरुषः	पुलिसे, पुलिशे	धौली शिला. 1/ 7-8

अन्य विशेषताएं निम्न प्रकार हैं -

स्वर -

प्राकृत-भाषा में पारस्परिक कुछ परिवर्तनों के साथ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ, एवं अं स्वर होते हैं । बाकी के अर्थात् ऋ, ऐ, औऱ, एवं अः ये स्वर न होकर इनके रूपों में-परिवर्तन हो जाता है। जैसे -

	संस्कृत	मागधी-प्राकृत	सन्दर्भ
	ऋ-अ सुकृतं	सुकटं	स्तम्भ 2/7
	कृतानि	कटानि	स्तम्भ 5/20
लोप=	दुष्प्रति दुपटि	स्तम्भ 3/3	
	क्रोधः कोधे	स्तम्भ 3/3	
	चक्रवाकः	चकवाके	स्तम्भ 5/3
	प्रवर्तयेयुः	पवतयेयु	स्तम्भ 4/5
ऐ=इ	ऐहिकाय	हिदतिकाये	स्तम्भ 3/5
	विहिसायै	विहिसाये	स्तम्भ 5/10
	एतस्मै एताये	स्तम्भ 7/12	
	चैव चेव	स्तम्भ 7/15	
औ=उ	पौर्णमास्याम्	पुंनमासियं	स्तम्भ 5/11
ओ=	पुत्रपौत्रिकी	पुतापपोतिके	स्तम्भ 7/21
अः=ए	प्रियः पिये	स्तम्भ 5/1	
	अरुणः	अलुने	स्तम्भ 5/3
	हंसः	हंसे	स्तम्भ 5/3

ओ= ध्रुवः धुवो शिला. 1/12

एकः एको शिला. 1/11

व्यंजन

अभिलेखों की मागधी–प्राकृत में निम्नलिखित व्यंजन पाए जाते हैं–

क - वर्ग	–	क ख ग घ (कण्ठ्य)
च - वर्ग	–	च छ ज झ ञ (तालव्य)
ट - वर्ग	–	ट ठ ड ढ (मूर्धन्य)
त - वर्ग	–	त थ द ध न (दन्त्य)
प - वर्ग	–	प फ ब भ म (ओष्ठ्य)
		य र ल व (अन्तस्थ)
		श स ह (उष्म)

इन व्यंजनों के उदाहरण अभिलेखों में सर्वत्र उपलब्ध हैं। इतना अवश्य है कि णकार के स्थान पर नकार का प्रयोग किया गया है – यथा – देवाणांप्रिय के लिये देवानंपिया (उदाहरण सर्वत्र उपलब्ध) इसी प्रकार –

घ के स्थान में ह

जैसे – लघुका =लहुका (शिला. 12/3)

थ के स्थान में ठ

जैसे – अनर्थाय – अनठाय (स्तम्भ 5/10)

ध के स्थान में ढ

जैसे – वर्धिता – वढिता (स्तम्भ 7/20)

औषधयः – ओसुढानि (शिला. 7/20)

त के स्थान में ट

जैसे - कृतः - कटे (स्तम्भ 7/20)

द के स्थान में ड

जैसे - द्वादश –दुवाडस (स्तम्भ 6/1)

ष के स्थान में स

जैसे - पाषण्डाः - पासंडा (स्तम्भ 6/7)

रेफ का लोप

जैसे - ईर्ष्या - इस्सा

निर्ग्रन्थेषु = निगंठेसु (स्तम्भ 7/16)

ज्ञ के स्थान में न

जैसे - ज्ञातिका–नातिका (स्तम्भ 4/17)

ज्ञ के स्थान में ञ

जैसे - राज्ञो–राञो (शिला 1/7)

संयुक्त व्यंजन-परिवर्तन

जैसे - क्ष के स्थान में ख

जैसे - वीक्ष्य - वेख (स्तम्भ 3/3)

चक्षु - चखु (स्तम्भ 2/3)

पक्षी - पखि (स्तम्भ 2/4)

परीक्षाया - पलिखाया (स्तम्भ 1/4)

क्ष=छ - यथा - अक्षति - अछति (शिला. 13/7)

त्र=त -	यथा -	सर्वत्र	सवत	(शिला. 2/4)
	-	पारत्र	पालतं	(स्तम्भ 4/7)
त्स=छ -	यथा -	चिकित्सा	चिकीछा	(शिला. 2/4)
त्य=च -	यथा -	प्रत्युपगमनं	पचूपगमनं	(स्तम्भ 6/8)

त्म=त (अन्त्य व्यंजन लोप)

-	यथा -	आत्मना	अतना	(स्तम्भ 6/8)

न्य=न (अन्त्य यकार लोप)

-	यथा -	अन्ये	अनानि	(स्तम्भ 7/20)
ध्य=झ -	यथा -	मध्यमा	मझिमा	(स्तम्भ 1/7)
प्त=त -	यथा -	गुप्ति	गुती	(शिला. 12/3)
श्र=स -	यथा -	श्रेष्ठं	सेष्टे	(शिला. 4/10)
		शुश्रूषया	सुसुयाया	(स्तम्भ 7/19)

ल्य=ल (अन्त्य यकार लोप)

-	यथा -	कल्याणं	कलाणं	(शिला. 12/3)

स्य=स (अन्त्य यकार लोप)

-	यथा -	लोकस्य	लोकस	(स्तम्भ 6/4)
		जनस्य	जनस	(स्तम्भ 4/19)
		धर्मस्य	धमस	(स्तम्भ 12/9)

स्या=सि - यथा -	स्यात्	सिया	(स्तम्भ 7/22)
ष्ट=ठ - यथा -	अष्टमी	अठमी	(स्तम्भ 5/15)
	अपकृष्टेषु	अपकठेसु	(स्तम्भ 6/5)

सम्राट् खारवेल के हाथीगुम्फा-शिलालेख के विषय में पूर्व में लिखा जा चुका है। जहां तक उसके व्याकरण का प्रश्न है, उसकी भाषा मिश्रित मागधी-प्राकृत है, क्योंकि उसमें शौरसेनी प्राकृत के शब्द रूप (जैसे - गोरथगिरि के लिए गोरधगिरि पं. सं. 7, द्वितीये के लिये दुतिये पं. सं. 4, तृतीये के लिए ततिये पं. सं. 2, तौर्य के लिए तुरिय पं. सं. 16, रथ के लिए रध पं. सं. 4 आदि) भी मिलते हैं। अतः विद्वानों ने इसे ओड्र-मागधी-प्राकृत भी कहा है।

इस शिलालेख में ऋ तथा रेफ मात्राओं के प्रयोग नहीं मिलते। तीनों सकारों में से केवल दन्त्य सकार (स) का प्रयोग मिलता है।

इसी प्रकार ञ, ढ तथा फ के प्रयोग नहीं मिलते। क्ष के स्थान में ख का प्रयोग मिलता है। ण तथा न इन दोनों के प्रयोग मिलते हैं। थ के स्थान में ध का प्रयोग किया गया है।

संयुक्त-व्यंजनों के प्रयोग क्वचित्-कदाचित् ही मिलते हैं, इस कारण शिलालेख का पाठक उसके अर्थ का भाव को समझने में कठिनाई का अनुभव नहीं करता।

इस शिलालेख की लिपि ब्राह्मी-लिपि है।

अभिलेखों में प्रयुक्त लिपियां

ईसा पूर्व से लेकर ईस्वी सन् के बाद लगभग दूसरी-तीसरी सदी तक भारतीय अभिलेखों में ब्राह्मी एवं खरोष्ठी लिपियों के प्रयोग मिलते हैं और परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ भाषा-परिवर्तन के समान ही लिपियों में भी परिवर्तन अथवा विकास होता रहा। ब्राह्मी-लिपि गुप्त-लिपि, कुटिल-लिपि, नागरी-लिपि, बंगला-लिपि, शारदा-लिपि,

दक्षिणी-लिपि, (शैली), पश्चिमी-लिपि (शैली), पिटक-शिरा-लिपि, तेलगु-लिपि, कन्नड़ (शैली) लिपि, तमिल-लिपि (शैली) और ग्रन्थ-लिपि (शैली) के रूप में विकसित हुई। विद्वानों में एतद्विषयक सर्वसम्मति तो नहीं बन सकी, फिर भी अधिकांश विद्वानों ने इस विकास-परम्परा को स्वीकार किया है।

अद्यावधि उपलब्ध एवं पठित प्राचीनतम भारतीय अभिलेखों के लिपि ब्राह्मी एवं खरोष्ठी-लिपियां हैं। ब्राह्मी लिपि के उद्‌भव का स्रोत क्या है? इस पर भी विद्वानों में सर्वसम्मति नहीं बन सकी। एक पक्ष का कथन है कि प्राचीनकाल में लिखने की तो परम्परा ही नहीं थी, केवल गुरु-शिष्य की कण्ठ-परम्परा से ज्ञान-धारा निसृत होती रही। अन्य पक्ष का कथन है कि ब्राह्मी-लिपि का मूल-स्रोत सहस्रों वर्ष पूर्व की सिन्धु-लिपि हैं। किन्तु कुछ विद्वानों ने जिज्ञासावश उन दोनों (अभिलेखों एवं सिन्धुलिपि) के वर्णाक्षरों का तुलनात्मक अध्ययन किया और घोषित किया की दोनों की लिपियों में कोई सामञ्जस्य नहीं बैठता।

दसवीं सदी में अरब-विद्वान् अलवेरुनी जब भारत आया तो उसने बताया कि एक समय ऐसा आया था कि भारतीय लोग प्राचीनागत लेखन-कला भूल गए थे किन्तु बाद में दैवी-प्रेरणा से पाराशर-सुत व्यास ने उसे पनुः खोज लिया था। इस तथ्य का अनुमान यह किया जा सकता है कि वह विस्मृत ब्राह्मी-लिपि सम्भवतः सिन्धु हडप्पाकालीन लिपि रही हो। किन्तु इस पर भी गवेषक विद्वानों में सहमति नहीं बन सकी।

पुरा-विद्या के महामनीषी पं. गौरीशंकर हिराचन्द ओझा, डॉ. राजबली पाण्डेय प्रभृति विद्वानों ने प्राचीन साहित्य में लेखक, लेखापेति, अक्खरिका, लेखनी शब्द का पण्णवणा-सुत्त, समवायंग-सुत्त और भगवतीसूत्र में ब्राह्मी-लिपि जैसे शब्दों को देखकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि साहित्य-लेखन की पद्धति प्राचीनकाल में भी रही थी।

कुछ अध्येताओं ने उसे विदेश के आयातित लिपि माना है। उनकी मान्यता के अनुसार उसका स्रोत विदेशज यवन–लिपि है।

किन्तु इतिहासकार लिंगडन, हंटर एवं डॉ. दिनेशचन्द्र सरकार आदि ने इसका विरोध कर उक्त ब्राह्मी–लिपि को देशज माना है।

ब्राह्मी–लिपि के प्राचीन–स्रोतों के खोज की यही करुण–कहानी है। स्थिति जो भी हो, भविष्य में सम्भवतः कोई सर्वसम्मत समाधान निकल सके। उसकी प्रतीक्षा है।

फिलहाल तो उपलब्ध साक्ष्यों में बडली शिलालेख की ब्राह्मी–लिपि को प्राचीन माना जा सकता है। भले ही उसका अधिकांश भाग क्षरित–त्रुटित हो गया है, फिर भी उसके दृश्यमान वर्णाक्षरों को ब्राह्मी–लिपि के वर्णरूप स्वीकार किए जा चुके हैं।

उसके बाद सम्राट अशोक के अद्यावधि उपलब्ध शिलालेख, सम्राट खारवेल का हाथीगुम्फा शिलालेख तथा परवर्ती अन्य गुहालेखादि समकालीन ब्राह्मी–लिपि में पाए गए हैं।

सम्राट अशोक के पश्चिमोत्तर सीमान्त के अभिलेखों की लिपि–खरोष्ठी–लिपि है। इन सबकी वर्णमाला की पहचान तथा उनसे विकसित लिपियों की संक्षिप्त चर्चा भी आगे की जा रही है।

जैन–परम्परा के अनुसार प्रथम तीर्थंकर (आदिनाथ) ऋषभदेव ने करोड़ो–करोड़ वर्ष पूर्व अपनी बेटी ब्राह्मी को ब्राह्मी–लिपि तथा छोटी बेटी सुन्दरी को खरोष्ठी–लिपि की शिक्षा प्रदान की थी। ऋषभदेव के 100 पुत्रों में से एक पुत्र तत्कालीन पश्चिमोत्तर भारत का शासक था, जिसकी राजधानी वर्तमानकालीन पेशावर तथा तक्षशिला और गान्धार के आसपास थी। सुन्दरी ने वहां खरोष्ठी–लिपि का प्रचार किया और शेष भाग में ब्राह्मी ने ब्राह्मी–लिपि का प्रचार किया।

इस सन्दर्भ के विपरीत अन्य इतिहासकारों के अनुसार भारत में इस्लाम के प्राचारकों तथा शासकों ने जिस प्रकार अरबी–फारसी लिपि

के आधार पर उर्दू-लिपि का अविष्कार किया, उसी प्रकार ई. पू. पांचवीं सदी के आसपास भारत के पश्चिमोत्तर-सीमान्तवर्ती प्रदेशों पर ईरानियों का शासन हो जाने पर आरमेई-लिपि (दक्षिणी-अरबी) के आधार पर उन्होंने खरोष्ठी-लिपि का अविष्कार किया। ई. पू. 327 के लगभग ग्रीक (यूनानी) आक्रान्ता **सिकन्दर** ने तथा उसके बाद **सेल्यूकस** ने भारत के पश्चिमोत्तर-प्रदेश (वर्तमान पाकिस्तान) तथा बल्ख (वर्तमान अफगानिस्तान) पर आक्रमण किया और जब वहां उनका प्रभाव हो गया तो यूनानियों ने अपने सिक्कों पर यूनानी-लिपि के साथ-साथ खरोष्ठी-लिपि का भी प्रयोग किया।

यूनानियों के बाद शक, क्षत्रय, पल्हव, कुषाण आदि शासकों ने भी अपने प्रशासनिक-कार्यों में खरोष्ठी-लिपि का उपयोग किया। तात्पर्य यह है कि ई. पू. की चौथी सदी के बाद की कुछ सदियों तक भारत के पश्चिमोत्तर-प्रदेश अफगानिस्तान, ईरान तथा उनके भी समीपवर्त्ती प्रदेशों में खरोष्ठी-लिपि लोकप्रिय रही।

सम्राट अशोक (ई. पू. 272-232) के शिलालेख शाहबाजगढ़ी एवं मानसेहरा (वर्तमान पाकिस्तान के क्रमशः पेशावर एवं हजारा जिले) में खरोष्ठी-लिपि में प्राप्त हुए हैं। वैसे तो मैसूर के सिद्दापुर के पास ब्रह्मगिरि में तथा पटना (बिहार) में भी एक-एक खरोष्ठी-अभिलेख मिला है किन्तु यह सुनिश्चित है कि वह वहां की स्थानीय लिपि नहीं थी, उन अभिलेखों को वहां किसी कारणवश ले जाया गया होगा ऐसी विद्वानों की धारणा है।

सिद्दापुर (मैसूर, कर्नाटक) के पास ब्रह्मगिरि में खरोष्ठी-लिपि का जो अभिलेख मिला है, वह इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है कि उस (अभिलेख) के अन्त में तीन शब्द ऐसे लिखे गये हैं जिनमें से प्रथम दो शब्द ब्राह्मी-लिपि के (बायीं ओर से दायीं और लिखे हुए) तथा अन्तिम एक शब्द खरोष्ठी-लिपि (दायीं ओर से बायीं ओर लिखा हुआ) का है। यथा -

चपडेन लिखित लिपिकरेण

(ब्राह्मी–लिपि) (खरोष्ठी–लिपि)

अर्थात् लिपिकार चपड द्वारा यह अभिलेख टंकित किया गया।

उक्त मिश्रित अभिलेखांश देखकर विदित होता है कि चपड नाम का टंकक भारत के पश्चिमोत्तर–प्रदेश के पेशावर, तक्षशिला अथवा गान्धार, शाहबाजगढी या मानसेहरा का निवासी रहा होगा, जिसे ब्राह्मी एवं खरोष्ठी दोनों लिपियों की जानकारी रही होगी किन्तु पश्चिमोत्तर–भारत का निवासी होने के कारण तथा अपनी मातृ–लिपि के प्रति ममता होने के कारण उसने उक्त दोनों लिपियों का एक साथ संयोजन कर अपने विशेष पहचान बना ली।

मेरी दृष्टि से सम्राट अशोक ने अपने साम्राज्य के विभिन्न केन्द्रों के कुशल टंककों एवं प्राकृत–भाषा के जानकरों को बुलाकर उन्हें अपने धर्मानुशासनों को उत्कीर्ण करने का आदेश दिया होगा। ये धर्मानुशासन वस्तुतः भाषा की दृष्टि से तो समान रहे होंगे किन्तु भाषाविदों एवं टंककों ने उन्हें अपने स्थानीय निवासियों की सुविधा की दृष्टि से स्थानीय प्रभावों से प्रभावित भाषा एवं लिपि का प्रयोग उन (धर्मानुशासनों) में किया होगा। यही कारण है कि एक सदृश भाषा एवं लिपि होने पर भी उनमें स्थान–भेद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उसी प्रकार, जिस प्रकार कि हिन्दी का एक वाक्य यदि गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, तमिल या पंजाब का निवासी लिखे, तो उसके लेखक के निवास–स्थान उसकी अपनी भाषा एंव लिपि का पता लगाना सरल हो जाता है कि वह कहां का निवासी रहा होगा। उक्त सिद्दापुर–ब्रह्मगिरि अभिलेख का ब्राह्मी–खरोष्ठी लिपियों का मिश्रित रूप भी इसका उदाहरण माना जा सकता है।

खरोष्ठी–लिपि को कुछ विद्वानों ने यद्यपि इण्डो–वैक्ट्रियन, बैक्ट्रो–पालि, काबुली या गान्धारी का नाम भी दिया है, तथापि वह खरोष्ठी के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हुई।

ललित-विस्तर (बौद्ध-ग्रन्थ, दूसरी सदी ईस्वी) में 64 प्रकार की लिपियों में से ब्राह्मी एवं खरोष्ठी लिपियों के नाम भी उल्लिखित हैं।

चीन के बौद्ध कोष ग्रन्थ – **'फावान-शु-लिन'** में खरोष्ठी-लिपि का उल्लेख कर उसे बायीं ओर से दायीं ओर लिखी जाने वाली लिपि बतलाया गया है। उसे चीनी-भाषा में किअ-लु-से-टो झ क-लु-सेटो ढ ख-रो – स – ट झ खरोष्ठ = के रूप में उसकी व्युत्पत्ति की गई है।

उक्त ललित-विस्तर एवं चीनी-विश्व कोष ग्रन्थों के आधार पर डॉ. बुलन्हर ने खरोष्ठी के स्वरूप के विषय में कहा कि वह खर-ओष्ठ अर्थात् गधे के ओष्ठ के समान होने के कारण खरोष्ठी के नाम से प्रसिद्ध हुई। अन्य किसी दूसरे समीक्षक विद्वान के अनुसार ईरानी-भाषा में गधे की चमड़ी पर लेख लिखे जाने को 'खरपोस्त' कहते थे, इसी कारण उसका नाम खरोष्ठी पड़ा किन्तु ये सारे कथन भ्रामक आधार वाले हैं क्योंकि इन कथनो के लिये कोई विश्वस्त प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये गये।

खरोष्ठी-लिपि की वर्ण-माला को देखने से विदित होता है इसे सक्षम बनाने (अथवा समग्र बनाने) में ब्राह्मी-लिपि का पर्याप्त योगदान रहा है। ब्राह्मी के सदृश ही खरोष्ठी के स्वर-वर्णों तथा उनकी मात्राओं में हृस्व-दीर्घ-प्रयोग में अन्तर नहीं है।

इसमें संयुक्ताक्षर भी अल्पमात्रा में प्रयुक्त हैं। खरोष्ठी-लिपि की ये विशेषताएं उसकी सरलता और सहजता की द्योतक हैं और अपनी सुविधा से लिखकर उसे ठीक से सार्थक समझ लेने के लिये पाठकों की स्वयं की समझदारी पर छोड़ दी जाती थी, ठीक उसी प्रकार की महाजनी-लिपि में ग्रामीणों के लिये उधार देते समय महाजन लोग अपने खाते बहियों में हींग, मिर्च एंव जीरा को हग, मर एंव जर लिख देते हैं और सम्बन्धित व्यक्ति उस लेख की यथार्थता को सरलता से समझ भी लेता है।

खरोष्ठी-लिपि के शिलालेखों के अध्ययन में बड़ी-बड़ी कठिनाइयां आई। 19वीं सदी में कर्नल टॉड प्रभृति प्राच्य-विद्या के अनन्य प्रेमियों को जब ब्राह्मी एंव खरोष्ठी-लिपियों का ज्ञान न था, तो वे बड़े निराश हुए। किन्तु गम्भीर निराशा के मध्य भी उन्होंने उसकी जानकरी के लिये एक उपाय खोज निकाला। उन्होंने ऐसे-एसे यूनानी-सिक्कों का संग्रह किया जिनके एक ओर यूनानी-लिपि के वर्ण थे और दूसरी ओर खरोष्ठी-लिपि के वर्ण।

अफगानिस्तान के तत्कालीन पुरातत्व-पदाधिकारी मेसन ने उन सिक्कों पर लिखित यूनानी एवं खरोष्ठी-लिपियों के वर्णों की लेखन-शैली की पहचान कर उसका तुलनात्मक मानचित्र बनाया और उसे जेम्स-प्रिंसेप (1799-1840 ई.) जो कि सन् 1832 से 1840 तक कलकत्ता की टकसाल के उच्च पदाधिकारी तथा रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल-कलकत्ता के महामंत्री थे, उनके लिये वह मानचित्र भेंट-स्वरूप भेज दिया।

जेम्स-प्रिंसेप ने भी उस आधार-भूत सामग्री के आधार पर सूक्ष्म अध्ययन कर अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किये। इतिहासकारों के कथनानुसार ब्राह्मी एवं खरोष्ठी लिपियों तथा अभिलेखों की भाषा-प्राकृत के रूप में स्पष्ट पहचान कराने का सारा श्रेय जेम्स प्रिंसेप की ओर जाता है।

यह भी ध्यातव्य है कि जेम्स-प्रिंसेप ने ही खरोष्ठी-लिपि के 17 वर्णों की सर्वप्रथम पहचान की थी और उनके इस खोज पूर्ण कार्य को फर्ग्यूसन, जनरल कनिंघम, थॉमस, इलियट, स्टिवेंसन, डॉ. भाऊदाजी, राजेन्द्रलाल मित्रा आदि ने आगे बढ़ाकर खरोष्ठी की समग्र वर्णमाला तथा संयुक्ताक्षरों की पहचान कर आगमी अध्येताओं के शोध-कार्य हेतु मार्ग प्रशस्त कर दिया। इस महामनीषी जेम्स-प्रिंसेप का लगभग 41 वर्ष की आयु में ही सन् 1840 में स्वर्गवास हो गया।

कलिंगाधिपति सम्राट खारेवल का हाथीगुम्फा-शिलालेख -

यह आश्चर्य का विषय है कि खारवेल जैसे पराक्रमी राष्ट्र एवं

प्रजावत्सल सम्राट् की चर्चा प्राचीन साहित्य में नहीं मिलती। इसका कारण क्या रहा होगा। यह समझ में नहीं आता। प्रणम्य हैं देश-विदेश के जिज्ञासु वे प्राच्यविद्या-प्रेमी जिन्होंने अथक परिश्रम कर उसकी खोज की, प्राच्य-साहित्य एवं पुरातात्विक सामग्री का तुलनात्मक गहन अध्ययन किया और इतिहास-जगत् को उसके वैशिष्ट्य से परिचित कराया। इस विषय में बंग-भाषा की सुप्रसिद्ध शोध- पत्रिका- 'साहित्य' में इतिहासकार मनमोहन गंगोपाध्याय ने बंगला-भाषा में हाथीगुम्फा-शिलालेख का मूल्यांकन करते हुए बीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल में ही एक लेख लिखा था, जिसके एक अंश का अनुवाद इस प्रकार है -

..................." यही वह शिलालेख (खारवेल-संबंधी) है, जिसकी सूचनानुसार सम्राट् खारवेल ने मगध पर आक्रमण कर उसके राजा वहसमित्ति (पुष्यमित्र) को पराजित किया और मगध के पूर्ववर्त्ती नन्दराजा द्वारा लगभग 300 वर्ष पूर्व कलिंग-जिन (ऋषभदेव) की मूर्ति को वापिस लाकर कलिंग में उसकी पुनर्प्रतिष्ठा कर प्रजाजनों को सतुष्ट किया था।" वे आगे पनु: कहते हैं -

..............."यह आज से 2100 वर्ष पूर्व की घटना है। महावीर भगवान का निर्वाण हुये उस समय लगभग 477 (350) वर्ष बीते थे। श्रुतकेवलियों का सूर्य अस्त हो चुका था, परन्तु ग्यारह अंग और दश-पूर्व धारण करने वाले जो विशाखदत्त आदि ग्यारह आचार्य हुये हैं, उनमें से अन्त के गंगादत्त या धर्मसेन अवश्य विद्यमान होंगे। अष्टांगनिमित्त भद्रबाहु इसके पीछे हुये हैं। जैनधर्म उस समय अखण्ड था। उसमें दिगम्बर-संघ-गण-गच्छादि भेद नहीं हुये थे। जैनधर्म के इसी उन्नत अवस्था में रहते समय महामेघेश्वर खारवेल महाराज हुये हैं। जिस तरह प्रियदर्शी महाराज अशोक ने बौद्धधर्म को जगव्यापी बनाने का प्रयत्न किया था सम्राट खारवेल ने भी जैनधर्म को विश्वव्यापी बनाने का प्रयत्न किया था परन्तु उस प्रयत्न का फल क्या हुआ- कहां-कहां जैनधर्म का प्रचार हुआ, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। यह बड़े दु:ख का विषय है कि इतने बड़े प्रतापी और धर्म-प्रचारक जैन-राजा का किसी भी

जैन-ग्रन्थ में कहीं कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। अपने इतिहास के अभाव से हमने न जाने ऐसे कितने प्रतापशाली और कीर्तिशाली नर-पुंगवों का नाम सदा-सदा के लिये विस्मृति के सागर के गम्भीर गर्भ में डुबा दिया है।"

पुराणरत्न पं. गंगाधर सामन्त शर्मा -

इसी प्रकार इतिहासकार श्री शर्मा ने उक्त शिलालेख का मूल्यांकन तथा खारवेल के पराक्रम की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि 'खारवेल ने अपने राज्य-काल के सातवें वर्ष में पाण्ड्य-देश को जीतने के बाद मगध पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की थी। इस प्रकार एक ही वर्ष में इस वेगगामी विजय को देखकर यदि उसकी तुलना आधुनिक विजेता नेपोलियन-बोनापार्ट से की जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। ....शर्मा जी पुनः कहते हैं - 'खारवेल के सातवें वर्ष (अर्थात् अपनी वायु के 31वें वर्ष) में पाण्ड्य देश को जीतने के बाद बजिर (अफागानिस्तान के पूर्व-प्रदेश बजीरिस्तान) तथा पुर (विलोचिस्तान के पूर्व-प्रदेश पुरु या पुरुषपुर-पेशावर) पर भी आक्रमण किया था। इस युद्ध में धृष्टी या धूसी नामकी राजपूतनी युवती ने अपना अपूर्व रण-कौशल दिखलाया था। बाद में खारवेल ने उसके रण-चातुर्य से प्रभावित होकर उसके साथ विवाह कर लिया था। तत्पश्चात् खारवेल ने उक्त दोनों विजित राज्य (बजिर एवं पुर) अपने ससुर अर्थात् (या धृष्टी) के पिता को सौंपकर धूसी के साथ वापिस कलिंग लौट आया था।"

खारवेल के वंशजों का महाभारत के भीष्मपर्व में उल्लिखित ऐर वंशी राजा केतुभद्र के साथ जोड़ते हुए शर्मा जी आगे कहते हैं -

-'शिलालेख की 11वीं पंक्ति में राजा केतुभद्र का उल्लेख भी हुआ है, जो ऐर-वंशी राजा था। इतिहासकारों के अनुसार कलिंग में (ई. पू.) 1460 (1300+160) के आसपास ऐरवंशी राजा केतुभद्र का राज्य रहा होगा, ऐसा प्रतीत होता है। यह कथन महाभारत के भीष्मपर्व से मेल खाता है।'

इतिहासकार पं. गंगाप्रसाद मेहता -

खारवेल-शिलालेख में उल्लिखित पूर्ववर्त्ती राजवंशों के नाम तथा व्यवस्थित तिथिक्रमों के उल्लेखों का मूल्यांकन करते हुए सुप्रसिद्ध इतिहासकार पं. गंगाप्रसाद मेहता ने लिखा है कि 'प्रस्तुत खारवेल-शिलालेख में शासन-काल के वर्षक्रमानुसार वर्षों का उल्लेख होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्व बढ़ जाता है। विदेशी पर्यटक इतिहासकार यात्री अलवेरुनी के अनुसार वि. सं. में 400 जोड़ देने से नन्द संवत् निकल आता है, अर्थात् वह संवत् विक्रम से 400 वर्ष पूर्व में प्रारम्भ हुआ था। उस समय मगध में नन्दवंश के संस्थापक नन्द या नन्दिवर्धन का राज्य था। उसी संवत् के 103 में वर्ष में मगध में एक नहर खोदी गयी थी, जिसका विस्तार कर सम्राट् खारवेल प्रजाजनों के कल्याण हेतु उसे कलिंग तक ले आया था।' (दे. प्राचीन भारत पृ. 167)

इतिहास-मनीषी डॉ. के.पी. जायसवाल -

हाथीगुम्फा-शिलालेख विषयक अपनी दीर्घकालीन शोध-साधना के बाद जब डॉ. के.पी. जायसवाल ने उसका सर्वप्रथम विश्लेषणात्मक अध्ययन कर उसे एक शोध-पत्रिका में प्रकाशित किया, तो इतिहासकारों द्वारा सराहना किये जाने पर अत्यन्त प्रमुदित हो उठे थे और अपनी प्रतिक्रिया में उन्होंने लिखा था -

"ईसा के पूर्व की सदियों के भारतीय इतिहास के उपलब्ध साधनों में प्रस्तुत (खारवेल-शिलालेख) का स्थान बहुत उच्च है। प्राचीनता में अशोक के बाद यह दूसरा लेख है- पहला नानाघाट का वेदिश्री का लेख है, पर मौर्यकाल से पहले के इतिहास-क्रम तथा धर्म के इतिहास के लिये तो अब तक देश में जितने भी लेख मिले हैं, उन सबमें यह लेख की सर्वाधिक महत्व का है। वह पुराणों के उल्लेखों का समर्थन करता है और राजवंश-क्रम को ईसा-पूर्व 450 वर्ष तक ले जाता है। उससे यह सिद्ध होता है कि उड़ीसा में जैनधर्म बहुत कर वी.नि. सं. 100 के लगभग आया और वह वहां का राष्ट्रिय-धर्म बन गया। वह ई.

पू. 450 में बिहार और उड़ीसा के एकत्व का सर्वप्राचीन प्रमाण है। सामाजिक इतिहास में उससे हमें सबसे भारी यह बात विदित होती है कि ई.पू. 172 के लगभग उड़ीसा की जनसंख्या 35 लोख थी।"

.... "धार्मिक प्रसंगों का खारवेल पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि अपने शासन-काल के तेरहवें वर्ष में सम्भवतः अपने आयुष्य के 38 वर्ष में ही वह स्वयं विरक्त हो गया। उसे देह और आत्मा की भिन्नाभिन्नता का अनुभव हो गया। अतः अपने पुत्र कुदेपेश्री का राज्याभिषेक करके वह अज्ञात स्थान में चला गया। किन्तु अज्ञातवासी हो जाने के बाद भी भारतीय इतिहास के लिये वह जो सूत्र छोड़ गया, उनके कारण वह "यावच्चन्द्रदिवाकरौ" एक कालजयी युग-पुरुष के रूप में जीवित रहेगा।" (J.B.O.R.S. Vol. III P. 448)

पं. भगवानलाल इन्द्र जी प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने उक्त शिलालेख में जैन-सिद्धांत की पारिभाषिक शब्दावलियों का अध्ययन कर यह सर्वप्रथम घोषित किया था कि खारवेल श्रावक-शिरोमणि जैन-चक्रवर्ती सम्राट था। विचार कीजिये कि 17 पंक्ति वाले प्राकृत-भाषात्मक, ब्राह्म-लिपि वाले उक्त शिलालेख का प्रारम्भ ही जैन संस्कृति के मूल महामंत्र-णमोकार-मंत्र से प्रारम्भ हुआ है तथा जिसमें जैन-संस्कृति के 4 प्रतीक-चिन्हों का लेखांकन किया गया है। उसके अध्ययन एवं विश्लेषण में देश-विदेश के समर्पित-भाव से शोध-कार्य करने वाले दर्जनों पुराविदों को लगभग 200 वर्ष लग गये, फिर भी, अभी तक उसका सर्वसम्मत सम्पादन, अनुवाद एवं समीक्षा-कार्य तैयार नहीं हो सका है।

फिर भी, अपने-अपने ढंग से सभी विद्वानों ने इसका विश्लेषण किया है। अतः डॉ. रैप्सन के अनुसार यह तो निश्चित हो गया कि इस शिलालेख ने अंधकारयुगीन भारत को प्रकाशयुगीन तो बना ही दिया, पं. जवाहरलाल नेहरु आदि की इच्छा के अनुसार स्वतंत्र-भारत का संवैधानिक नाम "भारतवर्ष" भी सौभाग्य से इसी शिलालेख के आधार पर घोषित किया गया।

फिर भी अभी तक जो अध्ययन एवं विश्लेषण प्रकाश में आया है, कुछ शोधार्थियों के लिये उस से पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ है, अतः आगे भी तद्विषयक शोधकार्य जारी है। शिलालेख हाथीगुम्फा-शिलालेख अथवा उदयगिरि-खण्डगिरि-शिलालेख अथवा खारवेल-शिलालेख के नाम से प्रसिद्ध है। यह शिलालेख समकालीन प्राकृत-भाषा एंव ब्राह्मी-लिपि में भुवनेश्वर (उड़ीसा) के पास उदयगिरि-खण्डगिरि की ग्रेनाईट लम्बी पाषाण-शिला पर 17 पंक्तियों में उत्कीर्णित है, जिसका समय ई. पू. द्वितीय सदी है।

इस शिलालेख में सम्राट खारवेल में 13 वर्षों के शासन-काल का वर्षक्रमानुसार वर्णन किया गया है। आत्म-प्रशंसात्मक न होकर वह ऐतिहासिक तथ्यों का सूचक होने के कारण विश्व के अद्यावधि उपलब्ध शिलालेखों में उसे विशेष महत्वपूर्ण शिलालेख माना गया है। इसमें नन्द एवं मौर्य वंश के उल्लेख, डिमिट्रियस या डिमिट नामक यवन-शत्रु को पराजित कर सीमान्त पार तक खदेड़ने की घटना का उल्लेख तथा 'भारतवर्ष' उल्लेख होने और द्वादशांग-वाणी की वाचना के आयोजन की सूचनाएं मिलने के कारण डॉ. आर.डी. बनर्जी ने इसे The Sheet anchor of Indian Chronolagy प्राच्य भारतीय इतिहास के लेखन के लिए 'प्रथम छोर' कहा था।

कहने के लिए तो यह शिलालेख मात्र 17 पंक्तियों में उत्कीर्णित है किन्तु उसमें इतिहास, संस्कृति, लोकजीवन, श्रमण-संस्कृति, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों और प्राचीन बोलचाल की भाषा के अनेक जीवन्त साक्ष्य छिपे पड़े हैं। उसमें उपलब्ध चोयठि, पलवभार, कफरुख, रठिक, असिक, मुसिक, भोजक, नन्द, मोरिय, दिमित, गोरथगिरि, बहसतिमित, किलंगजिन, सिंहपथ, बजिर, कुमार-पर्वत, पिथुड़, सातकर्णी, विद्याधराधिवास, कण्हवेला, अगणिठिया, किमिच्छिकदाणविधि, महामद आदि नामवाची विशिष्ट संज्ञाएं एवं विशेषण उपलब्ध हैं, जो समकालीन एवं ईसा-पूर्व चौथी-तीसरी सदी के भारतीय इतिहास एवं श्रमण-संस्कृति के ऐतिहासिक साक्ष्यों को प्रकाशित करते हैं -

इस शिलालेख का मूल्यांकन करते हुए सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. कामताप्रसाद जैन ने लिखा है –

------------Thus we see that Kharavela was a born Hero, a brave soldier, an accomplished General, a prudent statesmen and an ideal Ruler. He was also a great builder and a true man of piety. There is no trace of desposition in his biography. He was the King who emancipated India from Greek aggression at the time and brought joy to the hearts of his people when turned to religious life, he excelled in that phase also and realized the Bheda&Vijnanam भेद-विज्ञानम्, The seed of the true Bliss and Immortality. The Doctrine of Jaina-Non-Violance was glorified by the noble deeds of this Jaina-Monarch (Sec. J.B.O.R.S. Vol. III. P. 426-490)

सम्राट् खारवेल के कुछ ऐतिहासिक-कार्य

खारवेल के अभिलेख में बताया गया है कि उसने कुमारी-पवर्त पर एक बृहत् मुनि-सम्मेलन बुलाया। अभिलेख में यह भी बताया गया है कि सुविहित श्रमणों के निमित्त शास्त्रनेत्र के धारकों, ज्ञानियों, ऋषियों एंव संघाचार्यो के एकत्र होने के लिए संघायन अर्थात् एक विशाल भवन बनवाया गया है। इससे स्पष्ट है कि मुनियों की एक पृथक् संस्था थी, जैसा कि बताया गया है –

.... तेरमसे च वसे सुपवत-विजयिचके कुमारी-पवते अरिहते य प-खिम-संसितेहि काय-निसीदयाययापभावकेहि राजभितिनि चिनवतानि वासासितानि। पूजानि रत उतावग खारवेल-सिरिना जीवदेह-सयिका परिखाता।

अर्थात् उस खारवेल ने अपने राज्यभिषेक के तेरहवें वर्ष में कुमारी-पर्वत पर जैनधर्म का विजयचक्र सुप्रवृत्त किया। उसने जन्म-मरण कराने वाले संसार से विरक्तों के लिये काय-निषदि एवं वर्षावास-गृह स्थापित किये और वर्षाकाल में आये हुए तथा आश्रय-स्थल पाने के

इच्छुकों के लिये तथा पूजाकार्यों में अनुरक्तों और जीव (आत्मा) तथा देह की भिन्नाभिन्नता की परीक्षा करने वालों के लिये आश्रय-स्थल (गुफाएं) बनवाई। (दे. खारवले शिलालेख पं. 15)

प्राकृत अभिलेखों में वर्णित संस्कृति -

ई. पू. 5वीं सदी से का पांचवी सदी के आसपास तक प्राप्त होने वाले प्राकृत अभिलेखों में सांस्कृतिक संदर्भों की प्रचुरता है। इन 8-9 सौ वर्षों के दीर्घकाल में धर्म, समाज, राजनीति, अर्थनीति एवं विभिन्न मानव-मूल्यों का प्रतिपादन इन अभिलेखों में हुआ है। संस्कृति वस्तुतः उन गुणों का समुदाय है, जिन्हें मानव विविध प्रकार की शिक्षाओं एवं अपने सत्यप्रयत्नों द्वारा प्राप्त करता है। संस्कृति का संबंध मुख्यतः मानव प्रतिभा, स्वभाव और मनोवृत्तियों से है। उक्त अभिलेख-काल में संस्कृति के विविध रूप प्रस्फुटित हुए हैं।

देवानांप्रिय प्रियदर्शी के रूप में विख्यात सम्राट् अशोक की आदर्श सिद्धान्तवादिता इसी से स्पष्ट होती है, कि उसने अपने अभिलेखों के माध्यम से कहा है कि - माता-पिता की सेवा, प्राणियों के प्राणों के प्रति आत्म-भाव, विद्यार्थियों को आचार्य की सेवा तथा मनुष्यों के प्रति समान व्यवहार करना चाहिये। सर्वधर्म-समन्वय की दृष्टि से उसने अपने 12वें अभिलख में लिखा है कि - देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अशोक विविध दान एवं सत्कार-पूजा की उतनी परवाह नहीं करते, जितनी कि इस बात की, कि समस्त सम्प्रदायों में सार-तत्व की वृद्धि हो। सम्प्रदायों के सार-तत्व की वृद्धि भी अनेक प्रकार से होती है परन्तु उसका मूल वाक्संयम है अर्थात् लोक केवल अपने ही सम्प्रदाय का आदर और दूसरों की निन्दा न करें। बल्कि सभी सम्प्रदायों एवं जातियों के प्रति निष्पक्ष समदृष्टि रखी जाय।'

तीसरे-अभिलेख में उसने आत्मविश्वास एवं सामाजिक-समरसता की दृष्टि से स्पष्ट कहा है कि माता-पिता की सेवा करना, मित्रों, परिचितों, स्वजातीयों, ब्राह्मणों और श्रमणों को दान देना उत्तम है। कम

खर्च करना और कम संचय करना सभी के लिये हितकारी होता है।'

दूसरे एवं सातवें अभिलेखों में यात्रियों या पर्यटकों की सुख-सुविधा के लिये बताया गया है कि 'मार्गों पर मनुष्यों एवं पशुओं को छाया देने वाले बरगद के वृक्ष लगवाए गये हैं, आम्र-वाटिकाएं लगवाई हैं, आधे-आधे कोस पर कुएं खुदवाए गये हैं, धर्मशालाएं बनवाई गई हैं और मनुष्यों तथा पशुओं के लिये जहां-तहां पौसरे बैठाए गए हैं। रोगी मनुष्यों और पशुओं के लिये चिकित्सा का प्रबन्ध किया गया है। जहां औषधियां नहीं मिलती, वहीं उन्हें भेजा जाता है तथा तत्संबधी पौधों, वृक्षों एवं लताओं को वहां रोपा जाता है।'

अशोक ने अपने द्वितीय स्तम्भ-लेख में धर्म के सार्वजनीन रूप को समझाते हुए कहा है- 'जीवन में कम से कम पाप करना, अधिक से अधिक कल्याणकारी कार्य करना, दया करना, सत्य बोलना और अंतर्बाह्य-पवत्रिता धारण करना ही सच्चा मानव-धर्म है।' इसके साथ-साथ उसने यह भी बतलाया है कि जीवन में अहिंसा को उतारने के लिये आहार-पान की शुद्धि अत्यावश्यक है। इस दिशा में सम्राट अशोक ने मांसाहार एवं मदिरा-पान का त्याग कर शुद्ध शाकाहारी बनने की ओर संकेत किया है।

धर्ममहामात्यों की नियुक्ति

प्रियदर्शी अशोक ने प्रजा में सुख-शान्ति रखने के लिये धर्म-महामात्यों (Minister for Religious Affairs) की नियुक्ति की थी। अशोक के पंचम-अभिलेख में इस पदाधिकारी के नियुक्ति की चर्चा आयी है। यह राजकीय दान तथा धार्मिक-कृत्यों का प्रबंधक होता था। अशोक बौद्धधर्मानुयायी होते हुए भी सभी पंथो को समदृष्टि से देखता था, और सबका आदर करता था। अपने सप्तम-अभिलेख में उसने बताया है .... 'देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा अशोक चाहता है कि सभी धर्म वाले समृद्धि को प्राप्त हों। वे सभी संयम और भावशुद्धि की रक्षा करें। मनुष्यों में ऊँच-नीच इच्छाएं और ऊँच-नीच अनुराग भी

उत्पन्न होते हैं। वे सभी अपने-अपने पंथ का पूरा पालन करें। परस्पर में एक दूसरे के प्रति सहानुभूति रखें। भले ही किसी का बहुत बड़ा दान हो, फिर भी यदि उसमें संयम, भावशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़भक्ति नहीं है, तो वह निश्चय नी नीचे दर्जे का व्यक्ति कहा जायगा।' (गिरनार शिलालेख सं. 7)

अशोक का प्रियदर्शिता-समन्वित यह प्रयास था कि विभिन्न पंथों के लोग परस्पर सहिष्णुता और आदर-पूवर्क रहें। कोई किसी के धर्म की निन्दा न करे और न किसी के प्रति ईर्ष्या रखे। .... देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा समस्त सम्प्रदाय वालों का चाहें वे प्रव्रजित हों, चाहे गृहस्थ, वह दान और विविध पूजा से उनका सत्कार करता है। दान या पूजा को देवताओं का प्रिय उतना नहीं मानता, जितना इसे कि सब सम्प्रदाय वालों की सार्ववृद्धि हो। .... उसका मूल है वयो-गुपत .... वाणी का संयम, जिसमें अपने पाषण्ड (पंथ) का अति आदर और दूसरे पाषाण्ड की गर्हा न की जाये और .... उनकी हलकायी न जाये। उस-उस प्रकरण से दूसरे पंथ का आदर करना ही चाहिये। दूसरे पंथ का आदर करने वाला अपने पंथ को वृद्धिंगत करता है और दूसरे पंथ का भी उपकार करता है। इससे उल्टा करने वाला अपने पंथ को भी क्षीण करता है और दूसरे पंथ का भी अपकार करता है .... समवाय ही अच्छा है कि एक दूसरे के धर्म को सुनें और सुश्रूषा करें। इसी प्रयोजन से मैंने बहुत से धर्म-महामात्य नियुक्त किये हैं। वह धर्मलेख निम्न प्रकार है -

न भूतप्रुवं धमंमहामाता नाम त मया तेदस वासाभि सितेन धंममहामता कता ते सवपासंडेसु धंमाधिस्टानाय धंमयुतस च योणकंबो ज गंधारानं रिस्टिकपेतेणिकानं ये वापि अंञे अ पराता भूतभयेसु व सुखाय धंमयुतानं अपरिगोधाय व्यापता ते बंधनवधस पटिविधानाय प्रजा कताभीकारेसु वा थेरेसु वा व्यापता ते पाटलिपुते च बाहिरसु च ये वा पि में अञे ञातीका सर्वत व्यापता ते यो अयं धंमनिस्रिंतो ति वा ते धंममहामाता एताय अथाय अयं धंमलिपि लिखिता।

अर्थात् पूर्वकाल में धर्ममहामात्य उपाधिकारी (Minister for Religious Affairs) नहीं हुआ करते थे। अतः मैंने अपने राज्याभिषेक के तेरह वर्षों के बाद धर्म-महामात्यों की नियुक्तियां की हैं , जो धर्म की स्थापना के लिये सभी सम्प्रदायों में विद्यमान रहेंगे। जो धर्मयुक्त नामक पदाधिकारी हैं, उनके मार्ग-निर्देशन के लिये यवन, काम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, पौतनिक और जो भी अन्य सीमावर्त्ती राज्यों में रहने वाले हैं, चाहे सेवक ही क्यों न हों, यदि धर्माचरण करने वाले हैं, तो उन सभी को मुक्ति प्राप्त करवाने के उद्देश्य से वे धर्ममहामात्य सांसारिक मोहमाया आदि के बंधनों में जकड़े हुओं के प्रतिकार के लिए विद्यामन् रहेंगे। जो भूत-प्रेत आदि बाधाओं से पीड़ित प्रजाजन हैं तथा वृद्धजन हैं (Senior Citizens), चाहे वे पाटलिपुत्र के हों या पाटलिपुत्र के बाहर के हों, उन सभी के बीच में धर्ममहामात्य विद्यमान रहेंगे और जो मेरे अन्य बांधवजन हैं, उन सभी में भी वे रहेंगे। यह विचार करने के लिये कि अमुक जन धर्माचरण करती है अथवा नहीं, यह निश्चय भी हमारे ये धर्मामहामात्य ही करेंगे। इसी उद्देश्य से मैंने यह धर्मलेख लिखवाया है। (गिरनार शिलालेख सं.6)

प्रियदर्शी सम्राट अशोक ने अपनी प्रजा को धर्मात्मा बनाने के साथ-साथ इस लोक में भी सुखी बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। उसके सप्तम स्तम्भ-लेख में बताया गया है- "देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा अशोक कहते हैं-मैंने मार्गों पर बरगद के सघन वृक्ष रोपवा दिये हैं, जो मनुष्यों और पशुओं को छाया प्रदान करेंगे। आमों की वाटिकाएं भी लगवायी हैं। आधे-आधे कोस पर मैंने कुएं खुदवाए हैं, और विश्राम-गृह (Rest-House) भी बनवाए हैं। जहां-तहां पशुओं और मनुष्यों के प्रतिभोग के लिए बहुत से प्याऊ भी बैठा दिये हैं। किन्तु ये जब प्रतिभोग बहुत थोड़े हैं। पहले के राजाओं ने और मैंने भी विविध सुखों से लोगों को सुखी बनाया है, पर मैंने यह सब इसलिए किया है कि वे धर्म का आचरण करते रहें।"

इसके अतिरिक्त भी द्वितीय-अभिलेख में कहा गया है- "देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा विजित प्रदेशों में भी सब जगह अन्तियोक नामक यवनराजा और जो दूसरे इस अन्तियोक के समीप के राजा हैं-सब जगह देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के दो-दो प्रकार के चिकित्सालय स्थापित किये है- (1) मनुष्यों के लिए चिकित्सालय और (2) पशुओं के लिए चिकित्सालय। मनुष्यों और पशुओं के लिये उपयोगी औषधियाँ जहां-जहां नही हैं, वहां-वहां लाकर रोपी गयीं। जहां-जहां फल और कन्द-मूल नहीं होते हैं, वहां-वहां लाये और लगाये गये। मार्गों पर मनुष्यों और पशुओं के प्रतिभोग के लिए वृक्ष रोपे गये और कुएं खुदवाए गये।"

इस प्रकार अशोक ने जहां धर्म-महामात्यों की नियुक्ति कर उनसे प्रजा के कर्त्तव्यों और धर्म-कार्यों का निरीक्षण कराया, वहीं रोगियों के लिए चिकित्सालयों और पथिकों के लिए आरामगृहों का निर्माण कराकर सिंहल और यूनान तक वे सुविधाएं प्रदान की। वस्तुतः देश और विदेश के सभी स्थानों के निवासियों को प्रियदर्शी सम्राट अशोक सुखी, समृद्ध और सम्पन्न बनाना चाहता था।

व्यवहार-समता और दण्ड-समता की आदर्श-नीति -

सम्राट अशोक ने अपने राज्याभिषेक के 26वें वर्ष में उत्कीर्ण कराये गये अभिलेख में बताया है- "यह अभीष्ट है कि व्यवहार-समता और दण्ड-समता हो।" सम्राट अशोक ने वस्तुतः समस्त भारत को राजनैतिक दृष्टि से एक कर दिया था। व्यवहार और दण्ड की इस समता-नीति ने आन्तरिक एकता भी उत्पन्न करने का कार्य किया। बताया गया है- (प्रियदर्शी राजा यों कहते हैं) .... मेरे लजूका (रज्जुक) सैकड़ो-हजारों प्राणियों के ऊपर नियत हैं। उन्हें मैंने जो अभिहार और दण्ड में आत्म-निर्भरता प्रदान की है, वह इसलिए कि वे आत्म-विश्वास के साथ निर्भय होकर कार्य करें। पूर्ण जनपद और जनहित के सुख का उपधान और अनुग्रह उसी प्रकार करें, जिस प्रकार कि जानी-पहचानी धाय के हाथ में बच्चा सौंपकर माता निश्चिन्त हो जाती है। वैसे ही मैं भी रज्जुकों को नियुक्त कर सुखी हूँ। मुझे विश्वास

है कि मेरे ये रज्जुक प्रजा को सभी प्रकार से सुखी, स्वतंत्र और आत्म-निर्भर बनाएगें।"

तात्पर्य यह कि ये रज्जुक या राजुक राज्य के बड़े अधिकारी थे, जो जनपदों पर शासन करते थे और वे दण्ड और व्यवहार में जनता के साथ निष्पक्ष एवं समान व्यवहार करते थे।

अहिंसा और क्षमा-नीति -

कलिंग-विजय के बाद सम्राट-अशोक के हृदय में अनुशोचन हुआ। उसने अनुभव किया कि जहां लोगों का वध, मरण और देश-निकाला हो, ऐसा जीतना न जीतने के तुल्य है। यही सोचकर कलिंग-विजयी सम्राट अशोक के जीवन में बड़ा परिवर्तन हुआ। उसने निश्चय किया कि वह अब आगे से युद्ध नहीं करेगा। उसने अपने पुत्र-पौत्रों के लिए भी यह शिक्षा प्रदान अंकित करायी- "वें नयी विजय न करें और जो विजय बाण खींचने के द्वारा ही हो सके, उसमें भी शान्ति और लघुदण्डता के काम लें और धर्म के द्वारा जो विजय हो, उसी को वास्तविक विजय समझें।" (दे. 13वां शिलालेख पं. 10-11)

अशोक ने पड़ौसी यूनानी-राज्य और सुदूर तमिल इत्यादि को भी निर्भयता प्रदान की और अपने महामात्यों को उसने इस प्रकार आज्ञाएं दीं- "आप लोग यह जानना चाहें, कि जो सीमान्त-देश अभी तक जीते नहीं गये हैं, उनके विषय में राजा क्या चाहता है? मेरी उन के विषय में भी यही इच्छा है कि वे मुझसे डरें नहीं और मुझ पर विश्वास रखें। वे मुझसे सुख ही प्राप्त करेंगे, दु:ख नहीं। वे यह भी विश्वास रखें कि जहां तक क्षमा का बर्ताव हो सकेगा राजा हमसे क्षमा का बर्ताव करेगा।" (दे.द्वितीय कलिंग अभिलेख)

अशोक ने पुन: आगे लिखा है- "जितने मनुष्य कलिंग-विजय में मारे गये, मरे या कैदी बनाये गये, उनका शतांश या सहस्राशं भी यदि अब मारा जाय, तो देवताओं के प्रिय को भारी दु:ख होगा। देवताओं के प्रिय का मत है कि जो अपकार करता है वह भी क्षमा के योग्य है, यदि

उसे क्षमा किया जा सके। तो अटवियां के विजित प्रदेशों में हैं, उनसे भी वह अनुनय करता है, उन्हें मनाता है और चाहें देवताओं के प्रिय को अनुताप हैं, तो भी उसका बड़ा प्रभाव है। इसलिए वह आटविकों से कहता है कि वे बुरे कामों से लज्जित न हों, व्यर्थ में न मारे जायें। देवानांप्रिय अशोक सब जीवों की अक्षति, संयम, समचर्या और प्रसन्नता चाहता है।" (दे. तेरहवां–शिलालेख)

सम्राट् अशोक ने अहिंसा के आचरण पर पूरा जोर दिया है। क्योंकि हिंसा जीवन को क्रूर और कर्कश बनाती है। हिंसा से मानव दु:खी होता है और उसके फलस्वरूप ही संसार में संघर्ष, अशान्ति, असहिष्णुता, क्रूरता आदि की भावना पैदा होती है।

अशोक ने इसलिये अपने प्रथम–अभिलेख में ही अहिंसा–नीति का प्रचार किया है। उसने प्राणी–हिंसा और हवन इत्यादि कार्यों में होने वाली हिंसा का निषेध किया है। उसका विश्वास है कि धर्म के नाम पर की गयी हिंसा अधर्म है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उसने अपनी रसोईशाला में होने वाली हिंसा को रोकने के लिए आज्ञा प्रचारित की कि सैकड़ो प्राणियों की हत्या रोककर केवल दो मयूर और एक मृग ही मारे जायंगे, शेष प्राणी नहीं, और ये तीनों भी रोज नहीं मारे जायेंगे, कभी कदाचित् ही मारे जायेंगे और बाद में उसे भी रोक दिया जाएगा।

इस प्रकार सम्राट अशोक ने शैन: शनै: हिंसा कम करते हुए पशु–हिंसा का पूर्ण निषेध कर दिया था। पशुओं को लड़ाना, उनके साथ निर्दयता का व्यवहार करना भी उसने निन्दनीय बताया। अपने राज्याभिषेक के 26वें वर्ष में अशोक ने पशु–पक्षियों की हिंसा पर और भी अधिक रोक लगा दी। पशुओं को बधिया करना, उन्हें दागना या उनके साथ कड़ाई से पेश आना आदि पर भी रोक लगा दी गई थी।

अशोक की इस अहिंसा–नीति से स्पष्ट है कि वह पशु–वध को सर्वथा रोकना चाहता था। क्योंकि व्यर्थ और अकारण होने वाली हिंसा को वह बिल्कुल पसंद नहीं करता था।

अशोक ने बिहार–यात्राओं के स्थान पर अपनी धर्म–यात्राओं का प्रचार आरम्भ किया। इन धर्म–यात्राओं में श्रमणों एव ब्राह्मणों का दर्शन, दान, वृद्धों का दर्शन, सुवर्ण–दान, जनपद के लोगों का दर्शन, धर्म का अनुशासन एवं धर्म–जिज्ञासा आदि उद्देश्य प्रधान थे। इस सत्कार्यों से स्पष्ट है कि सम्राट–अशोक ने अपनी अहिंसा–नीति और क्षमा–नीति का यथासम्भव पूर्ण निर्वाह किया।

भोजन और पेय –

प्राकृत–अभिलेखों में भोजन के प्रसंग में विभिन्न वस्तुओं के नामोल्लेख नहीं मिलते। केवल दान के धन से भोजन एवं वस्त्र के व्यय का उल्लेख अवश्य पाया जाता है। अशोक ने अपनी भोजनशाला में मांसाहार का निषेध करते हुए लिखा कि दो मूयर और एक मृग छोड़कर शेष जीवों की हिंसा भोजन कि निमित्त न की जाय और बाद में उसे भी बंद कर दिया जाय –

से अज यदा अयं धंमलिपि लिखिता ती एव प्राण आरभरे सूपाथाय द्ववो मोरा एको मगो सो पि मगो न ध्रुवो। एते पि त्री प्राणा पछा न आरभिसरे। (अशोक–शिलालेख सं.1/11–12)

स्पष्ट है कि अभिलेखों में मांसाहार की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर घटती दिखाई पड़ती है। नासिक–लेख में ब्राह्मणों के भोजन के निमित्त ग्रामदान का उद्देश्य बतलाया गया है। 'षोडश ग्राम देन अनुवर्ष ब्राह्मण शत साहसी भोजापयित्वा।' (दे. एपिग्रा. इण्डिका 8/78)

कुछ अभिलेखों में बिना मूल्य के भी भोजन दिये जाने का उल्लेख आया है। प्राचीन अभिलेखों में सर्वत्र आता है कि गृहहीन, भूखे एवं साधुओं को भोजन दिया जाना चाहिए। विशेष अध्ययन करने पर भी अभिलेखों में भोजन एवं आभूषणों के विशेष नाम निर्देश नही मिलते। बहुमूल्य मणियों और माणिक्यों के व्यवहार करने पर अवश्य जोर दिया गया है। खारवेल के अभिलेख में भी बहुमूल्य मणियों एवं ज्ञान–विज्ञान की चर्या आई है। (दे. खारवेल पं. 13)

भोजन-सामग्री के मूल्य सम्बंधी वार्ता के सीधा सम्बंध अभिलेखों में घटित नहीं होता है, पर दूसरी सदी के नहपान-कालीन नासिक अभिलेख से जो कुछ ज्ञात होता है वह निम्न प्रकार है -

काहापणा सहस्रानि त्रीणि 3000 संघस चातुदिसस ये इमस्मिं लेणे बसंतानं भवसन्ति चिवरिक कुशाणमूले च। एते च काहापणा प्रयुता गोवधनं वाथवासु श्रेणिसु। कोलीक निकाये 2000 वृद्धि पडिक शत अपर कोलीक निकाये 1000 वधि पा (यू) न पडिक शत। ऐते च काहापणा अ पडिदातव वधिभोजा एतो चिवरिक सहस्रानि बे 2000 ये पडिक सते। एतो मम लेणे भिखुनं वीस। य एकीकस चिवरिक बारुसक। स सहस्र प्रयुतं पायुन पडिके शते अतो कुशन मूले। (दे. एपिग्रा. इण्डिका 8/82)

अर्थात् 3000 कार्षापण भिक्षुओं के वस्त्र तथा भोजन के निमित्त तन्तुवाय-संघ के पास जमा किये। उनमें से 2000 कार्षापण तो एक पण प्रति-सैकड़ा सूद के दर से तथा 1000 कर्षापण तीन-चौथाई (3/4) पण प्रति सैकड़े की दर से। 2000 कार्षापण के व्याज से 20 भिक्षुओं का वस्त्र-व्यय तथा 1000 कार्षापण के सूद से भोजन-व्यय चलेगा। मूल-धन व्यय नहीं होगा। केवल सूद का ही प्रयोग किया जायगा।

इसका तात्पर्य यह है कि 20 भिक्षुओं के लिए 20 पण वस्त्र में और (7½) पण भोजन में प्रति वर्ष व्यय किया जाता था। पण को यदि आजकल का रूपया मान लिया जाय तो प्रति भिक्षु छह आने (अर्थात् अड़तीस नये पैसे) प्रतिमास भोजन में व्यय करता होगा। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय भोजन सामग्री कितनी सस्ती रही होगी।

आर्थिक-स्थिति : कृषि-व्यवस्था -

प्राकृत अभिलेखों में देश की आर्थिक स्थिति का भी सुन्दर चित्रण मिलता है। भारतवर्ष सदा से एक कृषि-प्रधान देश रहा है और

जनता के जीविकोपार्जन का प्रधान साधन भी कृषि ही था। सभी प्रकार के अन्न तथा फल यहां पैदा होते हैं, जिनके नाम अभिलेखों में मिलते हैं। अशोक के द्वितीय-अभिलेख में उल्लेख मिलता है-

मनुसोपगानि च पसोपगानि च यत यत नास्ति सर्वत हारापितानि च रोपापितानि च मूलानि च फलानि च यत यत नास्ति सर्वत हारापितानि च रोपापितानि च (द्वितीय अभिलेख पं. 6-7)

अर्थात् जो-जो औषधियां मनुष्यों एवं पशुओं के लिये उपयोगी हैं और जहां-जहां नहीं हैं वे सर्वत्र उपलब्ध कराई गई हैं तथा उगाई गई हैं एवं कन्दमूल-फल जो जहाँ-जहाँ नहीं हैं। उन सभी को मंगवाकर उगवाये गये हैं। उक्त कथन से स्पष्ट है कि कन्दमूल-फल आरोपित-प्रत्यारोपित किये जाते थे अर्थात् एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर रोपे जाते थे।

सिंचाई का प्रबंध -

भूमि की सिंचाई की ओर राज्य का भी ध्यान रहता था। अभिलेखों में सिंचाई के हेतु झील, नहर, तालाब तथा बांधों के निर्माण कराये जाने का वर्णन आता है। मौर्य-युग से ही शासक सिंचाई का प्रबंध करते आ रहे हैं। चन्द्रगुप्त-मौर्य ने सौराष्ट्र में गिरनार-पर्वत के नीचे एक विशाल झील का निर्माण करवाया था, जिसकी उपयोगिता इतनी अधिक थी कि परवर्त्ती शासकों ने उसकी मरम्मत कराकर उस पर बांध बंधवाया था। मेगास्थनीज ने भी अपने भारत-भ्रमण के समय यहां की सिंचाई की व्यवस्था देखकर प्रंशसा की थी। कौटिल्य-अर्थशास्त्र में भी मौर्यकालीन सिंचाई का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। सन् 150 के लगभग अंकित कराये गये महाछत्रप रुद्रदामन् के गिरनार-अभिलेख के अनुसार सुदर्शन नामक झील के चारों ओर बांध बांधा गया था। परंतु समीप के पहाड़ से निकली नदियों में ऐसे वेग से पानी आया था कि उसका बांध टूट गया था। अतएव रुद्रदामन् ने उस बांध की मरम्मत करवायी और एक अत्यन्त ठोस बांध का निर्माण करवाया था। यद्यपि

इस कार्य के लिये उसके मंत्रीगण विरोध करते रहे फिर भी अपने निजी धन से उसने इस कार्य को सम्पन्न कराया था।

पूर्वी-भारत में चूंकि वर्षा अधिक होती थी, इसलिए नहरों की आवश्यकता कम थी। खारवेल के हाथीगुम्फा-अभिलेख से स्पष्ट है कि उसने अपने राज्याभिषेक के 5वें वर्ष में कलिंग की राजधानी तक एक नहर तैयार करायी, जिससे जनता उससे लाभान्वित हो सकी थी। अभिलेख में बताया गया है- पंचमे दानीं वसे नंदराज तिवससत ओधाटितं तनसुलिय वाटा पणाडिं नगरं पवेसयति............ अर्थात् पांचवें वर्ष में वह सम्राट खारवेल नंदवंशी राजा द्वारा 300 वर्ष पूर्व उद्घाटित (निर्मित) नहर को आगे खुदवाकर तनसुलिय-मार्ग से अपनी राजधानी में ले आया।

अभिलेखों में कर (Tax) सम्बन्धी उल्लेख -

सम्राट अशोक के लुम्बिनी-अभिलेख में आया है कि उसने राजकीय कर षष्ठांश से घटाकर अष्टमांश कर दिया था। अशोक के पूर्व षष्ठांश-कर लिया जाता था। हर एक कृषक तथा पशुपालक से वसूल किया जाता था। कौटिल्य-अर्थशास्त्र तथा यूनानी लेखकों के वर्णनों से ज्ञात होता है कि पैदावार का 25 प्रतिशत कर किसानों से वसूल किया जाता था, जिसे अशोक ने रुम्मनदेई-क्षेत्र के निवासियों के लिए कम कर दिया था।

स्मृतिकारो ने इस प्रकार के कर का उल्लेख नहीं किया है। उसमें वह आठ से 33 प्रतिशत तक कहा गया है। यह कर भूमि की उर्वरा-शक्ति पर निर्भर था। प्राचीन समय में ब्राह्मण तथा मन्दिर आदि संस्थाओं को दान देते समय भूमि का स्वामित्व भी राजा के पास नहीं रह जाता था।

अशोक के रुम्मनदेई स्तम्भ-लेख में वर्णन आता है कि सम्राट अशोक ने लुम्बिनी की यात्रा की उसकी स्मृति में राजकीय कर घटकार

आठवां भाग कर दिया था। अर्थशास्त्रियों ने पैदावार का छठा–भाग भूमिकर (Land Tax) के रूप में लेने का वर्णन किया है। मौर्यकाल में भी यही अनुपात रहा है। केवल रुम्मनदेइ, (नेपाल–तराई के भू–भाग) में अशोक ने इसे कम कर दिया था और उस भू–भाग की जनता आठवां–भाग ही कर देने में लगी थी।

ई. सन् की द्वितीय–सदी के जूनागढ़–लेख में महाक्षत्रप रुद्रदामन् ने स्पष्टतया उल्लेख किया है– "वह कर तथा (बेगार) से प्रजा का पीडन नहीं करता है। सुदर्शन–झील में बांध को सुदृढ़ कराने के लिये उसने अस्थायी कर नहीं लगाया है और अपने निजी कोश से ही उसका निर्माण कराया था। सातवाहन–नरेश गौतमी–पुत्र पुलुमावी के कार्ले–अभिलेख में उस यात्रा का राजकीय कर भी दान के रूप में दिये जाने का निर्देश आया है। इस नरेश ने अपने पिता को धर्मानुसार कर (Tax) ग्रहण करने वाला शासक कहा है। गुप्त–युग के लेखों में भी केवल कर शब्द का उल्लेख पाया जाता है। गुप्तकालीन वाकाटक–नरेशों के प्राकृत–अभिलेखों में कर का नाम नहीं आया है।

अशोक द्वारा नियुक्ति पदाधिकारी एवं उसकी शासन–पद्धति –

अशोक के अभिलेखों के अनुसार उसकी राजकीय सुव्यवस्थाएं एवं अनुशासन अनुपम था। पंचम स्तम्भ–लेख के अनुसार धर्म–महामात्य (Minister for Religious Affairs), तथा तृतीय स्तम्भ–लेख के अनुसार महिला–महामात्य (Minister for Women Welfare Affairs), सर्वाधिकार–सम्पन्न रज्जुक (Commissioners) प्रादेशिक (Governers) तथा युक्त (District Magistrates) आदि पदाधिकारियों की नियुक्तियां की थी

अशोक द्वारा नियुक्त अन्य प्रमुख पदाधिकारी निम्न प्रकार हैं –

अन्तः पुरिक – (अन्त:पुर का प्रबंधक) अशोक के अभिलेखों में महिला–महामात्य का उल्लेख आया है, जो अन्त:पुर का प्रबंधक होता था। अभिलेख से स्पष्ट है कि महिला–महामात्य ही इसका प्रबंध करता था।

अन्तःपाल – (Border Security Force) (सीमान्तों का अधिकारी–) यह पदाधिकारी साम्राज्य की सीमाओं की निगरानी और सुरक्षा करता था।

अन्त-महामात्य – यह सीमा–सम्बंधी राजनीति का विचारक होता था, दूसरे देशों से आने वाले सामान का निरीक्षण करता था तथा शुल्क आदि वसूल करने की व्यवस्था भी करता था।

अग्रहारिक – यह दान तथा अग्रहार–भूमि का पदाधिकारी होता था। इसे दानाध्यक्ष भी कहा गया है। अशोक–अभिलेखों में धर्ममहामात्य मे ंजो कार्य बतलाए गये हैं, उनका समावेश अग्रहारिक के कार्यों में होता है। हमारा अनुमान है कि धर्म–महामात्य के अधिकार और कर्त्तव्य अधिक व्यापक थे। वहा राजधानी के कार्यों की पूरी देखरेख किया करता था।

आयुधागाराध्यक्ष – जो शस्त्र–शाला का अध्यक्ष–आयुधागाराध्यक्ष (Chairman of Ordanance Factory) कहलाता था। इसका कार्य अस्त्र–शस्त्रों का निरीक्षण, निर्माण एवं वितरण आदि करना था।

अक्षपटलिक– (लेख–प्रमाण को सुरक्षित रखेन वाला) (In-charge of The Deptt. Of Archieves) मध्ययुग के लेखों में इसको महा–अक्ष–पटलिक कहा गया है। राज्य के महत्वपूर्ण लेखों (दस्तावेजों) को सुरक्षित रखने का कार्य अक्षपटलिक का होता था।

अश्वाध्यक्ष– (घुड़सवारों का उच्च–अधिकारी।) पूर्व मध्य–युग के अभिलेखों में इसका नाम भट्टाश्वपति भी कहा गया है, जो पैदल तथा अश्वारोही टुकड़ी का अधीक्षक होता था।

आटविक– (जंगली जातियों का निरीक्षक।) पहाड़ी एवं जंगली जातियों के कल्याण–कार्यों की देखरेख का प्रबंध यही आटविक किया करता था। अटवी से पैदा होने वाली वस्तुओं की सुरक्षा–व्यवस्था, उनका निरीक्षण एवं राज्य के लिए उसकी उपयोगिता निर्धारण करने का कार्य

भी आटविक किया करता था।

आकराध्यक्ष– (Minister of Mines) (खदानों का निरीक्षक) खदानों के उत्पादन की पूरी व्यवस्था करना एवं उनसे सामान निकलवाने आदि के कार्य आकराध्यक्ष के थे। आकराध्यक्ष एक प्रकार का खान–मंत्री था।

अमात्य– (सचिव Secretary) वह प्रधान–अमात्य (Chief Secretary) अथवा प्रधानमंत्री के पद पर प्रतिष्ठित रहता था और राज्य के समस्त कार्यों की व्यवस्था वही सम्पन्न करता था। वह सम्राट को समस्त कार्यों में सहायता पहुंचाता था।

उपरिक– (प्रान्तपति) वर्तमानकालीन राज्यपाल (Governer) के समान इसके अधिकार और कर्त्तव्य होते थे।

कुमारामात्य– (प्रान्तपति का मंत्री– Secretary to Governer) प्रान्तपति के पद पर प्रायः राजकुमार (Prince) को नियुक्त किया जाता था। अतएव उसके मंत्री को कुमारामात्य कहा जाता था। गुप्त–युग से ही लेखों तथा मुद्राओं में यह शब्द मिलता है। कुमारामात्य का कार्य कुमार के राज्य–संचालन संबंधी कार्यों में सहायता देने का होता था।

ग्रामपति– (इसे महत्तर भी कहा गया है) यह ग्राम का मुख्य पदाधिकारी (Chief of the Village) होता था। इसे मुखिया अथवा ग्राम–प्रधान भी कहा जा सकता है।

गो–अध्यक्ष– गाय अथवा गो–वंश की सुरक्षा एवं निरीक्षण राजकीय–कार्य समझा जाता था। इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि पशुधन की सुरक्षा हेतु शासक कितना सजग रहता था।

दण्डनायक– (नायक–विभाग का अधिकारी)– इसे महादण्ड नायक भी कहा गया है। यह न्यायाध्यक्ष (Judge of Judicial Court of Law) होता था और अपराधों की छानबीन कर निष्पक्ष दण्ड–व्यवस्था करता था।

दण्ड-पाशिक- (साधारण-न्यायाधीश-(Session-Judge) जो पुलिस के कार्यों की देखरेख करता था।

दूतक या दूत- राजदूत (Ambassador) के लिए दूतक या दूत शब्द आया है। सम्राट् अशोक के विदेशों में अपने दूत भेजे थे और धर्म-प्रचार के लिए तथा पारस्परिक सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए उसने वहां दूतावास भी स्थापित किये थे।

नगराध्यक्ष- यह नगर का निरीक्षक होता था और नगर संबंधी व्यवस्थाएं करता था।

बलाधिकृत- (सेना का स्वामी-महाबलाधिकृत-सेना का सर्वोच्च पदाधिकारी (Commander-in-Chief of the Army) होता था। इसकी समता सेनापति तथा महा-सेनापति से क्रमशः की जा सकती है। सैन्य-संचालन की समस्त व्यवस्था इसी के द्वारा होती थी।

क्षत्रप- पश्चिम-भारत के शक राजा क्षत्रप पदवी से विभूषित किये गये थे। यह ईरानी पदवी क्षत्रपावन का विकृत रूप है। प्राकृत में खतप-शब्द मिलता है। क्षत्रप शब्द सम्भवतः उसी से बना है। क्षत्रप महाक्षत्रप के अधीन सहायक के रूप में कार्य करता था। मुद्रालेखों में ये पदवियां सर्वत्र पायी जाती हैं। कार्ले तथा नासिक के गुहालेखों में नहपान को क्षत्रप कहा गया है, परन्तु वह स्वतंत्र रूप से शासन करता था। जुन्नार गुहालेख में 'महाखतपसस सामि नहपानस' उत्कीर्ण है। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि क्षत्रप परतंत्र शासक शक-नरेश की पदवी थी। वैसे तो महाक्षत्रप या क्षत्रप उपाधियों के संबंध में अन्तिम निर्णय करना कठिन ही है। क्योंकि दोनों उपाधियां स्वतंत्र शासक के लिए पयुक्त हैं, पर क्षत्रप-मुद्रालेखों से ज्ञात होता है कि महाक्षत्रप क्षत्रप से बड़ी उपाधि थी। कनिष्क का अधीनस्थ राज्यपाल खरपल्लाना को सारनाथ-प्रतिमा-लेख में महाक्षत्रप कहा गया है।

प्रशासनिक–पद्धति

प्राकृत–अभिलेखों में प्रशासनिक सुव्यवस्था–हेतु विविध प्रशासन–पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं। यहां कतिपय प्रशासनाधिकारियों का उनकी उपाधियों के साथ संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है–

राज्याधिकारियों का अनुसंयान

सम्राट् अशोक ने अपनी प्रजा की सुव्यवस्थाओं के लिये राज्याधिकारियों के अनुसंयान का प्रबंधन किया था। अनुसंयान शब्द कुछ विवादग्रस्त रहा है। अधिकांश विद्वान् इसका अर्थ 'दौरा' (Tour) करते हैं। पर डॉ. जायसवाल के मत से इसका अर्थ स्थानांतरण (Transfer) है। डॉ. भाण्डारकर के दौरे के पक्ष में बहुत पुष्ट प्रमाण दिये हैं। उनके अनुसार युत, राजुक और प्रादेशिक सबसे बड़े राजपुरुष (Govt. Servants) होते थे। यदि उनके दौरे का नियम दिया गया था, तो उसमें अशोक का प्रयोजन भी यही था कि छोटे–छोटे पदाधिकारियों का निरीक्षण किया करें कि कहीं वे प्रजा को सताते तो नहीं? यदि स्थानान्तरण का नियम था, तो उसका भी यही प्रयोजन था कि वे स्वयं उच्छखल न होने पायें। उस दशा में तक्षशिला के पौरों ने अमात्यों को दुष्टता के कारण जो विद्रोह किया था, उसने शायद अशोक को ऐसा नियम बनाने की प्रेरणा दी हो। जो भी हो, वह एक विशेष महत्त्व का नियम था और प्रजा का अनुशासन ही उसका अभिप्राय था। अशोक ने अपनी आज्ञा में कहा है–

"देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सम्राट अशोक की ओर से तोसली के महामात्य नगल वियोहाल को–न्यायाधीशों से यों कहना .... आप लोग हजारों प्राणियों के ऊपर इसीलिये रखे गये हैं कि जिसमें हम अच्छे मनुष्यों के स्नेहपात्र बनें। .... आप लोग इस अर्थ को पूरी तरह नहीं समझते .... एक पुरुष भी यदि अकस्मात् बांधा जाता है या परिक्लेश पाता है, तो उससे बहुत लोगो को दुःख होता है। ऐसी दशा में आपको मध्यमार्ग से चलना चाहिये। किन्तु ईर्ष्या, निठल्लेपन, निष्ठुरता, त्वरा, अनभ्यास, आलस्य और तन्द्रा के रहते ऐसा नहीं हो सकता। इसलिये

ऐसी चेष्टा करनी चाहिये कि ये न आनें पावें। इसका भी मूल उपाय यही है कि सदा आलस्य से बचना और त्वरा न करना। इसलिये काम करते रहो, उठो, चलो और आगे बढ़ो। .... नगलवियोहालक लगातार अपने समय ....प्रतिज्ञा पर जुटे रहें। नगर-जन को अकारण-बंधन और अकारण-परिक्लेश न हो। इस अर्थ के लिए मैं धर्मानुसार प्रति 5वें वर्ष अनुसंयान के लिये निकलूंगा ....। उज्जयिनी से भी कुमार हर तीसरे वर्ष ऐसे ही वर्ग को निकलेगा और तक्षशिला से भी।" (दे. सम्राट अशोक का धौली शिलालेख)

इसी संबंध में वह अन्य दूसरी जगह कहता है .... "अभिषेक के 12वें वर्ष में मैंने यह आज्ञा दी है कि मेरे समस्त विजितों में युत, राजुक और प्रादेशिक प्रत्येक पांचवे-पांचवे वर्ष में अनुसंयान के लिये निकलें ....।" (दे. तृतीय गिरनार-शिलालेख)

प्रतिवेदकों की नियुक्ति- स्व-शासन के उद्देश्य से प्रियदर्शी अशोक ने प्रतिवेदकों की नियुक्ति इसलिये की थी ताकि वे (प्रियदर्शी अशोक को) विशेष समयों में भी प्रजा-प्रतिवेदना सुनाया करें। इसके लिये अशोक ने इस प्रकार आज्ञा प्रसारित की थी- कि "ये नियुक्तियां मैंने इसलिये की हैं कि किसी भी समय, चाहे मैं खाता रहूँ अथवा अन्तः पुर में निवास करूँ या शयनगार में शयन करता रहूँ फिर भी प्रतिवेदक प्रजा का कार्य मुझे अवश्य बतलावें। मैं हर परिस्थिति में हर स्थान पर प्रजा का कार्य करूँगा। जो भी आज्ञा मैं मौखिक रूप से दूँ या महामात्यों को जो भी आवश्यक कार्य सौपूं, उसके संबंध में विवाद या निषेध होने पर परिषद् को बिना विलम्ब मुझे सूचना देना चाहिये ....। मैं कितना ही उद्योग करूँ कार्य में लगा रहूँ, मुझे संतोष नहीं होता। सब लोगों का हित करना ही मैंने अपना कर्त्तव्य माना है और उसका मूल उद्देश्य है उद्योग एवं कार्यतत्परता। समस्त प्रजाजनों के हितों को करने के अतिरिक्त मुझे अन्य कोई काम नहीं हैं। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूँ, उसका कारण यही है कि प्रजाजनों के ऋण से मुक्त हो जाऊँ। बिना उत्कट पराक्रम के संसार का कोई कार्य नहीं होता, सभी कार्य दुष्कर

रहते हैं। (दे. शिलालेख सं.-6)। प्रस्तुत अभिलेख के माध्यम से सम्राट अशोक ने एक आदर्श शासक के कर्त्तव्यों एवं अधिकारों पर अच्छा प्रकाश डाला है।

दूतावास प्रणाली-

प्राकृत-शिलालेखों से यह भी विदित होता है कि प्राचीनकाल की आदर्श शासन-प्रणाली ने विदेशियों को भी आकर्षित किया था। यही कारण है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम) के शासन-काल में यूनान ने उसकी शासन-व्यवस्था का अध्ययन करने हेतु अपने प्रतिनिधि मेगास्थनीज को राजदूत के रूप में पाटलिपुत्र भेजा था, जिसने अपने ग्रंथ (Indica) में उसकी बड़ी प्रशंसा की है। इसी प्रकार सम्राट् अशोक के शासन-काल में भी राजदूतों का कई देशों के साथ आदान-प्रदान हुआ था। उनके यात्रा-वृत्तान्त का अध्ययन कर ही चीनी पर्यटक फाहियान, ह्यूनत्सांग एवं इत्सिंग भारत आये थे। इनके यात्रा वृतान्त भी बड़े प्रभाव सिद्ध हुये।

सम्राट् अशोक की राज्य सीमाएं

सम्राट् अशोक के पंचम शिलालेख में उपलब्ध प्रदेशों-यथा-काम्भोज, गान्धार, योन (यवन) राष्ट्रिक तथा उपरान्तक से ज्ञात होता है कि इन प्रदेशों पर अशोक का शासनाधिकार था। इसी प्रकार उसके तेरहवें शिलालेख से विदित होता है कि आन्ध्र, पारिंद, काम्भोज, भोज, नाभपंती तथा नाभक इन जनपदों पर भी उसका शासन था। इसी लेख में कलिंग-देश का भी उल्लेख है, जिसे उसने बड़ी कठिनाई से जीता था। इन समस्त भौगोलिक सीमाओं को देखकर स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारत की उत्तर सीमावर्ती खैबरघाटी तथा हिमालय से लेकर दक्षिण में आंध्र तक और पूर्ववर्ती बंगाल की खाड़ी से लेकर पश्चिम में सौराष्ट्र तक सम्राट अशोक का सम्राज्य विस्तृत था।

अशोक के द्वितीय शिलालेख के अनुसार दक्षिणी सीमावर्ती चोड (चोल), पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी (सिंघल-प्रदेश) जैसे उसके पड़ौसी देश थे, जिनकी हर दृष्टि से सहायता कर अशोक ने उन्हें

अपना विश्वस्त मित्र बना लिया था। ये समस्त देश गंगवाड़ी (मैसूर) के दक्षिण में थे। इससे यह भी विदित होता है कि अशोक की साम्राज्य-सीमा दक्षिण में वर्तमान मैसूर तक थी।

उसके तेरहवें शिलालेख में उल्लिखित अन्तियोक (ग्रीक शासन, ई.पू. 261-241), तुरम (ई.पू. 285-247), अन्तिकोन (ई.पू. 278-239), मग (ई.पू. 300-258) तथा अलिकसुन्दर (एलेग्जेंडर- ई.पू. 272-258 अथवा 252-215) जैसे शासक-सम्राटों को भी अशोक ने अपना पड़ौसी कहा था। इन तथ्यों के आधार पर इतिहासकारों का कथन है कि ये समकालीन सीरिया, मिश्र (एजिप्ट), मैसिडोनिया, सायरीन तथा एपिरस अथवा कारिंथ के शासक-नरेश थे। शिलालेख के अनुसार उक्त अन्तियोक अर्थात् सीरिया देश के शासक को अशोक ने अपना पड़ौसी देश बतलाया है। अतः स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि अशोक की पश्चिमोत्तर-वर्ती साम्राज्य-सीमा काबुल-नदी तथा हिन्दुकुश-पर्वत तक विस्तृत थी।

द्वितीय शिलालेख के अनुसार सम्राट् अशोक ने देश-विदेश के पड़ौसी राज्यों में आवश्यकतानुसार रुग्ण मनुष्यों एवं पशुओं के लिए यथायोग्य औषधियां तथा चिकित्सकीय गुण वाली जड़ी-बूटियां तथा वृक्ष-पौधे आदि भेजकर उनका विश्वास प्राप्त किया था।

उक्त सभी शासक ईसा-पूर्व के थे तथा अशोक के समकालीन भी, इन सन्दर्भो से अशोक के काल-निर्धारण में भी सहायता मिलती है। बृहत्तर भारतीय संस्कृति एवं इतिहास मौर्यवंशी देवानंपिय पियदसी सम्राट अशोक एवं कलिंगाधिपति जैन सम्राट् खारवेल के यावच्चन्द्र दिवाकरौ कृतज्ञ रहेंगे, जिन्होंने समकालीन संस्कृति एवं इतिहास को कठोर और असहज लेखनोपकरण-सामग्री द्वारा पाषाणोत्कीर्ण-अभिलेखों के माध्यम से सुरिक्षत रखा। उन्होंने समकालीन लोकप्रिय जनभाषा-प्राकृत तथा ब्राह्मी एवं खरोष्ठी-लिपि का प्रयोग कर आगामी संवेदनशील सहृदय साहित्यकारों को भी साहित्य-लेखन हेतु प्रेरणा प्रदान की।

अभिलेख साहित्य वस्तुतः नवीन अध्येताओं के लिये भाषा की दृष्टि से भले ही कुछ विचित्र दुरूह एवं जटिल प्रतीत हो किन्तु यदि प्राकृत भाषागत कुछ प्रमुख विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर ली जाय तो उनका अध्ययन सरल और रूचिकर बन जायगा। यह साहित्य जटिल अलंकृत एवं समस्यन्त–शैली से प्रायः मुक्त रहने तथा गद्य–शैली में तथ्यमूलक वर्ण्य–विषय के रहने के कारण वह सरल एवं सहज गम्य है। इतना अवश्य है कि इस साहित्य के अध्ययन के पूर्व यदि प्राच्य भारतीय इतिहास एवं संस्कृति सम्बन्धी किसी ग्रंथ तथा संस्कृति का अध्ययन कर लिया जाय तो इन अभिलेखों को समझने में कठिनाई नहीं होगी।

हाथीगुम्फा लेख के आधार पर कलिङ्ग-नरेश खारवेल की

उपलब्धियों और उसकी तिथि का विवेचन

प्रो. किरणकुमार थपल्याल

जब सातवाहन वंश पश्चिमी दक्खन में राज्य कर रहा था उस समय कलिङ्ग में एक नये राजवंश का उदय हुआ। अशोक की कलिङ्ग विजय के पश्चात् कलिङ्ग के इतिहास की जानकारी सबसे पहले खारवेल के हाथीगुम्फा लेख से मिलती है जो उड़ीसा के पुरी जिले में, भुवनेश्वर से लगभग 5 कि.मी. की दूरी पर स्थित उदयगिरि पहाड़ी के हाथीगुम्फा नामक गुफा की दीवार और छत पर अंकित है। यह प्राकृत भाषा में रचित और ब्राह्मी लिपि में अंकित है। यह प्राचीन भारत के सर्वाधिक चर्चित लेखों में एक है जिस पर प्रिंजेप, कनिंघम, बूलन्हर, फ्लीट, ल्युडर्स, स्टेन कोनो, टामस, जायसवाल, बनर्जी, बरुआ आदि अनेक विद्वानों ने लेखनी चलाई है।[1] इस लेख के पाठ तथा पाठ के अर्थ में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। इस लेख से खारवेल के वंश, शिक्षा, विजय, प्रजाहित के कार्य, जैनधर्म का अनुयायी होना और जैनियों के निवास के लिए शैल-कृत गुहा निर्माण के बारे में जानकारी मिलती है।

इस लेख में खारवेल को चेदिवंश के वसु (उपरिचर) का वंशज कहा गया है। साथ उसके एक पूर्वज महामेघवाहन का भी उल्लेख है। खारवेल को इस लेख में अपने वंश का तृतीय राजा कहा गया है।[2] बाल्याकाल के पंद्रहवर्ष तक राजकुमारों के उपयुक्त क्रीड़ाओं का आनन्द लेता रहा, उसने लेख (राजशासन सम्बन्धी लेख), रूप (मुद्रादि सम्बन्धी ज्ञान), गणना (राजकीय आमदनी और खर्च आदि का हिसाब), व्यवहार (लोक व्यवहार के नियम) और विधि (राजकीय

कानून) का अध्ययन किया और उस में दक्षता पायी और नौ वर्ष तक 'युवराज' का पद संभाला और चौबीसवें वर्ष समाप्त और पच्चीसवें वर्ष में प्रवेश कर 'महाराज' के पद पर सुशोभित हुआ।[3] खारवेल से पहले किसी भारतीय राजा की उपाधि महाराज नहीं मिलती। तृतीय शती ई.पू. में मौर्य सम्राट् अशोक, जिनका साम्राज्य प्राचीन भारतीय राजाओं में सर्वाधिक विस्तृत था, अपने को केवल राजा कहता है। 'महाराज' की उपाधि भारतीय-यवन राजाओं के प्रभाव से भारतीय राजाओं ने ग्रहण की।

सामान्यतः भारतीय साहित्य और भारतीय लेखों में घटनाओं का विवरण कालक्रम से नहीं मिलता और इसके लिये इतिहासकार, विशेषतः योरोपीय इतिहासकार भारतीयों के इतिहास लेखन के प्रति उदासीनता को उत्तरदायी मानते हैं, किन्तु खारवेल का यह लेख उन चंद लंखों में एक है जिसमें कालक्रम के अनुसार उसके राज्यकाल के तेरह वर्षो की प्रमुख घटनाओं का विवरण क्रमशः दिया गया है जो निम्नवत् है-

राज्यारोहन के प्रथम वर्ष उसने राजधानी कलिङ्ग नगर के चक्रवात से क्षतिग्रस्त रक्षाप्राचीर, द्वारों, उद्यानों आदि का प्रतिसंस्कार किया। कुछ विद्वानों ने खारवेल की राजधानी की पहचान भुवनेश्वर से लगे हुए शिशुपालगढ़ से की गई है जहाँ उत्खनन से द्वितीय प्रथम शती ईसवी पूर्व के संदर्भ में द्वारों और रक्षा दीवार के प्रतिसंस्कार का साक्ष्य मिलता है[4] और 35 लाख धनराशि व्ययकर[5] (अथवा 35 लाख संख्या वाली) प्रजा का मनोरंजन किया। दूसरे वर्ष उसने सातकर्णि की परवाह न कर हस्ति, अश्व, पदाति और रथ युक्त सेना पश्चिम दिशा को भेजी और कृष्णानदी को पार कर असिकनगर[6] को वित्रासित किया, सातवाहनों का प्रारंभिक राज्य कहां था यह विवाद का विषय है। इस लेख से स्पष्ट है कि यह कलिङ्ग के पश्चिम में था। सातकर्णि की पहचान सातवाहन वंशीय नरेश सातकर्णि प्रथम से की जाती है। राज्याभिषेक के तीसरे वर्ष खारवेल ने संगीत और नृत्य का आयोजन कर प्रजा का रंजन किया। राजनीतिशस्त्र के अनुसार राजा को समय-समय पर प्रजा का रंजन करते रहना चाहिए, रंजन करने से ही वह राजा कहलाता है। चौथे वर्ष खारवेल

ने विद्याधर नामक राजा की राजधानी पर अधिकार कर लिया और इसी वर्ष उसने राष्ट्रिकों और भोजकों को भी पराजित किया।

राज्याभिषेक के पाँचवें वर्ष नंदराजा द्वारा तीन सौ साल (ति-वस-सत) उद्घाटित नहर को नगर में प्रवेश कराया।[7] छठे वर्ष राजैश्वर्य का प्रदर्शन करते हुए पौर और जानपद पर अनुग्रह किये, सातवे वर्ष उसकी रानी को संतान की प्राप्ति हुई, आठवें वर्ष में खारवेल ने गोरथगिरि (बराबर पहाड़ी पर) आक्रमण किया और राजगृह के लोगों का उत्पीड़न किया। इस कार्य के संपादन से भयभीत होकर अपनी सेना को मुक्त करने मथुरा को चला गया। नवें वर्ष में उसने 'महाविजय' प्रासाद की स्थापना की। दसवें वर्ष उसने उत्तरी भारत के किसी क्षेत्र पर आक्रमण किया। ग्याहरवें वर्ष में भागते हुए शत्रुओं से मणिरत्न प्राप्त किये और पीथुंड नगर को गधे जुते हुए हल से कर्षित किया, इसी वर्ष उसने तमिल संघ का भेद किया, बारहवें वर्ष उसने उत्तरापथ के राजाओं को विचलित किया, मगध के लोगों में अत्यधिक भय पैदा किया और अपने हाथियों और घोड़ों को गङ्गा का जल पिलाया (अथवा दूसरे अर्थ के अनुसार, उन्हें सुगङ्ग प्रासाद में प्रवेश कराया), मगध के राजा बहसतिमित्र को पराजित किया और उस तीर्थङ्कर की मूर्ति को जिसे पूर्व काल में नन्द राजा कलिंग से ले गया था। वापस लाया[8] और अंग व मगध से बहुत धन लाया। इसी वर्ष पण्ड्य राजा पर आक्रमण कर बड़ी मात्रा में मणि और रत्न प्राप्त किये तथा हाथियों के लिए भवन बनाया, तेरहवें वर्ष में उसने कुमारीपर्वत (खण्डगिरि पहाड़ी) पर बहुत सुन्दर रत्न जटित गुफाओं को वर्षाकाल में जैन मुनियोंके निवास हेतु निर्माण कराया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि खारवेल ने एक निश्चित योजना के तहत अपने विजय अभियानों के बीच अंतराल रखा और इस अंतराल का उपयोग उसने प्रजा के मनोरंजन और हित के कार्यों में लगाया, क्योंकि वह जानता था निरंतर अभियान से अत्यधिक जन और धन की क्षति होगी और सेना भी निरंतर संघर्ष से तंग आ जायेगी। उसने

दूसरे वर्ष सातकर्णि के विरुद्ध, चौथे वर्ष राष्ट्रिको और योजकों के विरुद्ध, आठवें वर्ष गोरथगिरि और राजगृह के विरुद्ध अभियान किये। ग्यारहवें वर्ष कुछ शत्रुओं से मणिरत्न प्राप्त किये और तमिल संघ का भेद किया और बारहवें वर्ष मगधराज बहसतिमित्र को पराजित किया, दूसरी ओर प्रथम वर्ष सुरक्षा–दीवार, द्वार आदि के प्रतिसंस्कार, तीसरे वर्ष संगीत नृत्य से मनोरंजन, पाँचवें वर्ष नहर निर्माण को पूरा करना, छठे वर्ष राजैश्वर्य का प्रदर्शन, सातवें वर्ष संतान लाभ कर उत्सव आयेजन, नवें वर्ष महल निर्माण और तेरहवें वर्ष जैन साधुओं के लिए गुफा–निर्माण के कार्यों में लगाया।

यह उल्लेखनीय है कि खारवेल ने राज्यकाल के आठवें वर्ष और बारहवें वर्ष मगध क्षेत्र पर आक्रमण किया। ऐसा लगता है कि खारवेल को अशोक के समय मगध साम्राज्य की कलिंग विजय जिसमें अशोक के तेरहवें शिलालेख के अनुसार एक लाख युद्ध में मारे गये डेढ़ लाख बन्दी बनाये गये और विशाल संख्या में घायल आदि बाद में मरे की जानकारी थी। ऐसा लगता है कि खारवेल ने मगध से बदला लेने और उसे सबक सिखाने के लिए उस पर एक नहीं दो बार आक्रमण किया।

खारवेल जैन धर्म का अनुयायी था। लेख का प्रारंभ ही जैन मंगलाचरण–नमो अरंहतानं नमो सवसिधानं से होता है। नवें वर्ष में नंद राजा द्वारा कलिंग से अपहृत तीर्थङ्कर की मूर्ति को वापस लाया और तेरहवें वर्ष में जैन साधुओं के निवास के लिये गुफाओं का निर्माण किया। मन से यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि अहिंसा को परम धर्म मानने वाले जैन धर्म का अनुयायी होते हुये खारवेल ने इतने युद्ध कैसे लड़े। यदि कोई राजा है तो चाहे वह किसी भी धर्म का अनुयायी हो वह यदि दूसरे देश पर आक्रमण न भी करें तब भी स्वदेश रक्षा हेतु उसके युद्ध करने की संभावना निरंतर बनी रहती है। यह उल्लेखनीय है कि अशोक ने एक ही युद्ध किया किंतु उसमें भीषण रक्तपात हुआ जिसका वर्णन स्वयं उसने किया है।[9] उसने घोषणा की कि वह इसके बाद किसी राज्य पर आक्रमण नहीं करेगा। खारवेल ने अनेक अभियान किये किंतु किसी भी युद्ध में हताहतों की संख्या नहीं दी, न लेख में भीषण युद्ध होने की

बात कही है। ऐसा लगता है कि उसके अधिकांश अभियान प्रायः शक्ति प्रदर्शन के लिये किये गये थे जिसका उद्देश्य राज्य पर अधिकार करना नहीं था। इसमें रक्तपात की संभावना कम रही होगी। यथा दूसरे वर्ष के सातकर्णि के अभियान में उसकी राजधानी असिक नगर को मात्र विकासित करने की बात है, इसी तरह आठवें वर्ष में भी राजगृह वासियों को त्रसित करने की बात है। बारहवें वर्ष में मगध वासियों को भयभीत किया। इसकी तुलना कीजिए नासिक के लेख में गौतमीपुत्र सातकर्णि के लिए प्रयुक्त **'शकों पह्लवों और यवनों का नाश करने वाला'**[10] और **'क्षहरात वंश का समूलोच्छेदन करने वाला'**[11] और प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को आर्यावर्त राजाओं का 'बलपूर्वक उच्छेद करने वाला' (प्रसह्योत्सादक) से स्पष्ट है कि खारवेल की नीति थी अचानक शत्रु पर आक्रमण कर उसको भयभीत करना और फिर लौट आना। इसमें रक्तपात की संभावना कम से कम थी। यह लगभग तय है कि उसके किसी अभियान से कलिंग राज्य का विस्तार नहीं हुआ।

जैन धर्मावलम्बी खारवेल, बौद्ध धर्मावलम्बी अशोक की भांति धर्म के सम्बन्ध में अत्यंत उदार और सहिष्णु था। अशोक अपने बारहवें शिलालेख में कहता है कि वह सब सम्प्रदायों का आदर करता है (सव पासंडानि.......पूजयति)[12] और ठीक यही बात हाथीगुम्फा लेख में खारवेल के लिये कही गयी है (सव पासंड पूजको)[13] अशोक की नीति धर्म पर आधारित थी उसके राजत्व का आदर्श धर्म चक्रवर्ती था। खारवेल को धंम (धर्म) राजा, भिखु (भिक्षु) राजा कहा गया है। उसे 'क्षेमराजा', वढ़ (वृद्धि को प्राप्त होने वाला), कल्याण को देखने, सनने और अनुभव करने वाला कहा गया है।

खारवेल ने एक महान् विजेता के रूप में अपने समय की राजनीति में महान् भूमिका अदा की। कलिंग राज्य की वह महानतम शासक था। वह जितना प्रसिद्ध अपने विजय अभियानों के लिए है उतनी ही अपनी धर्म-सहिष्णुता की नीति के लिए भी। यह कहना कठिन है

कि राज्यकाल के तेरहवें वर्ष में लिखवाये इस लेख के बाद भी वह राज्य किये अथवा यह उनके राजत्वकाल का अंतिम वर्ष था।

खारवेल की तिथि

खारवेल की तिथि के बारे में विद्वानों में अत्यधिक मतभेद है और जो तिथियॉ प्रस्तावित की गयी हैं वे या तो द्वितीय शती ई.पू. के अंतर्गत आती है अथवा प्रथम शती ई.पू. के। द्वितीय शती ई.पू. के पक्ष में तर्क दिया जाता है कि कुछ पुराणों के अनुसार सातवाहन वंश में 30 राजाओं ने 450 साल तक राज्य किया और चूंकि सातवाहन राजवंश का अंत लगभग 225 ई. में हुआ अतः उनके राज्यकाल का प्रारंभ 225 ई. पू. माना[14] और हाथीगुम्फा में उल्लिखित खारवेल के समकालीन राजा सातकर्णि की पहचान सातवाहन वंश के तृतीय राजा से कर खारवेल को द्वितीय शती ई.पू. के प्रथम अर्द्ध में रखा। किंतु कुछ पुराणों के अनुसार कुल लगभग उन्नीस राजाओं में लगभग 300 साल राज्य किया। इस आधार पर खारवेल की तिथि प्रथम शती ई.पू. होगी। चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण की तिथि 324 ई.पू. है। पुराणों के अनुसार मौर्य वंश ने 137 वर्ष, शुङ्ग वंश ने 112 वर्ष और कण्वों ने 45 वर्ष राज्य किया जिसके बाद सातवाहन वंश का प्रारंभ हुआ जिसकी तिथि इस तरह 324–(137+112+45)= 294=30 ई.पू. हुई। इस वंश के तीसरे राज्य की तिथि प्रथम शती ई.पू. का अंत के लगभग होगी।[15] अनेक विद्वानों के मतानुसार खारवेल उसका समकालीन था।

खारवेल की तिथि द्वितीय शती मानने वाले विद्वान् हाथीगुम्फा लेख के खारवेल द्वारा पराजित बहसतिमित की पहचान पुष्यमित्र शुङ्ग से करते हैं जिसका राज्यकाल 187 ई.पू. से 151 ई.पू. था। इस पहचान का आधार है कि बृहस्पति पुष्यनक्षत्र का स्वामी है। किंतु पुष्यमित्र नाम कई साहित्यिक स्रोतों से ज्ञात है और यदि वह अभिप्रेत होता तो यही नाम दिया गया होता। पुराणों में दी गयी शुङ्ग राजाओं और कण्व राजाओं में बहसतिमित नाम नहीं मिलता। सरकार ने सुझाया है कि बहसति का संस्कृत रूप बृहत्स्वाति अधिक उपयुक्त होगा।[16] जहां तक बहसतिमित

की पहचान का प्रश्न है पयोसा से प्रथम शती ई.पू. के लेख[17] के इस नाम के राजा से उसकी पहचान की जा सकती है। यह उल्लेखनीय है कि दिव्यावदान में बृहस्पति और पुष्यमित्र दो अलग राजा उल्लिखित है।

दूसरी शती ई.पू. के पक्षधर लेख में उल्लिखित यवनराज डिमित की पहचान भारतीय-यवन राजा डिमीट्रियस प्रथम से जिसका राज्यकाल लगभग 190 ई.पू. से 165 ई.पू. है करते हैं। किन्तु 'डिमित' वाचन संदेह से परे नहीं[18] और यदि इस वाचन को सही भी माना जाय तो इस नाम के द्वितीय भारतीय-यवन राजा से पहचान की जा सकती है। यह भी सुझाव है कि डिमित से डायोमीडिज नामक भारतीय-यवन राजा से तात्पर्य हो सकता है।[19]

कुछ लोग 'ति-वस-सत' का अर्थ 103 वर्ष का कर खारवेल के पांचवें राज्यवर्ष को नन्दराजा से 103 साल बाद मानते है। यदि यह माना जाया कि नहर अंतिम नंद राजा के राज्यकाल के अंतिम वर्ष में उद्घाटित हुई तो यह 324-103=221 ई. पू. की तिथि खारवेल के पांचवे वर्ष के लिये होगी और खारवेल के राज्यारोहण के लिए 225 ई. पू होगी- उसका युवराज के रूप में नियुक्ति नौ साल पहले 234 ई.पू. होगा जो कि अशोक के राज्यकाल के अंतर्गत आता है जिसने कलिङ्ग विजय कर उसे अपने राज्य का एक प्रांत बना दिया था। अनेक विद्वानों का मत है कि 'ति-वस-सत' का अर्थ 300 वर्ष करना चाहिए। इस आधार पर नन्दों के राज्यकाल से 300 वर्ष बाद अर्थात् प्रथम शती ई. पू. खारवेल की तिथि होगी। कुछ विद्वानों ने मत व्यक्त किया कि खारवेल के तेरहवें वर्ष के विवरण में मौर्य संवत् का 165 वां वर्ष उल्लिखित है और उनके अनुसार यह संवत् चन्द्रगुपत मौर्य ने 324 ई. पू. में राज्यारोहण से चलाया होगा जिससे खारवेल के राज्यकाल के तेरहवें वर्ष की तिथि 324-165=159 ई.पू. हुई और राज्यारोहण की 271 ई.पू.। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि चन्द्रगुप्त का पोता अशोक और अशोक का पोता दशरथ अपने लेखों में तिथि अपने राज्याभिषेक से गणना करते है। यदि मौर्य संवत प्रचलन में रहा होता तो

चन्द्रगुप्त के वंशजों ने अवश्य उसका उपयोग किया होता, यह स्वीकार करना कठिन है कि चन्द्रगुप्त के वंशज उसका प्रयोग न करें और इतर वंशीय खारवेल जो चन्द्रगुप्त से बहुत बार में राज्य किये उसका प्रयोग करें। इस सिलसिले में यह भी उल्लेखनीय है कि जिसे जायसवाल ने 'मुरिय–कल' पढ़ा उसे दिनेशचन्द्र सरकार 'मुखिय–कल' पढ़ते है और यहां मुख्य कलाओं से उसका तात्पर्य मानते हैं।[21]

खारवेल के लिये 'महाराज' उपाधि का उल्लेख है यह उपाधि भारतीय–यवन राजाओं के अनुकरण पर ली गयी होगी जिन्होंने द्वितीय–प्रथम शती ई.पू. में उत्तर–पश्चिमी भारत में राज्य किया। इस उपाधि के सुदूर कलिंग तक प्रसिद्ध होने में समय लगा होगा और उसके आधार पर खारवेल के लिये प्रथम शती ई.पू. की तिथि अधिक समीचीन होगी।

लिपि शास्त्र के विद्वानों का मत है कि हाथीगुम्फा अभिलेख की तिथि लगभग 100 ई.पू. के बेसनगर गरुड़–स्तम्भ लेख की तिथि से बाद की है। इस आधार पर प्रथम शती ई.पू. वाला मत ही समीचीन लगता है। प्राचीन भारतीय स्थापत्य एवं मूर्तिकला के विशेषज्ञों का कहना है कि कला शैली के आधार पर खारवेल के समकालीन मञ्चपुरी गुफाओं के शिल्प को द्वितीय–प्रथम शताब्दी ई.पू. के भारहुत शिल्प के बाद का मानना चाहिए।

खारवेल के लेख के प्रथम वर्ष के क्रियाकलापों के संदर्भ में **पनतिसाहि सत–सहसेहि पकतियो च रंजयति मिलता है,** जिसका अर्थ कुछ विद्वानों ने लगाया कि उसने पैंतीस लाख प्रजा का रंजन किया।[22] यदि यह अर्थ स्वीकार किया जाय तो कलिङ्ग राज्य की जनसंख्या 35 लाख माननी होगी। अशोक के काल में कितनी जनसंख्या रही होगी कहना कठिन है। इस पैतीस लाख में आधी जनसंख्या स्त्रियों की वृद्धाओं तरुणियों और बालिकाओं की रही होगी, एक बड़ी संख्या पुरुष वृद्धाों की और उससे भी बड़ी संख्या बालको की। इस तरह कृषि सम्बन्धी कठिन कार्य यथा हल चलाना और सैनिक के रूप में कार्य करने वाले नौजवानों की संख्या बहुत नहीं रही होगी। अशोक के युद्ध में

हत एक लाख लोग और बन्दी बनाये डेढ़ लाख लोग और युद्ध में लगे घावों से बाद में मरने वाले सभी नौजवान रहे होगें। इस तरह कलिङ्ग युद्ध के दुष्प्रभाव से नौजवानों की संख्या बहुत घट गयी होगी और विधवाओं की संख्या बहुत बढ़ गयी होगी। खारवेल और उसके पूर्वजों को यह श्रेय जाता है कि उन्होंने कलिङ्ग को इतना शक्तिशाली बना दिया कि वह न केवल बाहरी आक्रमण से अपना बचाव कर सके अपनी चारों दिशाओं में सफल सैनिक अभियान कर सके। अशोक के आक्रमण के फलस्वरूप गिरी हुई हालत से उबार कर कलिङ्ग को एक अत्यंत शक्तिशाली राज्य बनाने में काफी समय लगा होगा। अतः खारवेल की तिथि द्वितीय शती ई.पू. की अपेक्षा प्रथम शती ई.पू. अधिक समीचीन होगी।

पादटिप्पणियां एवं संदर्भ

1. संदर्भ के लिये देखिए, दिनेशचन्द्र सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, भाग 1, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, 1965 पृ. सं–213.
2. संभवतः उसने अपने पूर्वजों का उल्लेख इसलिए नहीं किया कि वे छोटे सामन्त राजा रहे होंगे।
3. कुछ विद्वानों की धारणा है कि राज्यारोहण के लिए खारवेल को 24 वर्ष पूरे करने तक रूकना पड़ा। यह भी धारणा थी कि अशोक का राज्यारोहण के पश्चात् अभिषेक के लिए इसी कारण रूकना पड़ा (काशीप्रसाद जायसवाल जर्नल ऑफ द बिहार एण्ड ओरिसा रिसर्च सोसाइटी, जिल्द प्प्प, पृ. 461) किन्तु जैसा सुधारकर चट्टोपाध्याय ने बताया है बिम्बिसार टु अशोक, कलकत्ता, 1977, पृ. 109 यह असंभव है क्यों श्रीलङ्का के बौद्ध ग्रंथों के अनुसार अशोक का राज्याभिषेक उस समय हुआ जब उनका पुत्र महेन्द्र चौदह साल का था और इस आधार पर उसकी आयु पुत्र महेन्द्र के पैदा होने के समय, मात्र ग्यारह साल होगी, जो सही नहीं।
4. देखिए अमलानन्द घोष द्वारा सम्पादित, ऐन इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन आर्क्यालाजी, खण्ड–2, दिल्ली, 1989, पृ. 413
5. एक मत के अनुसार 'परवाह' कर जिसका तात्पर्य होगा कि उसने सेना सातकर्णि की सहायता के लिये भेजी। मूल शब्द 'अचितयता' है जिसके दोनों अर्थ हो सकते हैं।
6. कुछ 'मुसिकनगर' पाठ स्वीकार करते हैं।

7. इसके भिन्न अर्थ के लिए, देखिए किरणकुमार थपल्याल का लेख अजयमित्र शास्त्री द्वारा संपादित विश्वम्भरा (प्रो. विश्वम्भरशरण पाठक अभिनन्दन ग्रंथ), नई दिल्ली, 1995, 1, पृ. 102 और आगे।
8. भिन्न अर्थ के लिए देखिए वही
9. अशोक का तेरहवां शिलालेख देखिए, दिनेशचन्द्र सरकार पूर्वोक्त, पृ. 34 और आगे।
10. सक–यवन–पह्लव निसूदन, देखिए दिनेशचन्द्र सरकार, पूर्वोक्त पृ, 204
11. खखरातवस निरवसेस, कर, वही
12. देखिए दिनेशचन्द्र सरकार, पूर्वोक्त पृ, 32
13. इसके साथ ही खारवेल की सभी देवायतनों का सत्कार करने वाला कहा गया है (सव–देवायतन–सकार–कारको) देखिए दिनेशचन्द्र सरकार, वही, पृ. 219
14. देखिए हेमचन्द्र रायचौधरी, पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंशेण्ट इंडिया, आठवां संस्करण, 2004, पृ. 359 और आगे, दिनेशचन्द्र सरकार, रमेशचन्द्र मजुमदार और ए.डी. पुसाल्कर संपादित द एज ऑफ इंपीरियल यूनिटी, मुंबई, 1953, पृ. 195, पादटिप्पणी –1
15. देखिए, दिनेशचन्द्र सरकार वही, पृ. 195
16. वही पृ. 214
17. दिनेशचन्द्र सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस जिल्द 1, पृ. 96, पमोसा लेख में बहसतिमित के लिये
18. देखिए हेमचन्द्र रायचौधरी, पूर्वोक्त, पृ. 371 पादटिप्पणी 2
19. वही
20. काशीप्रसाद जायसकाल, जर्नल ऑफ द बिहार एण्ड ओडिसा रिसर्च सोसाइटी, 1917, पृ. 459
21. दिनेशचन्द्र सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, पृ. 218
22. इसका दूसरा अर्थ है कि खारवेल ने 35 लाख मुद्रा खर्च कर प्रजा का मनोरंजन का देखिए दिनेश चन्द्र सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, जिल्द 1, पृ. 219 (संस्कृत रूप)।

हेलिओदोर का बेसनगर गरुड़ अभिलेख एक ऐतिहासिक अध्ययन

प्रो. किरणकुमार थपल्याल

यह गरुड़ स्तम्भलेख मध्यप्रदेश के विदिशा जिले में बेसनगर (प्राचीन विदिशा) के उत्तर–पूर्व में स्थित स्तम्भ पर अंकित है।[1] इस अभिलेख का उद्‌वाचन एवं विवेचन कई विद्वानों ने किया है, यथा जे फिलिप फोगेल, ई.जे. रैप्सन, देवदत्त रामकृष्ण भाण्डारकर, हेमचन्द्र राय चौधरी, एच ल्यूडर्स, दिनेश चन्द्र सरकार।[2] इस लेख की भाषा प्राकृत है और लिपि ब्राह्मी। लिपि के आधार पर इस लेख की तिथि द्वितीय शती ई.पू. का अंत आंकी गई है। लेख का पाठ निम्नवत है[3] –

भाग –1

1. (दे)व देवस वा(सुदे)वस गरुडध्वजे अयं
2. कारिते इ(अ) हेलिओदोरेण भाग–
3. वतेन दियस पुत्रेण तख्खसिलाकेन
4. योनदूतेन (आ)गतेन महाराजस
5. अंतिलिकितस उपंता सकासं रञो
6. कासीपु(त्र)स भागभद्रस त्रातारस
7. वसेन चतुदसेन वधमानस।

भाग - 2

1. तिनि अमुत–पदानि (इ अ) (सु) अनुठितानि
2. नेयंति (स्वगं) दम चाग अपमाद।

हिन्दी अनुवाद

भाग -1

देवताओं के देवता वासुदेव के लिए गरुडध्वज भागवत हेलिओदोर (ग्रीक Heliodorus) ने स्थापित किया। वह दिय (ग्रीक Dion) का पुत्र और तक्षशिला वासी था और यवनदूत के रूप में महाराज अंतलिकित (ग्रीक Antialkidas) के पास से त्रातार काशीपुत्र भागभद्र के पास उसके वर्धमान चौदहवें वर्ष में आया था।

भाग - 2

तीन अमृत पद हैं–दम त्याग और अप्रमाद, जो यहाँ (इस लोक में) सुचारू रूप से अनुष्ठित किये जाने पर स्वर्ग को ले जाते हैं।

लेख का राजनैतिक महत्त्व

यवन राज अंतिलिकित यूक्रेटाइडिस का वंशज था। कुछ इसे इस राजा का पौत्र और हेलिओक्लिस का पुत्र मानते हैं।[4] दिनेशचन्द्र सरकार इसे लाइसेस का पुत्र मानते है।[5] यवनराजा अंतलिकित का भारतीय राजा भागभद्र के पास अपना राजदूत भेजना महत्त्वपूर्ण है। यवनों ने पहले भी भारतीय राजा के पास राजदूत भेजे थे। सिल्यूकस ने चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में मेगास्थने नामक राजदूत भेजा था जिसने अपनी पुस्तक इंडिका, जो मूल रूप में अनुपलब्ध है, में भारत और भारतीयों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी दी है। बिन्दुसार तथा अशोक के काल में भी समकालीन यवन राजाओं से दूतों के आदान प्रदान के साक्ष्य मिलते हैं। विद्वानों का अनुमान है कि इस यवन राजा ने अपने प्रतिद्वन्दी यवन राजा के विरूद्ध सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से यह दूत भेजा था। दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार यह प्रतिद्वन्दी राजा मेनेण्डर

रहा होगा,[6] अवधकिशोर नारायण के अनुसार अपोलोजोटस,[7] और जान मार्शल के अनुसार स्ट्रेटो प्रथम।[8]

भारतीय राजा भागभद्र की पहचान के बारे में भी विद्वानों में मतभेद है। देवदत्त रामकृष्ण भाण्डारक[9] ने 'कासीपुत्र' को 'कौत्सीपुत्र' अर्थात् 'कौत्सगोत्र की स्त्री का पुत्र' माना किंतु दिनेश चन्द्र सरकार[10] के अनुसार यदि कौत्सीपुत्र अभिप्रेत होता तो 'कौत्सी' का प्राकृतिक रूप 'कोछी' होता। कुछ विद्वानों का[11] मानना है कि भागभद्र की माता के पितृकुल का गोत्र 'काश' था जो कि विवाह के पश्चात् भी उसके लिये प्रयुक्त होता रहा, वैसे ही जैसे वाकाटक वंश की रानी प्रभावतीगुप्ता के लिये उसके पितृकुल का 'धारण' गोत्र प्रयुक्त होता रहा।[12] प्रायः सभी विद्वान् यह मानते हैं कि भागभद्र शुङ्गवंशीय राजा था, यद्यपि पुराणों में दी गयी शुङ्ग राजाओं की सूची में यह नाम नहीं मिलता[13], पुराणों की सूची में इस वंश के पाँचवें राजा का नाम भिन्नतः आद्रक, आर्द्रक भद्रक आदि के रूप में मिलता है।[14] जॉन मार्शल तथा कुछ अन्य विद्वान् इसी राजा से उसकी पहचान करते हैं।[15] इस मत को स्वीकार करने में कठिनाई यह है कि कुछ पुराण इस राजा का राज्यकाल दो वर्ष और कुछ सात वर्ष बताते हैं जब कि अभिलेख राजत्वकाल के चौदहवें वर्ष का है। इसे स्वीकार तभी किया जा सकता है। जब हम यह माने के पुराणों ने उनके राज्यकाल की सही जानकारी नहीं दी है। कुछ विद्वानों ने उस राजा की पहचान पुराणों में उल्लिखित नवे राजा भागवत से की है।[16] इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि बेसनगर से ही प्राप्त एक अन्य लेख में किसी व्यक्ति द्वारा राजा भागवत के राज्यकाल के बारहवें वर्ष में गरुड़ स्तम्भ स्थापित किये जाने का उल्लेख है।[17] यह मानना कठिन है कि उसी राजा को चौदहवें वर्ष के लेख में तो भागभद्र कहा है और बारहवें वर्ष के लेख में भागवत, अतः दोनों को भिन्न मानना ही उचित होगा।[18] इतना स्पष्ट है कि विदिशा इस राजा के राजत्वकाल में एक महत्त्वपूर्ण नगर था। कालिदास विरचित मालविकाग्निमित्रम् से ज्ञात होता है कि शुङ्ग वंश के संस्थापक पुष्यमित्र के राजत्वकाल में उसका पुत्र अग्निमित्र 'राजा' की उपाधि के साथ विदिशा क्षेत्र का प्रांतपति था।[19]

यह भी हो सकता है कि भागभद्र के काल में विदिशा शुङ्ग वंश की राजधानी रही हो।

लेख की तिथि

यदि भागभद्र की पहचान पाँचवें राजा भद्रक से करें तो इस लेख की तिथि निम्नवत् होगी। पुष्यमित्र के राज्यारोहण की तिथि लगभग 187 ई. पू. है, और उसके तथा उसके बाद के तीन राजाओं की सम्मिलित राज्यकाल 61 वर्ष का है। अतः भागभद्र के राज्यारोहण की तिथि 187–61=126 ई.पू. और राज्यारोहण के चौदहवें वर्ष में लिखाये इसे लेख की तिथि 126–13=113 ई.पू. होगी। यदि हम भागभद्र की पहचान भागवत, जो शुङ्ग वंश का नौवां राजा था, से करें तो उसके राज्यारोहण की तिथि (187–78–आठ राजाओं का सम्मिलित राज्यकाल = 109 ई.पू. और इस लेख की तिथि 109–13=96 ई.पू.होगी। इसमें से किसी भी तिथि को माने वह 100 ई.पू. के आसपास ही बैठती है। लिपिशास्त्र के विद्वानों का मत है कि लिपि के आधार पर बेसनगर लेख की तिथि लगभग यही अनुमानित है।[20] इस लेख की तिथि निर्धारण से समकालीन यवनराजा अंतलिकित की भी तिथि निर्धारण में सहायता मिलती है। लगभग 40 भारतीय–यवन राजाओं के सिक्के मिलते है जिन्होंने दूसरी–पहली शताब्दी ई.पू. में उत्तर–पश्चिमी भारत पर राज्य किया था। इनमें से कुछ एक दूसरे के समकालीन थे और अधिकांश राजाओं की राज्य–सीमा निर्धारण कठिन है। यों सामान्यतः जिस क्षेत्र मे ंकिसी राजा के सिक्के विशाल संख्या में मिले उसे उस राजा का राज्य–क्षेत्र मान लिया जाता है। अंतलिकित के सिक्के तक्षशिला के आस–पास के क्षेत्र में पर्याप्त संख्या मे मिलने से यह धारणा थी कि वही उसका राज्य–क्षेत्र रहा होगा। इस लेख में यवनदूत हेलियोदोर को तक्षशिला वासी और अंतलिकित के पास से आया कहा गया है जिससे सिक्कों के साक्ष्य से निकाले निष्कर्ष की पुष्टि होती है।

भारतीय राजा तथा यवन राजा की उपाधियाँ

इस लेख में यवन राजा अंतलिकित को 'महाराज' कहा गया है और भारतीय राजा भागभद्र को 'राजा'। निश्चय ही यवनदूत का उद्देश्य यवन राजा को भारतीय राजा से महान् बताना नहीं था। ऐसी धृष्टता करने से वह भारतीय राजा का कोपभाजन बनता। ऐसा करने का कारण यह था कि यवन राजा, जैसे कि उनके सिक्कों पर अंकित लेखों से ज्ञात होता है, अपने नाम का महाराज की उपाधि के साथ उल्लेख करते हैं। उस समय तक भारतीय राजाओं की सर्वोच्च उपाधि 'राजा' ही थी। यह सर्वविदित है कि प्राचीन भारत का महानतम शासक अशोक भी अपने को केवल 'राजा' कहता है। बाद में भारतीय राजा भी यवन राजाओं का अनुसरण कर महाराज की उपाधि धारण करने लगे। गुप्तकाल और बाद के काल में तो वे 'महाराजाधिराज', 'परमभट्टारक महाराजाधिराज' तथा 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' जैसी उपाधियां धारण करने लगे।

इस लेख में भागभद्र को 'त्रातार' कहा गया है जो कि ग्रीक भाषा के 'सोटेर' (Soter) का भारतीयकरण है, जो ग्रीक राजाओं की उपाधि थी। यवनदूत ने जानबूझ कर भारतीय राजा के लिए इस उपाधि का प्रयोग किया क्योंकि वह उसकी सहायता अंतलिकित को उसके प्रतिद्वन्दी राजा से त्राण पाने के लिए चाहता था। इससे भारतीय राजा का प्रसन्न होना स्वाभाविक था। इस लेख की रचना में किसी यवन का हाथ, कम से कम सहयोग अवश्य रहा होगा, दिनेश चन्द्र सरकार तो इस बात की संभावना मानते हैं कि इसकी रचना में स्वयं यवनदूत हेलियोदोर का हाथ था।[21]

धार्मिक महत्त्व

बेसनगर अभिलेख का भागवत धर्म के विषय में जानकारी के लिये विशेष महत्त्व है। यों तो भगवान का अनुयायी भागवत कहलाएगा तथापि 'भागवत' धर्म वैष्णवधर्म के लिए और 'भागवत' (आगे चलकर परमभागवत) वैष्णवधर्म के अनुयायियों के लिए रूढ हो गये। ईसा पूर्व

एवं ईसा पश्चात् की कुछ शताब्दियों में भागवत से तात्पर्य उस धर्म–संप्रदाय से था जो वासुदेव (कृष्ण) को केन्द्र में रखकर विकसित हुआ।[22] कृष्ण के साथ उसके सम्बन्धी बड़े भाई बलराम, उनकी पत्नी रूक्मिणी से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्न, उनकी दूसरी पत्नी जाम्बवती से उत्पन्न शाम्ब को भी देवत्व के रूप में स्थान दिया गया और ये पांचों वृष्णियों के पंचवीर कहलाए। मथुरा के समीप स्थित सोरा से प्राप्त प्रथम शती के प्रारंभ के एक लेख में 'वृष्णीनां पञ्चवीराणाम्' के रूप में इनका उल्लेख है।[23] किन्हीं कारणों से इन पांचों में से शाम्ब को अलग कर दिया गया और चार वृष्णियों को चतुर्व्यूह के रूप में प्रतिष्ठित किया गया जिनके केन्द्र में वासुदेव रहे जिन्हें आगे चलकर विष्णु के अवतारों में प्रमुख स्थान मिला। चतुर्थ शती ई.पू. के अंत में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में सिल्यूकस के दूत के रूप में आये मेगास्थाने ने उल्लेख किया है कि मथुरा के शूरसेन हेराक्लजि की पूजा करते थे। हेराक्तीज की पहचान वासुदेव कृष्ण से की गयी है।[24] ऐसा लगता है कि उस काल में उसकी लोकप्रियता मथुरा के आस–पास के क्षेत्र तक ही सीमित थी, क्योंकि लगभग इसी काल के अङ्गुत्तरनिकाय में दिये गये धर्मसंप्रदायों की सूची में भागवत (अथवा वासुदेवक) का उल्लेख नहीं मिलता। कालान्तर विवेच्य बेसनगर, घोसूंडी (चित्तौड़ गढ़ जिला, राजस्थान)[25] नानाघाट (पुणे जिला, महाराष्ट्र)[26] तथा नासिक (नासिक जिला, महाराष्ट्र)[27] से प्राप्त लेखों से ज्ञात होता है कि द्वितीय शती ई.पू. से द्वितीय शती इसवी तक यह धर्म एक विस्तृत क्षेत्र में फैल गया था। यह उल्लेखनीय है कि घोसूंडी, नानाघाट और नासिक के अभिलेखों मे मात्र संकर्षण और वासुदेव का उल्लेख है और इन तीनों लेखों में पहले संकर्षण का नाम आता है और फिर वासुदेव का। पाणिनि के व्याकरण के नियम के अनुसार[28] जब दो नामों का द्वन्द्व समास की तरह प्रयोग होता है तो सामान्यत: छोटा नाम पहले और बड़ा नाम बाद में आना चाहिए। इस आधार पर पहले वासुदेव नाम आना चाहिए और फिर संकर्षण। किंतु उसी के दूसरे नियमानुसार जब दोनों की प्रतिष्ठा में अंतर हो तो अधिक प्रतिष्ठित का नाम पहले होना चाहिए चाहे वह नाम बड़ा ही क्यों न

हो।[29] उपर्युक्त लेखों से लगता है कि बड़े भाई के नाते संकर्षण को महत्त्व दिया जा रहा है। नानाघाट और नासिक के लेखों में इन दोनों का अन्य देवताओं के साथ उल्लेख किया गया है किंतु घोसूंडी अभिलेख में उन्हें 'भगवान्', 'अविजित' और 'सबके ईश्वर' (भगवद्भ्यां संकर्षण-वासुदेवाभ्यां अनिहिताभ्यां सर्वेश्वराभ्यां) कहा गया है। बेसनगर अभिलेख में केवल वासुदेव का ही उल्लेख है और उसे 'देवताओं का देवता' कहा गया है। कालक्रम की दृष्टि से इन लेखों में बेसनगर का अभिलेख सबसे प्राचीन है और उसके बाद क्रमश घोसुंडी नानाघाट तथा नासिक अभिलेख आते हैं। इससे स्पष्ट है कि जहां कुछ लोग वासुदेव को सर्वोच्च देवता मान रहे थे। वहीं दूसरे लोग इन्हें पंचवीरों के अंतर्गत अथवा संकर्षण के साथ पूज रहे थे। कालान्तर वासुदेव को विष्णु का अवतार माना जाने लगा और वृष्णि वंश के अन्य सदस्यों की पूजा लगभग समाप्त हो गयी।

विवेच्य लेख में 'देवताओं के देवता' वासुदेव के लिये गरूड़ध्वज स्थापित करने की बात है। मन्दिरों तथा अन्य धार्मिक स्थलों पर उनकें प्रतिष्ठित देवता के लिए ध्वज स्थापित करने का चलन अति प्राचीनकाल से चला आ रहा। गरुड़ विष्णु का वाहन है और वैष्णव मंदिरों में गरूड़ध्वज की स्थापना की जाती रही है। वैदिक काल में विष्णु सौर देवता माने जाते थे। सूर्य को 'सुपर्णो गरुत्मान्त'[30] (अच्छे पंख वाला गरुड़) कहा गया है। बाद में वही गरुड़ को विष्णु का वाहन बना दिया गया। यह कुछ ऐसा ही है जैसे पहले जब बुद्ध की मानव रूप में मूर्ति बनाने की प्रथा नहीं थी तो उसे प्रतीकों के द्वारा दर्शाया जाता था। यारहुत साँची आदि की द्वितीय-प्रथम शती इसवीं पूर्व की कला में बोधिवृक्ष को बुद्ध के प्रतीक रूप में दिखाया गया है। बाद में जब बुद्ध की मानव रूप में मूर्तियां बनने लगीं तो उन्हें बोधिवृक्ष के नीचे बैठा दिखाया गया है। बेसनगर के जिस स्तम्भ पर विवेच्य लेख है, के ऊपर स्तम्भशीर्ष के रूप में गरुड़ की आकृति रही होगी जो कालान्तर में टूट कर गिर गयी और अब उपलब्ध नहीं। जैसे उपर कहा गया है, बेसनगर से प्राप्त एक अन्य लेख में भी गरुड़ध्वज की स्थापना का उल्लेख है। यहीं से एक

गरुड़ जैसी आकृति का स्तम्भशीर्ष मिला है जिसके आकार प्रकार से स्पष्ट है कि यह किसी और स्तम्भ का भाग रहा होगा जो अब उपलब्ध नहीं[31] इसी स्थल से प्राप्त एक खण्डित स्तंभ पर प्रासादोत्तम (अर्थात् भव्य मंदिर) लेख मिला।[32] इन सब साक्ष्यों से विदिशा में वासुदेव के मंदिर होने की पूरी संभावना थी और अंततः यहां पर 1963 से 1965 के बीच किये उत्खननों से एक चौथी–तीसरी शताब्दी ई.पू. में निर्मित मन्दिर के अवशेष प्राप्त हुये।[33] यह उल्लेखनीय है कि बेसनगर में तालध्वज तथा मकरध्वज के भी अवशेष प्राप्त हुये है जो क्रमशः संकर्षण तथा प्रद्युम्न के ध्वज है।[34] इससे ज्ञात होता है कि यद्यपि लेख में केवल 'देवताओं के देव' वासुदेव का ही उल्लेख है, तथापि वृष्णिवंश के अन्य प्रमुख सदस्य (पंचवीर अथवा चतुर्व्यूह के अंग से सम्बन्धित) निर्माण भी बेसनगर में किया गया था। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विदिशा का क्षेत्र ई.पू. द्वितीय–प्रथम शताब्दी में भागवत धर्म का अत्यंत महत्त्वपूर्ण केन्द्र था।

इस लेख में यवनदूत हेलियोदोर के लिये भागवत अर्थात् वैष्णव कहना महत्त्वपूर्ण है। ऐसी संभावना व्यक्त की जा सकती है कि चूंकि वह अपने राजा अंतलिकित के लिये भागवत धर्मानुयायी भारतीय राजा भागभद्र की सहायता प्राप्त करना चाहता था इसलिए राजनैतिक लाभ के लिये अपने को भागवत कहा। किंतु इस बात के प्रबल प्रमाण है कि यवनों और अन्य विदेशी मूल के राजाओं और सामान्य जनों ने भारतीय धर्म ग्रहण किया था। सुप्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ मिलिन्दपञ्हो में थेर नागसेन से बौद्धधर्म तथा दर्शन से सम्बन्धित प्रश्न पूछने वाले मिलिन्द की पहचान प्रायः सभी विद्वान् सुप्रसिद्ध यवन राजा मेनेण्डर से करते है जिसकी असंख्य मुद्राएँ उत्तर–पश्चिमी भारत में प्राप्त हुई है। स्वात घाटी से प्राप्त एक अस्थि कलश लेख में यवन थियोदोर (ग्रीक Theodoros) के द्वारा बुद्ध की अस्थियों की स्थापना की बात कही गयी है।[35] पश्चिमी दक्खन की शैलकृत गुफाओं पर प्राप्त लेखों से यूनानी मूल के लोगों द्वारा बौद्ध सम्बन्धी कार्यों के लिए दान देने का उल्लेख है।[36] यवनों के अतिरिक्त

शक, कुषाण आदि विदेशी मूल के राजाओं और सामान्यजनों द्वारा भारतीय धर्मों को अपनाने के अनेक साक्ष्य है।

साहित्यिक महत्त्व

बेसनगर अभिलेख के द्वितीय भाग में दम, त्याग और अप्रमाद को स्वर्ग को ले जाने वाला कहा गया है। धम्मपद में अप्रमाद को अमृत पद कहा गया है। ये तीन पद ऋग्वेद में उल्लिखित विष्णु के तीन पदों की याद दिलाते हैं (इदं विष्णुर्विचकमे त्रेधा निदधे पदम्)[37] किंतु विद्वानों ने इनका सही स्रोत खोज निकाला है। यह महाभारत के **दमस्त्यागोऽप्रमादश्च एतेष्वमृतमाहितम्**[38] से लिया गया लगता है जिसमें लेख के तीन पदों-दम, चाग (त्याग) और अप्रमाद का उल्लेख उसी क्रम में है और लेख के समान उन्हें अमृत कहा गया है। इसी से कुछ सीमा तक मिलता जुलता है महाभारत का **दमस्त्यागोऽप्रमादश्च ते त्रयो ब्रह्मणो हयः**[39] जिसमें दम, त्याग और अप्रमाद को 'ब्रह्म का घोड़ा' कहा गया है। यह स्वीकार कने पर कि बेसनगर लेख भाग-2 की पंक्तियां महाभारत पर आधारित हैं, यह लेख महाभारत की पंक्तियों की तिथि-निर्धारण में सहायक है। आज महाभारत में एक लाख से अधिक श्लोक पाये जाते हैं। यद्यपि परंपरा के अनुसार महाभारत के रचयिता व्यास है, तथापि सभी इतिहासकार यह मानते हैं कि यह न तो एक व्यक्ति की रचना है न एक काल की। इस तरह के साक्ष्य मिलते हैं कि इस ग्रन्थ में मूलतः आठ हजार श्लोक थे और तब यह 'जय' के नाम से जाना जाता था। फिर नये श्लोक जुड़ते गये और इसकी संख्या लगभग चौबीस हजार हो गयी ओर तब यह 'भारत' कहलाया। जब श्लोकों की संख्या बढकर एक लाख से अधिक हो गयी तो यह 'महाभारत' कहलाया। विद्वानों का यह भी मानना है कि महाभारत ग्रन्थ की रचना का प्रारंभ लगभग छठी शती ई.पू. में हुआ होगा और उसे अंतिम रूप लगभग 400 ई. में प्राप्त हुआ होगा अर्थात् इस स्वरूप को पाने में उसे लगभग एक सहस्र वर्ष लगे होंगे। यह बताना अत्यंत कठिन है कि महाभारत का कौन सा भाग कब रचा गया होगा। बेसनगर अभिलेख के साक्ष्य से ऐसा कहा जा

सकता है कि महाभारत का वह भाग जिसमें दम, त्याग और अप्रमाद को अमृत कहा गया है यवन राजदूत हेलिओदोर को उपलब्ध रहा होगा। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि यह यवनदूत तक्षशिला वासी था और तक्षशिला में महाभारत के पाठ की विशेष परंपरा रही थी। कहा जाता है कि कुरू राजवंश की कहानी वैशम्पायन ने जनमेजय को तक्षशिला में ही सुनाई थी। हो सकता है कि यवन राजदूत हेलिओदोर ने अपने नगर तक्षशिला में महाभारत का वाचन सुना हो और उन्हें दम, त्याग और अप्रमाद गुणों की महत्ता बताने वाला श्लोक पसंद आया हो और उन्होंने उसके भाव को प्राकृत भाषा में गरुड़ स्तम्भ पर अंकित करवा दिया हो।

इस तरह बेसनगर गरुड़ स्तम्भ लेख महत्त्वपूर्ण राजनैतिक धार्मिक तथा साहित्यिक जानकारी का स्रोत है। इससे तत्कालीन यवन राजा अंतलिकित और भारतीय राजा भागभद्र के मध्य दौत्य सम्बन्ध की जानकारी मिलती है। इस लेख से ज्ञात होता है कि भागवत धर्म इतना लोकप्रिय हो गया था कि यवनदूत हेलियोदोर ने इसे ग्रहण किया और उसने अपने इष्टदेव वासुदेव के लिये गरुड़ध्वज की स्थापना की। लेख के भाग दो महाभारत के जिस अंश पर आधारित है उस अंश को 100 ई.पू. से पहला रचित माना जा सकता है।

संदर्भ एवं पादटिप्पणियां –

1. इस स्तम्भ की खोज कनिंघम ने 1880 में की थी।
2. संदर्भो के लिये देखिए निदेशचन्द्र सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, जिल्द 1, द्वितीय संस्करण, पृ. 88, कलकत्ता, 1965
3. दिनेशचन्द्र सरकार के द्वारा प्रस्तुत पाठ (वही, पृष्ठ 88–89) पर आधारित।
4. रमेशचन्द्र मजुमदार एवं ए.डी. पुसाल्कर द्वारा संपादित एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ. 116 में दिनेशचन्द्र सरकार द्वारा उद्धृत मत।
5. वही
6. वही
7. अवधकिशोर नारायण, इंडोग्रीक्स, 1980 का संस्करण, पृ. 120
8. जॉन मार्शल टैक्सिला, जिल्द 1, पृ. 17 या 37
9. भाण्डारकर का मत दिनेशचन्द्र सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, पृ. 89, पादटिप्पणी 1 में उद्धृत।
10. दिनेशचन्द्र सरकार, वही

11. वही
12. वही, पृ. 436, 439
13. यह नाम (भागभद्र) सामान्य नहीं लगता, प्रो. चरणदास चटर्जी ने मौखिक रूप से हमें सुझाया कि ग्रीक दूत ने भागवत भद्रक का संक्षिप्तिकरण भागभद्र कर दिया।
14. देखिए हेमचन्द्र रायचौधरी, पालिटिकल हिस्ट्री आफ एंशेण्ट इंडिया, 2004 का आठवां संस्करण (ब्रतीन्द्र मखर्जी की टिप्पणियों सहित), नई दिल्ली, पृ. 349
15. जॉन मार्शन, गाइड टु टैक्सिला, पृ. 11, पादटिप्पणी, हेमचन्द्र रायचौधरी, पूर्वोक्त, पृ. 350 पर उद्धृत।
16. देखिए अवध किशोर नारायण, इण्डोग्रीक्स, पृ. 119 नारायण इस राजा के शुङ्गवंश से भिन्न किसी वंश के होने की संभावना भी मानते है। वही पादटिप्पनी 8
17. दिनेश चन्द्र सरकार, रमेशचन्द्र मजुमदार तथा ए.डी. पुसाल्कर द्वारा संपादित, एज ऑफ इंपीरियल यूनिटी, पृ. 116
18. वही
19. देखिए हेमचन्द्र रायचौधरी, पूर्वोक्त, पृ. 330, पादटिप्पणी 1
20. देखिए दिनेशचन्द्र सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस जिल्द 1, पृ. 88
21. वही पृ. 89, पादटिप्पणी -2
22. इसे भागवत के अतिरिक्त एकान्तिक, पञ्चरात्र तथा सात्वत भी कहा गया है।
23. दिनेशचन्द्र सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, पृ. 90 और आगे
24. एरियन द्वारा उद्धृत, देखिए रमेशचन्द्र मजुमदार क्लासिकल अकाउंट्स ऑफ इण्डिया, पृ. 221, कलकत्ता, 1960
25. दिनेशचन्द्र सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस जिल्द 1 पृ. 90
26. नागनिका का नानाघाट गुहालेख, दिनेशचन्द्र सरकार वही, पृ. 192 और आगे
27. सातवाहन नरेश वासिष्ठीपुत्र पुलुभावि के राज्यकाल के 19वें वर्ष का नासिक अभिलेख, वहीं, पृ. 203 और आगे।
28. अष्टाध्यायी, 2.2.34
29. वही, 4. 3. 98, वासुदेवार्जुनाभ्याम् वुन्।
30. ऋग्वेद, 1. 164.46
31. देखिए एम.डी. खरे, अमलानन्द घोष द्वारा सम्पादित इंन्साइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन आर्क्यालॉजी जिल्द 2, पृ. 62
32. वही
33. वही
34. जितेन्द्रनाथ बनर्जी, डेवेलपमेंट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता, 1956, पृ. 104
35. दिनेशचन्द्र सरकार, सेलेक्ट इंसिक्रप्शंस जिल्द 1, पृ. 111
36. देखिए थू. एन घोषाल का लेख, के. ए. नीलकान्त शास्त्री द्वारा सम्पादित, कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, जिल्द-2, कलकत्ता, 1956, पृ. 473
37. ऋग्वेद, 1.22.17
38. महाभारत, 12.43.4 **39.** वही, 11.7.23

ईसापूर्व अभिलेखों की ब्राह्मी लिपि का एक विश्लेषण

डॉ. रवीन्द्र कुमार वशिष्ठ
शिवाजीकॉलेज(दिल्ली विश्वविद्यालय)

ब्राह्मी-लिपि और खरोष्ठी-लिपि भारत वर्ष की प्राचीनतम ज्ञात लिपि हैं। खरोष्ठी लिपि का प्रयोग, प्रसार और प्रचार विशेष रूप से भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में प्राप्त होता है। ब्राह्मी लिपि समस्त भारत में प्रयुक्त उपलब्ध होती है। जहाँ ब्राह्मी लिपि बायीं से दायीं ओर लिखी जाती थी वहीं खरोष्ठी लिपि दायीं से बायीं ओर लिखी जाती थी। कालान्तर में खरोष्ठी लिपि का प्रयोग समाप्त हो गया परन्तु ब्राह्मी लिपि का प्रयोग सारे देश में व्यापक रूप से होने लगा। सारे देश में प्रयोग होने के कारण क्षेत्रों की विभिन्नता एवं लेखन की भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों के कारण ब्राह्मी लिपि में परिवर्तन आने लगे, समय के प्रवाह ने भी अपना योगदान दिया और ब्राह्मी लिपि का स्वरूप ही बदल गया। इसी परिवर्तन के फलस्वरूप आज हमारे देश की लगभग समस्त लिपियों को उत्पन्न करने वाली लिपि आज के रूप में एक-दूसरे के क्षेत्र में पहचान में भी नहीं आती।

ब्राह्मीलिपि का ऐतिहासिक स्वरूप

ब्राह्मी-लिपि अपने प्रारम्भिक स्वरूप में एकदम सरल चिह्नों के माध्यम से अभिव्यक्त की गई है। इन सरल चिह्नों के कारण इनकी उत्पत्ति के मूल पर प्रश्न उठाये जाते रहे हैं। भगवान् महावीर, गौतम बुद्ध के समय के निकट उपलब्ध चिह्नों से लेकर अशोक के समय तक इन चिह्नों में कोई विशेष परिवर्तन अथवा अन्तर दिखाई नहीं देता। परन्तु

अशोक के पश्चात् खारवेल के समय तक, एवं तत्पश्चात् उत्तर भारत में कुषाणों के अभिलेखों में और दक्षिण भारत में पल्लव नरेशों (द्रष्टव्य : शिवस्कन्दवर्मन के अभिलेख) के अभिलेखों के समय तक तीव्र परिवर्तन दिखाई देता है। प्रारम्भिक रूप ब्राह्मी लिपि ने कैसे प्राप्त किया इस पर विद्वानों में विचार-भिन्नता है।

पाश्चात्य विद्वानों के मत में ब्राह्मीलिपि

इसाक, टेलर, डीके, सीथे इत्यादि इस लिपि को दक्षिण-सेमेटिक लिपियों से ग्रहीत मानते हैं। डेविड डिरिंजर तथा ब्यूलर ब्राह्मी लिपि को उत्तरी सेमेटिक लिपियों, विशेष रूप से फिनीशिया से मेषा के प्रस्तर अभिलेख एवं असीरिया के बाटों से ग्रहीत मानते हैं। वेबर, कस्ट, बर्नेल ने भी इस मत को अपना समर्थन दिया। लासेन, एडवई थामस ने कल्पना की कि ब्राह्मी लिपि द्रविड स्रोत से उत्पन्न हुई जो उन लोगों द्वारा प्रयोग की जाती थी, जो आर्यों के आने से पहले इसके प्रयोग के क्षेत्र के निवासी थे। गौरीशंकर हीराचंद ओझा, राजबली पाण्डेय, डी.आर. भण्डारकर प्रभृति विद्वान् इस लिपि को पारम्परिक तथा उपलब्ध स्रोतों के आधार पर भारतीयों का लाघव ही मानते हैं। विलियम्स जोन्स ने सर्वप्रथम ब्राह्मी लिपि के सेमेटिक मूल के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया। जनरल कनिंघम भी इसे भारतीयों की ही देन मानते हैं। साथ ही वे यह मानते हैं कि इसके मूल में मिस्र की प्राचीन चित्र-लिपि का प्रभाव भी अवश्य है। इस मत को अधिक समर्थन नहीं मिला। आर. शामशास्त्री ने मत व्यक्त किया कि ब्राह्मी लिपि के चिह्न देवताओं के प्रतीक चिह्नों तथा तान्त्रिक चिह्नों – देवनगर – से उत्पन्न माना, परन्तु ये चिह्न बहुत बाद में प्रयोग में आए अतः उन से ब्राह्मी-लिपि की उत्पत्ति का होना मान्य नहीं है। जॉन डाऊसन, के.पी. जायसवाल भी ब्राह्मी-लिपि की भारतीय मूल से उत्पत्ति के सिद्धान्त के समर्थक है। लैंगडम ने सर्वप्रथम इस मत को प्रस्तुत किया कि ब्राह्मी लिपि किसी चित्रात्मक लिपि से – सिन्धु घाटी की लिपि से – उत्पन्न हुई है। हण्टर, राजबली पाण्डेय, डी.सी. सरकार जैसे पुरालिपि-विशारदों ने भी इस मत का मण्डन किया। दोनों

लिपियों के मध्य में समय का लम्बा अन्तराल है। अतः दोनों के सम्बन्ध को स्थापित करने में कठिनाई आती है, पर इनमें सम्बन्ध होने का निराकरण भी नहीं किया जा सकता।

ब्राह्मी–लिपि का सूक्ष्म अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि इसकी उत्पत्ति एवं रचना में ज्यामितीय आकृतियों का आश्रय लिया गया है। सरल रेखा, वक्र रेखा, कोण, त्रिकोण, वर्ग एवं वृत का प्रयोग इसमें स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होते हैं। इनमें कई बार भिन्न–भिन्न आकृतियों के मिश्रण से भी वर्ण–चिह्नों को बनाया गया है।

सम्राट् अशोक कालीन विविध अभिलेखों में प्रयुक्त ब्राह्मीलिपि

अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि शिलाओं, स्तम्भों, गुहाओं में उत्कीर्ण प्राप्त होती है। ये शिलाएं, स्तम्भ और गुहाएं समस्त भारत में फैले हुए है। स्तम्भों पर प्राप्त लिपि सुन्दर रूप में उत्कीर्ण है। गुहाओं में उत्कीर्ण लिपि अपेक्षाकृत छोटे रूप में उपलब्ध होते हैं। अशोक के

समय तक क्षेत्रीय प्रभाव परिलक्षित नहीं होता फिर भी कुछ विद्वानों का विचार है कि कम से कम उत्तरी एवं दक्षिणी रूपों का प्रारम्भ इस काल में ब्राह्मी-लिपि में हो चुका था परन्तु जिन चिह्नों को वे उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत करते हैं, वे चिह्न अन्य स्थानों पर भी प्राप्त हो जाते हैं। 'अ' वर्ण के 19 रूप, 'क' वर्ण के 11 रूप, 'ज' वर्ण के 13 रूप, 'म' वर्ण के 15 रूप, 'य' वर्ण के 13 रूप इत्यादि कुछ प्रमुख उदाहरण हैं। अतः यह मानना उचित प्रतीत नहीं होता कि अशोक के समय में ही ब्राह्मी-लिपि में क्षेत्रीय भिन्नता आ चुकी थी।

अशोक के पश्चात् जो विस्तृत अभिलेख प्राप्त होता है वह खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख है। यद्यपि इन दोनों के मध्य भी कुछ अभिलेख मिलते हैं पर वे इतने बड़े नहीं है कि उनमें समस्त वर्णों के उदाहरण उपलब्ध हों। अतः उनके माध्यम से आगे बढ़ते वर्णों के रूप हमें हाथीगुम्फा से प्राप्त खारवेल के अभिलेख में प्राप्त होते हैं। इस अभिलेख के वर्ण अशोक-कालीन वर्णों से द्वितीय शताब्दी ई. तक के वर्णों के विकास के मार्ग पर आगे बढ़ते दृष्टिगोचर होते हैं। यही कारण है कि इस अभिलेख में प्रत्येक वर्ण के एकाधिक रूप प्राप्त होते हैं। वर्णों की सीधी खड़ी रेखा अशोक कालीन उदाहरणों से अपेक्षाकृत अधिक लम्बी हो चुकी है पर कुषाण काल के उदाहरणों के समान नीचे से मुड़ी नहीं है। खड़ी सीधी रेखा जितनी बार भी प्रयोग हुई वह भिन्न रूप में उत्कीर्ण की गई है। जिन वर्णों में अशोक काल में गोलाई का प्रयोग होता था वह गोलाई खारवेल के काल में कोणीय होने लगी थी। प्राप्त उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में वर्णों की तीन श्रेणियां दृष्टिगोचर होती हैं – 1. अशोक-कालीन रूप, 2. विकासशील रूप – जिसमें वर्णों में एकाधिक आधार-रूपों में से एक भाग कोणीय है, और 3. द्वितीय शताब्दी ई. में उपलब्ध वर्णों जैसा रूप। अशोक के लेखों में शब्दों के मध्य रिक्त-स्थान प्राप्त नहीं होता। जहां प्राप्त होता भी है उसे कुछ विद्वान् मानते हैं कि जहां लेख का वक्ता बोलते समय रूकता था वहीं उत्कीर्णकर्त्ता ने रिक्त-स्थान रख दिया।

सम्राट् खारवेल के अभिलेख में प्रयुक्त चिह्न

खारवेल के अभिलेख में रिक्त–स्थान की अन्य भिन्न प्रवृत्ति प्राप्त होती हैं, पूर्ण विराम को व्यक्त करने के लिए अधिक रिक्त स्थान दिया गया है। संयुक्त वाक्य अथवा मिश्रित वाक्य के वाक्यांशों के मध्य में भी रिक्त–स्थान प्रयोग किया गया है। लगभग प्रत्येक व्यक्तिवाचक संज्ञा से पहले भी स्थान को रिक्त रखा गया है। वर्णों की अनेक रूपता देखकर प्रतीत होता है कि उड़ीसा से प्राप्त अभिलेख में लेखन के लिए वर्णक (पैन) अथवा तूलिका का प्रयोग नहीं हुआ है। जिसका प्रायः लेखन में प्रयोग किया जाने की परम्परा प्राप्त होती है। इस एक ही अभिलेख में वर्णों की अनेक रूपता से ऐसी सम्भावना भी व्यक्त की जाती है कि इसे एक से अधिक उत्कीर्ण–कर्त्ताओं ने उत्कीर्ण किया होगा। खारवेल के अभिलेख के प्रारम्भ में दो चिह्न तथा अन्त में एक चिह्न प्राप्त होते हैं। प्रारम्भ में प्रयुक्त दो चिह्नो में से एक मुकुट जैसा है जिसकी पहचान 'वढमंगल' से की गई है। उसके साथ स्वस्तिक का चिह्न प्रयोग किए गए हैं, जो सभी के लिए मंगलकामना करने वाले नान्दी को प्रकट करने वाले चिह्न हो सकते हैं। अभिलेख के अन्त में पवित्र कल्पवृक्ष को चिह्नित किया है जो सभी लिखने वाले, पढ़ने तथा सुनने वालों की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने का प्रतीक है।

उपसंहार

प्राचीन भारत में प्रचलित ब्राह्मी लिपि अशोक के समय में अपने विहंगम रूप में प्राप्त होती है। वह महास्थान से प्राप्त प्रस्तर अभिलेख, पिपरह्वा अभिलेख, सोहगौरा अभिलेख, बडली प्रस्तर अभिलेख, बेसनगर गरूड़ अभिलेख, दशरथ के नागार्जुनी गुहा–लेख इत्यादि में अपने रूप को प्रदर्शित करती हुई आगे बढ़ती है। हाथीगुम्फा अभिलेख इस लिपि को जीवन्तता प्रदान करता हुआ इसके विकास की ओर आगे ले जा रहा है।

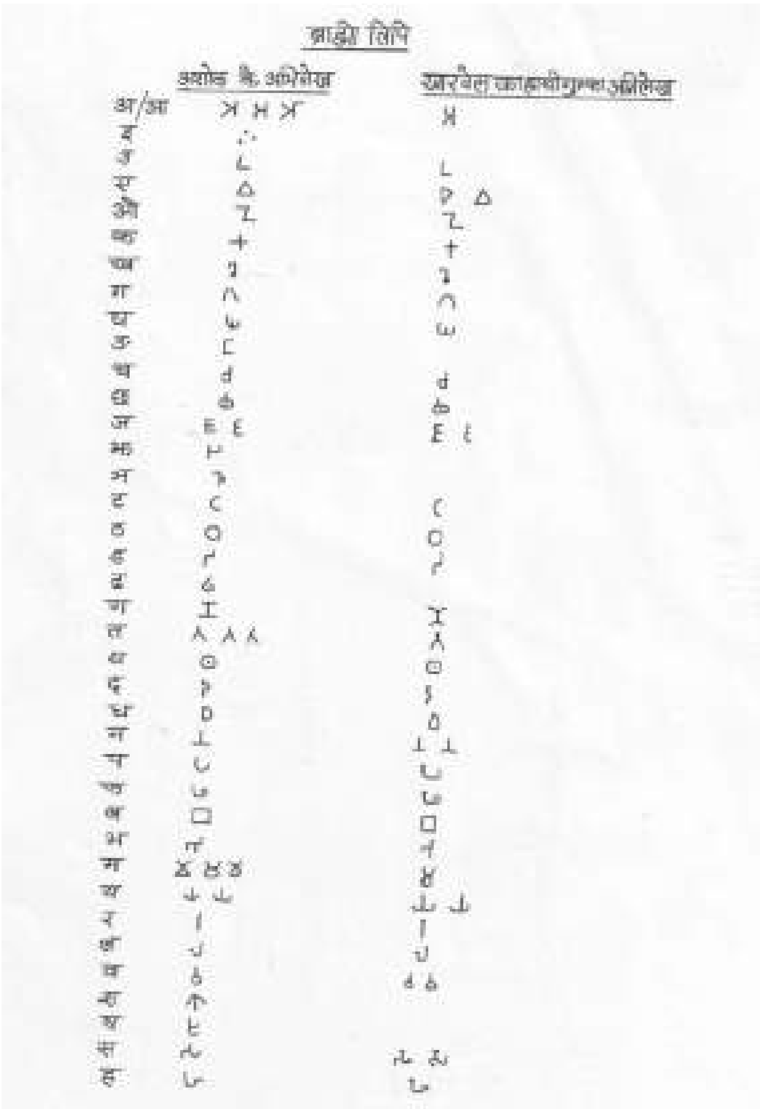
ब्राह्मी लिपि
अशोक के अभिलेख
खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख
अ/आ
इ
उ
ए
औ
क
ख
ग
घ
ङ
च
छ
ज
झ
ञ
ट
ठ
ड
ढ
ण
त
थ
द
ध
न
प
फ
ब
भ
म
य
र
ल
व
श
ष
स
ह

खारवेल शिलालेख में निहित दार्शनिक तत्त्व

प्रो. वीरसागर जैन

कलिंग चक्रवर्ती महामेघवाहन सम्राट् खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख का अनेक दृष्टियों से अध्ययन किया जाता है, किन्तु यहाँ उसमें निहित दार्शनिक तत्त्वों के अन्वेषण का एक संक्षिप्त प्रयास किया जा रहा है।

शिलालेखों का अध्ययन अधिकांशतः इतिहास एवं राजनीति की दृष्टि से किया जाता है, किन्तु यहाँ हमारी भावना है कि दर्शनशास्त्र की दृष्टि से भी उनके अध्ययन करने का अभियान चलना चाहिए। स्व-पर-कल्याण हेतु यह दृष्टि कुछ अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इतिहास और राजनीति वाली दृष्टि कभी-कभी कुछ कषाय उत्पन्न करने लगती है।

वैसे भी मैं दर्शनशास्त्र का विद्यार्थी हूँ और हर विषय को उसी दृष्टि से देखने का अभ्यास हो गया है, अतः यहाँ भी मैंने सम्राट खारवेल के सुप्रसिद्ध शिलालेख को दार्शनिक दृष्टि से देखने का प्रयास किया है।

सम्राट् खारवेल के इस 17 पंक्तियों के शिलालेख में मुझे दार्शनिक दृष्टि से निम्नलिखित सात पंक्तियाँ और उनमें प्रयुक्त कतिपय विशिष्ट शब्द महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुए हैं –

पंक्ति सं. 1 नमो अरहंतानं मनो सवसिद्धानं....................

पंक्ति सं. 9 अरहतो ....

पंक्ति सं. 12 नंदराजनीतं च कलिंगजिनं संनिवेसं ....

पंक्ति सं. 14 पूजावरतउवास खारवेलसिरिना जीवदेहसिरिका परिखिता।

पंक्ति सं. 15 समण सुविहितानं च सत दिसानं ञानिनं तपसि इसिनं संघियनं

पंक्ति सं. 16 चोयठि अंग सतिकं तुरियं उपादयति...पसंतो सुनंतो अनुभवंतो

पंक्ति सं. 17 सबपाखंड पूजको सवदेवायतनसंकारकारको....

इनमें भी पंक्ति-संख्या 1 दार्शनिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। इसमें जैनदर्शन के सुप्रसिद्ध महामन्त्र 'णमोकार' के प्रारम्भिक दो पद स्पष्ट रूप से लिखे हुए हैं, जिनमें अरिहन्त और सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है। अरिहन्त और सिद्ध इन दो शब्दों में सम्पूर्ण जैनदर्शन समाहित हो जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने तो 'अरिहंत' के विषय में यहा तक लिखा है कि -

जो जाणदि अरिहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।।[1]

अर्थ- जो द्रव्य-गुण-पर्याय से अरिहंत को जानता है वह आत्मा को भी जान लेता है और उसका मोह निश्चय से नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'अरिहंत' जैनदर्शन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द है और उसके अन्दर जैनदर्शन की समूची अवधारणा समाहित हो जाती है। यही कारण है कि जैनदर्शन को 'अरिहन्त दर्शन' के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

'अरहंत' शब्द का प्रयोग इस शिलालेख की पंक्ति 4, 9, 15 में भी हुआ है। 'अरहंत' की भाँति सिद्ध शब्द भी जैनदर्शन का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण शब्द है। घातिकर्म रहित सशरीरी परमात्मा को

'अरहंत' और सर्वकर्म रहित अशरीरी परमात्मा को सिद्ध कहते हैं। अरहंत जीवन मुक्त है और सिद्ध देह मुक्त है। अत: 'सिद्ध' शब्द में मोक्ष की सम्पूर्ण अवधारणा समाहित हो जाती है।

यदि हम 'अरिहंत' और 'सिद्ध' इन दो शब्दों का भलीभाँति सर्वांग अध्ययन करें तो सम्भवत: दर्शनशास्त्र की सम्पूर्ण तत्त्वमीमांसा स्पष्ट हो जाती है।

तत्त्वमीमांसा ही नहीं, आचारमीमांसा की दृष्टि से भी खारवेल का यह शिलालेख बड़ा ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। इसकी पंक्ति सं. 14 में पाप, व्रत, पूजा और उपवास इन 4 आचारशास्त्रीय शब्दों का स्पष्ट प्रयोग हुआ है। ये सब आचारशास्त्र के ही प्रमुख परिभाषिक शब्द हैं, जिन्हे जैनदर्शन के रत्नकरण्ड श्रावकाचार (आचार्य समन्तभद्र), पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आचार्य अमृतचन्द्र) आदि अनेक आचार-ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक समझाया गया है। आचार्य उमास्वामी के 'तत्त्वार्थसूत्र' में भी इसे इस प्रकार कहा है कि -

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।।[2]

जैनाचार शास्त्र के ग्रन्थों में धर्म और धर्मायतनों की रक्षा और प्रभावना का भी उपदेश पाया जाता है। खारवेल-शिलालेख की पंक्ति संख्या 12-13 में आया हुआ कलिंग-जिन मूर्ति की रक्षा का प्रसंग उसी उपदेश का परिपालन सिद्ध होता है। सम्राट् खारवेल ने उसी उपदेश से प्रेरित होकर कलिंग-जिन की मूर्ति को राजा नन्द से वापिस लाकर उसे गगनचुंबी मन्दिर बनाकर उसमें स्थापित/प्रतिष्ठित किया। मन्दिर बनाने वाले कारीगरों को बड़ी जागीरें भी प्रदान की।

जैनाचार-मीमांसा दो रूपो में विभाजित है- गृहस्थाचार और श्रमणाचार। खारवेल-शिलालेख में न केवल उक्त प्रकार से गृहस्थाचार का चित्रण है, अपितु थोड़ा बहुत श्रमणाचार का भी चित्रण उसमें उपलब्ध होता है। पंक्ति सं. 15 में 'श्रमण' (समण) शब्द का तो स्पष्ट प्रयोग हुआ ही है; किन्तु 'ज्ञानी' (ञानिनं), 'तपस्वी' (तपसि), 'ऋषि'

(इसिनं), 'संघी' (संघियनं) आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जो श्रमणों के ही विविध रूप या प्रकार प्रतीत होते हैं। श्रमणों के नाम या प्रकार जैन-ग्रन्थों में इस प्रकार बतलाए गये हैं -

समणोत्ति संजदोत्ति य रिसीमुणि साधुत्ति वीदरागो त्ति।
णामणि सुविहिदाणं अणगार भदंत दंत्तो त्ति।।[3]

अर्थ-श्रवण, संयत, ऋषि, मुनि, साधु, वीतराग, अनगार, भदंत, दंत, यति ये सब साधु के नाम है।

जैनदर्शन की तत्त्वमीमांसा और आचार मीमांसा के अतिरिक्त इस शिलालेख में जैन अध्यात्म का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। इसकी पक्ति सं. 14 में जीव और देह के भेद विज्ञान (परीक्षा) का कथन किया गया है जो जन-अध्यात्म का केन्द्रिय या सारभूत प्रतिपाद्य है। आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने समयसारादि ग्रन्थों में इस भेद-विज्ञान के गीत मुक्त कण्ठ से गाये हैं। आचार्य अमृतचन्द्र तो यहाँ तक लिखते हैं -

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धाः ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धाः बद्धाः ये किल केचन।।[4]

अर्थ- आजतक जितने भी जीव सिद्ध हुये हैं, वे भेद-विज्ञान से ही सिद्ध हुये हैं और जितने भी जीव संसार में बद्ध हैं वे भेद-विज्ञान के अभाव से ही बँधे हुये हैं।

इसी प्रकार पंक्ति संख्या 16 में कहा गया है कि मैंने द्वादशांग के सारभूत आत्मा का श्रवण-मनन-अनुभवन किया है। यह आत्मदर्शन या आत्मानुभूति का महत्त्वपर्ण विषय जैन अध्यात्मविद्या का सार है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्राट् खारवेल के इस शिलालेख में जैनदर्शन की तत्त्वमीमांसा, आचारमीमांसा और अध्यात्मविद्या के मूल सूत्र सन्निहित है जिन्हें भलीभाँति समझकर स्व-पर-कल्याण का महान् उपक्रम किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ -

1. आचार्य कुन्दकुन्द, प्रवचनसार, गाथा 80
2. आचार्य उमास्वामी, तत्त्वार्थसूत्र, 6/1
3. आचार्य वट्टकेर, मूलाचार, गाथा 886
4. आचार्य अमृतचन्द्र, आत्मख्याति, कलश 131

भारतीय पुरालेखों का क्रमिक विकास एवं विवेचन

डॉ. जयकुमार उपाध्ये

लिपि का इतिहास एवं उत्पत्ति

लिपि की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, यह इतना ही विवादग्रस्त है, जितना भाषा की उत्पत्ति। भाषा और लिपि की उत्पत्ति के विषय में अन्ततः अनुमान का ही आश्रय लेना पड़ता है। भाषा सूक्ष्म है, अतः उसकी उत्पत्ति बताना अधिक कठिन है। लिपि की उत्पत्ति भी बताना प्रायः उतना ही कठिन है, क्योंकि प्रारम्भ में जिन वस्तुओं पर ये लिपियाँ लिखी गई, वे काल-कवलित हो गई है। पाषाण, स्तम्भ, ताम्र आदि पर जो कुछ चीजें लिखी गई, वे 6 हजार वर्ष तक का इतिहास बताती है। इसमें भी एकरूपता नहीं है। कहीं कुछ लकीरें, कहीं पशु आदि की आकृति, कहीं भावमुद्रा और कहीं लिपि है। इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लिपि के विकास की मुख्यतया 3 अवस्थाएँ रही हैं- (1) चित्रलिपि, (2) भावलिपि, (3) ध्वनिलिपि।

भाषा और लिपि का अन्तःसम्बंध

भाषा का संबन्ध ध्वनियों से है। ध्वन्यात्मक भाषा वक्ता के मुख से निकल कर श्रोता के कान तक पहुँचकर अपना प्रभाव प्रकट करती है। यह वाचिका भाषा है। वक्ता के मुख से निकलने के कुछ क्षणों बाद इसका स्वरूप नष्ट हो जाता है। मानव की प्रवृत्ति है कि वह अपने कार्यों और विचारों की स्थायित्व प्रदान करना चाहता है। इसके लिए वह ऐसे साधनों का उपयोग करता है, जिससे उसके विचार आगे

की पीढ़ी तक पहुँच सकें। इन्हीं गूढ़ विचारों ने लिपि को जन्म दिया। इसका प्रारम्भिक रूप क्या था, यह आज बताना संभव नहीं है, परन्तु अनुमान है कि अपने भावों को स्थायित्व प्रदान करने के लिए सर्वप्रथम चित्रात्मक लिपि का प्रयोग हुआ, तत्पश्चात् भावलिपि और अन्ततः ध्वनिलिपि।

यह अनुभव-सिद्ध है कि मानव के संवेदनात्मक भावों की भाषा पूर्णतया अभिव्यक्त नहीं कर पाती। हर्ष, शोक, मिठास, कड़वापन आदि भाव, भाषा से पूर्णतया व्यक्त नहीं हो पाते हैं। लिपि भाषा का ही स्थूल रूप है। लिपि भी मनोभावों को व्यक्त करने में असमर्थ है। भाषा और लिपि में मुख्य अन्तर यह है कि-

1) भाषा सूक्ष्म है, लिपि स्थूल है।

2) भाषा की ध्वनियों में अस्थायित्व है, लिपि में अपेक्षाकृत अधिक स्थायित्व है।

3) भाषा में सुर, तान आदि के द्वारा बहुत कुछ मनोभावों को व्यक्त किया जा सकता है, लिपि में नहीं।

4) भाषा श्रव्य है, लिपि दृश्य एवं पाठ्य।

5) भाषा सद्यःप्रभावकारी है, लिपि विलम्ब से। दोनों में साम्य यह है कि- (1) दोनों मानव की भावाभिव्यक्ति के साधन हैं। (2) दोनों से भावाभिव्यक्ति अपूर्ण होती है। (3) दोनों देश कालादि-भेद से भिन्न है। (4) दोनों सांस्कृतिक उन्नति के प्रतीक है। (5) दोनों का ज्ञान शिक्षण से प्राप्त होता है।

चित्रलिपि : (Logographic)

यह लिपि का प्राचीनतम रूप था। जिस वस्तु का वर्णन करना होता था, उसका चित्र बना देते थे। आदमी, स्त्री, आँख आदि के लिए उस जैसे छोटा चित्र बना देते थे। इससे संबद्ध व्यक्ति भाव समझ जाता

था। ऐसे प्राचीन चित्र फ्रांस, स्पेन, यूनान, इटली, मिस्त्र आदि से मिले है। ये पत्थर, हड्डी, हाथी-दाँत, सींग, छाल, मिट्टी के पात्रों आदि पर होते थे।

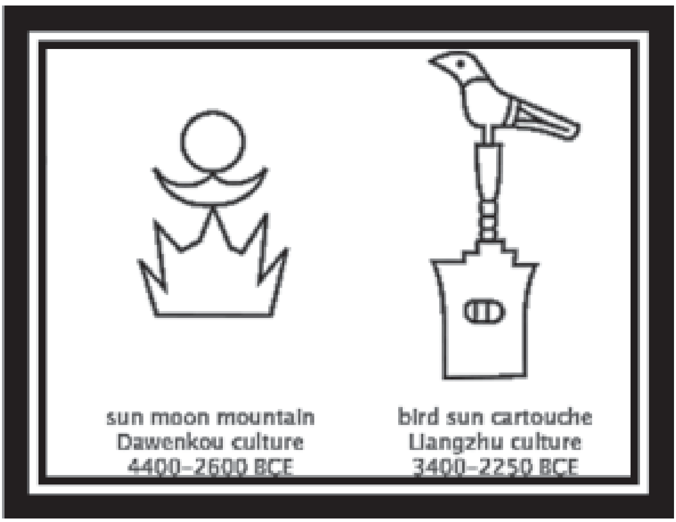

भावलिपि

यह लिपि विकास का द्वितीय चरण था। चित्रलिपि अधिक श्रम-साध्य थी, अतः लघुतर उपाय सोचने की प्रक्रिया भी जारी रही। फलस्वरूप भावलिपि का प्रादुर्भाव हुआ। चित्रलिपि और भावलिपि में अन्तर यह है कि चित्रलिपि में केवल वस्तु का चित्र बनाया जाता था। भावलिपि में चित्रों को सरल बनया गया और साथ ही उनसे संबद्ध अर्थ भी लिए गए। जैसे- सूर्य के लिए एक गोला बनाना, उससे गर्मी, धूप, प्रकाश, दिन आदि का अर्थ बताना। रोने के लिए आँख का चित्र बनाकर उससे आँसू टपकती बूँदें दिखाना।

ध्वनिलिपि

1) यह लिपि विकास का तृतीय चरण था। यह मानव की लिपि-संबंधी सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि थी। इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए कुछ संकेत निर्धारित किए गए। इनसे मुखोच्चरित प्रत्येक ध्वनि को लिपिबद्ध किया जा सकता था। देश-काल के भेद से ये ध्वनिलिपियाँ अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग विकसित हुई। वर्तमान में यह लिपि अत्यंत प्रसिद्धि पायी है। जैसे- सीडि, विडियो, ऑडियों, डीवीडी, टेप रिर्काडर, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन आदि आधुनिक संसाधन विज्ञान के अविष्कार के द्वारा प्राप्त है।

भारतीय प्राचीन लिपियाँ

1) **सिंधुघाटी की लिपि**- भारत में लिखने की कला का ज्ञान लोगों को अत्यन्त प्राचीन काल से है। इसके प्राचीनतम नमूने सिंधुघाटी (पंजाब के मांटगोमरी जिले के हड़प्पा तथा सिंधु के लरकाना जिले के मोहनजोदड़ो में प्राप्त सीलों पर) में मिले हैं। हेरास, लैगडन, स्मिथ, गैड तथा हंटर ने इसे समझने और पढ़ने का प्रयास किया है, किन्तु अभी तक किसी को सफलता नहीं मिल सकी है।

सिंधुघाटी की लिपि के प्रकाश में आने के पूर्व विदेशी विद्वानों का यह मत रहा है कि भारत में लिखने का प्रचार बहुत बाद में हुआ। मैक्समूलर ने पाणिनि का काल 4 थी शताब्दी ई.पू. माना है और उनके अनुसार, पाणिनि की अष्टाध्यायी में लिपि के सम्बन्ध में कोई संकेत नहीं है। इस प्रकार मैक्समूलर के अनुसार चौथी या पांचवीं शताब्दी ई.पू. में फोनेशियन लोगों से लिखने की कला सीखी। डॉ. बूलर ने उपयुक्त दोनों मतों को अस्वीकार करते हुए अपना मत सामने रखा।

2. **खरोष्ठी लिपि**– खरोष्ठी लिपि के प्राचीनतम लेख शहबाजगढ़ी और मानसेरा में मिले हैं। आगे चलकर बहुत से विदेशी राजाओं के सिक्कों तथा शिलालेखों आदि में यह लिपि प्रयुक्त हुई है। इसकी प्राप्त सामग्री मोटे रूप से 4थी सदी ई.पू. से 3री सदी ई. तक मिलती है। इसके इंडोबैक्ट्रियन, बैक्ट्रियन, काबुलियन, बैक्ट्रोपाली या आर्यन आदि और भी कई नाम मिलते है, पर अधिक प्रचलित नाम 'खरोष्ठी' ही है जो चीनी साहित्य में 7वीं सदी तक मिलता है।

a
i
u
e
o
ka
kha
ga
gha
ṅa
ca
cha
ja
jha
ña
ṭa
ṭha
ḍa
ḍha
ṇa
ta
tha
da
dha
na
pa
pha
ba
bha
ma
ya
ra
la
va
śa
ṣa
sa
ha

2) ब्राह्मी लिपि- ब्राह्मी प्राचीन काल में भारत की सर्वश्रेष्ठ लिपि रही है। इसके प्राचीनतम नमूने बस्ती जिले में प्राप्त पिपरावा के स्तूप में तथा अजमेर जिले के बडली (या बर्ली) गॉव के शिलालेख में मिले हैं। इनका समय ओझाजी ने 5वीं सदी ई.पू. माना है। उस समय से लेकर 350 ई. तक इस लिपि का प्रयोग मिलता है। मौर्य सम्राट् अशोक के लेखों में ई.पू. 3री शताब्दी में ब्राह्मी लिपि का व्यापक प्रयोग मिलता है। इससे लगभग 200 वर्ष पूर्व महास्थान, पिप्रवा तथा वडली से ई.पू. 5वीं शताब्दी के लेख प्राप्त होते हैं। ब्राह्मी लिपि ब्राह्मणों के प्रयोग के लिए विकसित की गई है इसीलिए उसका नाम ब्राह्मी लिपि पड़ा- ऐसी मान्यता है। एक अन्य मान्यता है कि जैन धर्म के प्रवर्तक भगवान् ऋषभ देव जी ने अपनी पुत्री ब्राह्म को इसी लिपि में लिखना सिखाया, इसलिए इस लिपि का नाम ब्राह्मी लिपि पड़ा।

मेहरौली लोह स्तंभ, कुतुब मीनार, दिल्ली

मेहरौली लोह स्तंभ, कुतुब मीनार, दिल्ली

3) **गुप्त लिपि**- इस लिपि का व्यावहार ईसा की चतुर्थ और पंचम शताब्दी में होता रहा। गुप्तवंशी राजाओं के नाम पर इसे गुप्त लिपि कहा गया है। इसमें प्रायः गुप्तवंशी राजाओं के ही लेख प्राप्त होते हैं।

4) **कुटिल लिपि**- गुप्त लिपि का ही विकसित रूप कुटिल लिपि है जो ईसा की छठी से नवीं शताब्दी तक व्यवहृत होती रही। इस लिपि के वर्ण कुछ टेढ़े थे, इसीलिए अपने गुण के कारण इसे कुटिल लिपि कहा गया था।

5) **शारदा लिपि**- कुटिल से ही शारदा लिपि का प्रादुर्भाव हुआ। इसका क्षेत्र देश के पश्चिमोत्तरी भाग पंजाब कश्मीर की अधिष्ठात्री देवी शारदा के नाम पर ही इसका नामकरण हुआ। इस लिपि का काल ईसा की 10वीं शताब्दी है। इस लिपि ने ही पश्चिम की सभी लिपियों-कश्मीरी, टाकरी, लंडा, डोगरी, चमेआली और गुरुमुखी को जन्म दिया।

a ā i ī
u ū e o
ka kha ga gha ṅa
ca cha ja jha ña
ṭa ṭha ḍa ḍha ṇa
ta tha da dha na
pa pha ba bha ma
ya ra la va
śa ṣa sa ha

6) **नागरी लिपि**– कुटिल लिपि से ही नागरी लिपि की भी उत्पत्ति हुई है। इसकी दो शाखाएँ थीं– उत्तरी और दक्षिणी। उत्तर में इसका क्षेत्र बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, राजस्थान और महाराष्ट्र था। आधुनिक देवनागरी, गुजराती, मराठी, राजस्थानी, महाजनी, कैथी और बंगला लिपि इसी के ही परिवर्धित रूप है।

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ
a	ā	i	ī	u	ū
ऋ	ॠ	ऌ	ॡ		
ṛ	ṝ	ḷ	ḹ		
ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
e	ai	o	au	aṃ	aḥ
क	ख	ग	घ	ङ	
ka	kha	ga	gha	ṅa	
च	छ	ज	झ	ञ	
ca	cha	ja	jha	ña	
ट	ठ	ड	ढ	ण	
ṭa	ṭha	ḍa	ḍha	ṇa	
त	थ	द	ध	न	
ta	tha	da	dha	na	
प	फ	ब	भ	म	
pa	pha	ba	bha	ma	
य	र	ल	व		
ya	ra	la	va		
श	ष	स	ह		
śa	ṣa	sa	ha		

7) **दक्षिणी धारा**– ब्राह्मी की दक्षिणी धारा में दक्षिण भारत की लिपियां आती हैं जो इस प्रकार है–

1) तेलगू-कन्नड़ (2)ग्रन्थ लिपि (3) तमिल लिपि (4) कलिंग लिपि (5) मध्य लिपि (6) पश्चिमी

ब्राह्मी लिपि का वंश वृक्ष एवं विकास क्रम

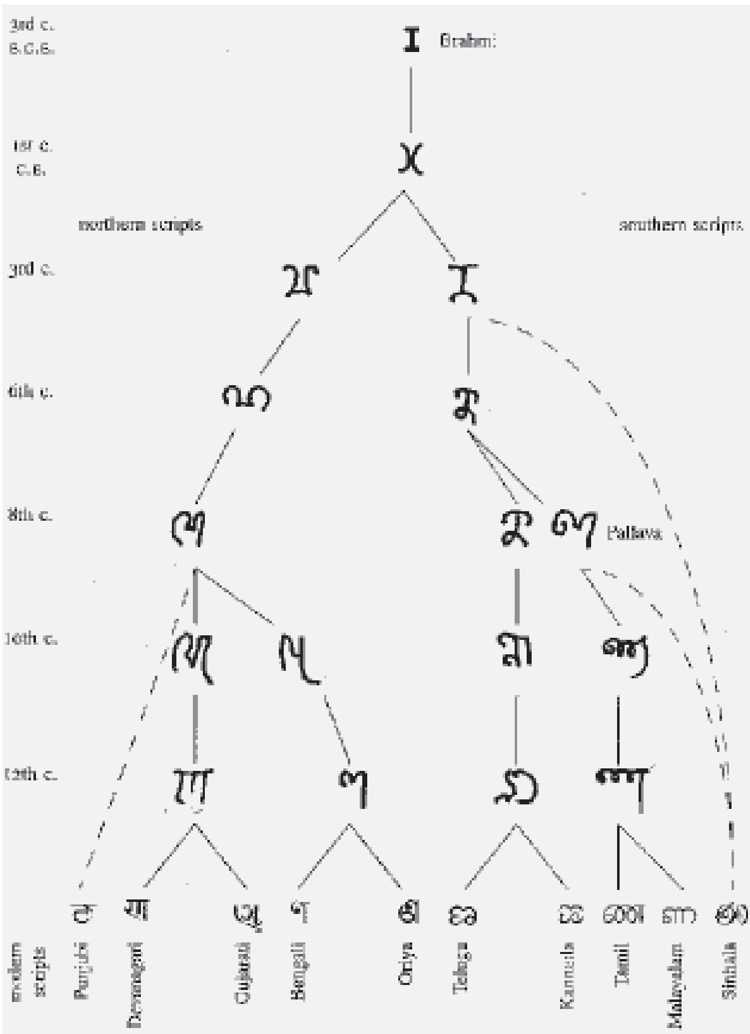

1. उत्तरी–

गुप्तलिपि (चौथी और पांचवीं सदी)

कुटिल लिपि (छठी से नवीं सदी)

शारदा टाकरी सिरमौर जौनसौरी डोगरी चमेआली मेडआली लंडा मुल्तानी गुरुमुखी कोंछीकुल्लकई प्राचीन नागरी

2. दक्षिणी

तेलगू-कन्नड ग्रंथलिपि कलिंगलिपि तमिल पश्चिमी मध्यदेशी

कश्मीरी गुजराती महारनी मोड़ी (महाराष्ट्र) कैथी (बिहार) मैथली (मिथिला) असमिया बंगला, मनीपुरी नेवारी

उपसंहार

प्राचीन भारतीय पुरालेखों का अध्ययन हमें प्राचीन संस्कृति सभ्यता एवं इतिहास का वास्तविक परिचय कराता है। ई.सा. पूर्व में भी मानव सभ्यता का विकास उन्नतशील था इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण पुरातात्विक अभिलेखों से उद्घाटित होते हैं। पुरालिपियों के अध्ययन से प्राचीन भाषा और लिपियों का ज्ञान तो अवश्य होता है। भाषा मानव के विचारों को अभिव्यक्त करने के प्रमुख साधन है तो लिपि मानव के प्रवृत्तियों को स्थायित्व देता है।

मैंने इस शोध आलेख में विभिन्न चित्रों के माध्यम से प्राचीन लिपियों का विवेचन किया है। वे क्रमशः चित्रलिपि, भावलिपि, ध्वनिलिपि, सिंधुघाटी लिपि, खरोष्ठी लिपि, ब्राह्मी लिपि, गुप्तलिपि, शारदा लिपि, नागरी लिपि, दक्षिण भारतीय लिपि, उत्तर भारतीय लिपि आदि। ब्राह्मी लिपि की इ.पू. तृतीय सदी से वर्तमान तक होनेवाली परिवर्तनों का चित्रशैली में परिचय प्रस्तुत किया है जो महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन लिपियों का विकास वर्तमान में किस प्रकार प्रयोग में आते हैं इनका संक्षेप में कथन किया है।

संदर्भ ग्रंथ

1) डॉ. मनमोहन गौतम, सरल भाषा-विज्ञान, प्रकाशक- हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली।

2) पद्मश्री डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य, भाषा–विज्ञान एवं भाषा शास्त्र, प्रकाशक– विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

3) भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, प्रकाशक– किताब महल, 22–ए, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

4) जार्ज ब्यूलर, भारतीय पुरालिपि–शास्त्र, प्रकाशक– मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

5) दिनेशचन्द्र सरकार, भारतीय पुरालिपि विद्या, प्रकाशक– विद्यानिधि, भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक सी–117/2, खजूरीखास, दिल्ली।

सम्राट् अशोक के विविध अभिलेखों के पाठों की तुलनात्मक समीक्षा

डॉ. कल्पना जैन

आज हमारे पास प्राचीनतम लिपि का सुदीर्घ व्यवस्थित वाक्यावली के रूप में सम्राट् अशोक के अभिलेखों से प्राचीन कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अशोक के पूर्वयुगीन साहित्य का निदर्शन तो मिलता है, किन्तु उसकी प्रतिलिपियाँ ईसा के परवर्ती काल की ही है। लेखन साम्रगी एवं आधार साम्रगी आदि के कारण कोई साहित्यिक कृति आदि शिलालेख जैसे संसाधन के बिना सुरक्षित मिलना संभव ही नहीं है।

जो प्रतिलिपियों में लिपि मिलती है वह असंदिग्ध रूप से उस ग्रंथ के रचनाकाल की नहीं है। प्रतिलिपि से प्रतिलिपि की परम्परा होने के कारण न केवल लिपि अपितु भाषा की दृष्टि से भी उसे पूर्ण रूप से मूल रूप नहीं कह सकते हैं क्योंकि प्रतिलिपिकार का अपने-अपने क्षेत्र एवं काल के प्रभाव के कारण ग्रंथ के मूलस्वरूप में परिवर्तन कर देना स्वाभाविक कार्य रहा है। इन्हीं कारणों से सिन्धुलिपि आदि के कुछ वर्ण या शब्द रूपों के प्रयोग को छोड़कर व्यवस्थित पाठ के रूप में सम्राट अशोक के अभिलेखों की लिपि शास्त्रीय एवं भाषाशास्त्रीय दृष्टियों से अत्यधिक महत्व स्वतः सिद्ध हो जाता है।

यह एक शाश्वत सत्य है कि अशोक के अभिलेखों की लिपि का निम्नलिखित छः बिन्दुओं पर सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया जाना चाहिए अन्यथा पाठों की समीक्षा निर्दोष रीति से करना संभव नहीं है।

1. स्वर, 2. व्यंजन, 3. संयुक्त व्यंजन, 4. मात्रालेखन, 5. अंकलेखन एवं 6. विराम चिह्न आदि की लिप्यंतरण करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि उपर्युक्त छः बिन्दुओं की जैसी व्यवस्था मूल पाठ की लिपि में भी उपलब्ध हो। यदि ऐसा नहीं है तो लिप्यंत्तरित किये गए पाठ मूल पाठों से जिस बिन्दु पर भी भिन्नता रखते होंगे उसी बिन्दु से वे समीक्षणीय हो जायेंगे।

यही स्थिति लिपि और भाषा की भी है, जैसे कि प्राकृतभाषा में मूलतः 64 वर्ण और प्रयोगतः 44 वर्ण स्वीकृत किये गए हैं। अब यह विचारणीय हो जाता है कि अशोक के शिलालेखों में जो ब्राह्मी लिपि प्रयुक्त हुई क्या उसमें भी इतने ही वर्ण थे या न्यूनाधिक थे। यदि न्यून थे तो कौन से और अधिक थे तो कौन से, साथ ही उपर्युक्त छः बिन्दुओं की भी उस ब्राह्मी लिपि में क्या व्यवस्था थी।

यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है कि सम्राट् अशोक ने जिन लोगों को यह शिलालेख लिखने का कार्य दिया वे भाषा या लिपि विशेषज्ञ नहीं रहे होंगे। यही कारण है कि अशोक के अभिलेखों में बहुविध पाठ मिलते हैं। जिसमें से कुछ तो विशुद्ध संस्कृत में ही रहा है तो कुछ संस्कृत रूपों का प्राकृतीकरण मात्र है। कुछ प्राकृत के रूप भी उस प्राकृत से भिन्न प्रतीत होते हैं तो कहीं–कहीं प्राकृतभाषा के मौलिक स्वरूप का दर्शन भी होता है। एक ही शब्द पर पद की अलग–अलग रूपों में उपलब्ध होना भी इस बारे में नीति निर्धारण का एवं विशेषज्ञ निर्देशन का अभाव सूचित करता है।

सम्राट अशोक के चतुर्दश धर्मलेख शाहबाजगढ़ी (पेशावर जिला), मानसेहरा (हजारा जिला), गिरनार (जूनागढ़), सोपारा (थाना जिला), कालसी (देहरादून), धौली (पुरी जिला), जौगढ़ (गंजाम जिला) और इरागुडी (निजाम रियासत) स्थानों में प्राप्त हुए।

उपर्युक्त शिलालेखों की दो लिपियाँ है – ब्राह्मी और खरोष्ठी। खरोष्ठी लिपि में शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा के शिलालेख मिलते हैं

तथा अवशेष शिलालेख ब्राह्मी लिपि में है। इन शिलालेखों में केवल ई. पू. तीसरी शती की प्राकृतभाषा का रूप ही सुरक्षित नहीं है, अपितु इनमें तात्कालिक भाषा के प्रादेशिक भेद भी प्राप्त होते हैं। मध्यकालीन आर्यभाषाओं का अध्ययन करने के लिए यह शिलालेख महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अशोक के अभिलेखों को चार वैभाषिक प्रवृत्तियों में विभक्त किया जा सकता है - 1. पश्चिमोत्तरी समूह, 2. दक्षिण-पश्चिमी समूह, 3. मध्यपूर्वी समूह एवं 4. पूर्वी समूह।

1. पश्चिमोत्तरी प्राकृत -

पश्चिमोत्तरी भाषा के विश्लेषण के लिए शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा के शिलालेखों को उदाहरणीकृत किया जाता है। पर इस क्षेत्र की भाषा का वास्तविक प्रतिनिधित्व शाहबाजगढ़ी के शिलालेख ही करते हैं। मानसेहरा पर मध्यपूर्वी समूह का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। यथा -

1. शाहबाजगढ़ी पाठ में ऋ का परिवर्तन रि, रु, र और आगे का मध्य व्यंजन मूर्धन्य में परिवर्तित होता है-

   क्रिट < कृत, मिग्र, म्रुग < मृग, बुध्रेषु < वृद्धेषु

   यह परिवर्तन मानसेहरा में नहीं पाया जाता है।

2. शाहबाजगढ़ी के पाठ में क्ष के स्थान पर छ मिलता है और मानसेहरा में क्ष के स्थान पर ख पाया जाता है-

   मोछ < मोक्ष (शाहबाजगढ़ी)

   खुद्र < क्षुद्र (मानसेहरा)

3. स्म, स्व संयुक्त व्यंजन के स्थान पर स्प तथा स्मिन् के स्थान पर स्पि पाठ मिलता है -

   विनितस्पि < विनीतास्मिन्

   स्पमिकेन < स्वामिकेन

4. पश्चिमोत्तरी अभिलेखों के पाठों में दन्त्य व्यंजनों का मूर्धन्य रूप में अधिक विकास मिलता है। यथा –

अठर < अर्थ

त्रेडष < त्रयोदश (मानसेहरा)

ओषढनि < औषधानि (शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा)

5. शब्द के व्यंजन के बाद य आने पर उसका समीकरण हो गया है –

कलण < कल्याण

मानसेहरा में साधरणीकरण नहीं पाया जाता है –

एकतिए < एकत्य (शाहबाजगढ़ी)

एकतिय < एकत्य (मानसेहरा)

6. शब्द में अनुनासिक व्यञ्जन के साथ प्रयुक्त य और ज्ञ का ञ्ञ पाया जाता है। यथा–

ञ्ञ < अन्य (शाहबाजगढ़ी)

अणत्त < अन्यत्र (मानसेहरा)

पुञ्ञ < पुन्यं (शाहबाजगढ़ी)

पुणं < पुण्यम् (मानसेहरा)

7. शब्द के मध्य में प्रयुक्त ह का भी प्रायः लोप हो जाता है। यथा–

ब्रमण < ब्राह्मण (शाहबाजगढ़ी)

बमण < ब्राह्मण (मानसेहरा)

8. शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा के लेखों में दीर्घ स्वरों का बिलकुल अभाव है। जहाँ दीर्घ स्वर की आवश्यकता है वहाँ भी ह्रस्व स्वर से काम चलाया जाता है –

लिखयेशमि < लेखयिष्यामि – ए के स्थान इ

ओषुढनि < औषधानि – अ के उ

लिखयितु < लेखितो – ओ–उ

9. ष के स्थान पर श और स के स्थान पर श और ह पाये जाते हैं–

मनुश < मनुष्य[1]

अभिसित < अभिषिक्ता[2]

हचे < सचेत्[3]

10. पदरचना की दृष्टि से पश्चिमोत्तरी प्राकृत में प्रथमा के एकवचन में पुल्लिङ्ग में ओ तथा क्वचित् ए प्रत्यय पाए जाते हैं।

देवन(ं) प्रियो < देवानां प्रियः (शाहबाजगढ़ी)[4]

देवन प्रिय < देवानं प्रियः (मानसेहरा)[5]

11. सप्तमी के एकवचन में प्रायः एकारान्त होता है, पर कहीं–कहीं इसके अन्त में असि भी रहता है–

महन(स)ि (स) < महानसे[6]

गणनासि < गणनायं [7]

12. धातुरूपों में पालि के नियमों के अनुसार स्वर और व्यंजनों में परिवर्तन होता है। शाहबाजगढ़ी में आह के स्थान में हति रूप मिलता है। तथा – हति ढ आह

13. प्रेरणार्थक क्रिया में अय अथवा पय प्रत्यय लगा दिया जाता है और अय का ए हो गया है –

वढयति < वढेति[8]

शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा के पाठो को देखने से ज्ञात होता है कि ध्वनि की दृष्टि से दोनों में महत्वपूर्ण अनुरूपता है पर ओ और ए विभक्ति की दृष्टि से शाहबाजगढ़ी के पाठ गिरनार के निकट है और मानसेहरा के पाठ जौगढ़ के। इसी स्वरूप साम्य के कारण कुछ विद्वान् अशोक के शिलालेखों को भाषा प्रवृत्ति की दृष्टि से ही वर्गो में विभक्त करते हैं – एक गिरनार और शाहबाजगढ़ी के शिलालेख और दूसरा वर्ग कालसी, मानसेहरा, धौली जौगढ़ तथा अन्य सभी स्थानों के गौण शिलालेख। पश्चिमोत्तर की भाषा में ज्ञ और ण्य के स्थान पर ञ्ञ का प्रयोग होता है। यह पैशाची का पूर्वरूप है।[9]

2. दक्षिण पश्चिमी समूह

जूनागढ़ और गिरनार के शिलालेखों की भाषा इस समूह का प्रतिनिधित्व करती है। गिरनार के शिलालेखों की भाषा शौरसेनी है। यह मध्यदेश की भाषा से प्रभावित है। इस पाठ की प्रधान प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार हैं –

1. शब्द में 'व्' ध्वनि के पश्चात् प्रयुक्त होनेवाले ऋ स्वर के स्थान पर अ और उ स्वर पाये जाते हैं [10] –

वुत्त, वत्त < वृत्त

मग < मृग

2. सामान्यत: ऋ स्वर के स्थान पर अ स्वर ही पाया जाता है। यथा[11]–

मगो < मृग

धुवो < ध्रुवो

3. संयुक्त व्यंजन की स् ध्वनि का लोप नहीं होता। यथा[12] –

अस्ति < अस्ति

हस्ति < हस्ति

4. कुछ ध्वनियों में पश्चिमोत्तरी शिलालेख के समान ध्वनियाँ मिलती हैं। यथा[13] –

क्ष के स्थान पर छ, व्रछा < वृक्ष

ऋ के स्थान पर र् मगो < मृगो

5. संयुक्त र् का वैकल्पिक लोप उपलब्ध होता है[14] –

त्री ती < त्रि

सव < सर्व

6. श्, ष और स् इन तीनों ऊष्मों के स्थान पर एक मात्र दन्त्य स् ध्वनि का व्यवहार पाया जाता है। यह शौरसेनी की शुद्धतम प्रवृत्ति है। यथा[15] –

पसति < पश्यति[16]

सकं < शक्य[17]

7. संयुक्त व्यंजनों में व्य के स्थान पर च, त्स के स्थान पर छ, ञ के स्थान पर ज, ध्य के स्थान पर झ, प्त के स्थान त, तथा श्च के स्थान पर छ पाया जाता है। यथा[18]–

1. आचायिक < अत्याधिक[अ]

2. चिकीछा < चिकित्सा[आ]

3. अज < अद्य[इ]

4. मझमेन < मध्यमेन[ई]

5. असमात < असमाप्त[3]

6. पछा < पश्चात्[19]

8. सप्तमी के एकवचन में स्म संयुक्त ध्वनि के स्थान पर म्ह ध्वनि पायी जाती है। यथा[20] –

महानसम्हि < स्मिन्

तम्हि < तस्मिन्

9. पद रचना में प्रथमा विभक्ति में अकारान्त एकवचन में ओ प्रत्यय मिलता है, कहीं–कहीं मागधी का प्रभाव रहने से एकारान्त रूप भी मिलते हैं। यथा[21] – प्रियो ढ प्रियः[8] अनारंभो ढ अनालम्भ[8]

10. भू–धातु का विकास हो के रूप में पाया जाता है यथा[22]– होति ढ भवति

11. कालसी की प्रति में राजानों के स्थान पर देवानंपिया पाठ मिलता है।[23]

12. गिरनार पाठ के आठवें शिलालेख में दस्यनं पाठ के स्थान पर दस्पनं पाठ मिलता है।[24]

13. गिरनार पाठ में द्वितीय शिला अभिलेख की द्वितीय पंक्ति में

केतलपुतो (गिरनार) केरडपुत्रो (शाहबाजगढ़ी)

केललपुते (कालसी) केरलपुत्र (मानसेहरा)

14. इसी तरह गिरनार अभिलेख के तृतीय पंक्ति में आए सामीपा के लिए ब्यूलर ने सामीनं, संशोधन कर सामंता बताया है। हुल्ट्श ने पहले सामंता फिर सामीपं (या समीहा) में परिवर्तित किया। किन्तु अर्थ की दृष्टि से यहाँ समीपां ही सही प्रतीत होता है।

15. डॉ. सुकुमार सेन[25], ने कुछ विशेष शब्द भी उदाहृत किये हैं, जिनके परिवर्तन के लिए कोई विशेष नियम या सूत्र प्रस्तुत नहीं किये जा सकते है। यथा –

यारिस, यादिस – यादृश्

महिडा < महिला

3. मध्यपूर्वी समूह

इस भाषा में कालसी शिलालेख, टोपरा, दिल्ली के स्तम्भ लेख, जोगीभारा के गुहालेख आते हैं। इन पाठों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार से हैं–

1. अन्तिम ह्रस्व स्वर के स्थान पर दीर्घ स्वर हो गया है। यथा[26]–

आहा < आह

लोकसा < लोकस्य

2. शब्द में प्रयुक्त संयुक्त र्, स्, ष् ध्वनियों का लोप हो गया है। यथा[27] –

अठ < अर्थ, सब < सर्व

3. शब्द त्, व् के अनन्तर प्रयुक्त य ध्वनि का इय् हुआ है, परन्तु उसके पूर्व में द्, ल्, के रहने पर समीकरण हो गया है। यथा[28]–

उयान < उद्यान, कयान < कल्याण

4. त्य के स्थान पर च और स्म, ष्म के स्थान पर प्फ पाये जाते हैं। यथा –

सच < सत्य, तुप्फे < तुष्ये[29], अफाक < अस्माकम्

5. संयुक्त व्यंजन क्ष के स्थान पर ख पाया जाता है। यथा

मोख < मोक्ष, खुदकेन् < क्षुदकेन्[30]

6. भू धातु का प्रयोग हू के रूप में पाया जाता है। यथा -

होति < भवति[31]

7. प्रथमा विभक्ति के एकवचन में ए प्रत्यय तथा सप्तमी विभक्ति के एकवचन में स्सि और सि प्रत्यय पाये जाते हैं।

महानससि < महानसे

4. पूर्वी समूह

इस समूह की भाषाओं का रूप अधिक स्थिर है। पूर्वी भाषा अशोक की राजभाषा थी संभवतः इसका रूप मागधी प्राकृत ही है। एक प्रकार से इसे प्राचीन मागधी की प्रतिनिधि भाषा कहा जा सकता है। दिल्ली, इलाहाबाद, कौशाम्बी, सारनाथ, साँची के शिलालेखों में पूर्वी भाषा का रूप सुरक्षित मिलता है। रूम्मिनदेइ और नेपाल के नीगलिव स्थानों में मिले दानलेखों की भाषा भी पूर्वी है।

1. पूर्वी प्रवृत्ति के अनुसार इन पाठों में र् के स्थान पर ल् ध्वनि का प्रयोग पाया जाता है। यथा[32] -

कालनेन < कारणेन, लाजा < राजा

मजूला < मयूराः, लजूका < रज्जुका

2. संयुक्त व्यञ्जन के अनन्तर प्रयुक्त य् और व् इय और उव पाये जाते हैं। यथा

दुवादस < द्वादश, कटविय < कर्त्तव्य[33]

3. एवं के स्थान पर हेवं का प्रयोग पाया जाता है। यथा -

हेवं आहा < एवमाह[34]

4. दन्त्य त् के स्थान पर कुछ स्थानों में मूर्धन्य 'ट्' और कही-कहीं ज्यों का त्यों त् भी पाया जाता है। यथा-

कटेति < कृतमिति[35]

5. अहं के स्थान पर हकं या अहकं रूप मिलते हैं -

हकं < अहं[36]

6. कृत प्रत्ययों के रूपों में त्वा के स्थान पर तु और त्वा दोनों ही उपलब्ध हैं। यथा -

आलभितु < आरभित्वा

✓ दृश धातु के स्थान पर ✓ देख का प्रयोग पाया जाता है। यथा -

देखति < पश्यति[37]

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से यह तो तय है कि अशोकयुगीन भारतवर्ष में सर्वत्र प्रायः एक राष्ट्रभाषा का विकास एवं प्रसार था। अशोक के सभी लेखों के पाठों में प्रायः एक समान भाषा का प्रयोग हुआ है यद्यपि इसमें पूर्वी एवं पश्चिमी स्थानीय प्रभाव परिलक्षित है तथा शब्दरूपों, व्याकरण, शब्दकोश आदि की दृष्टि से इस समान भाषा के प्रांतीय भेद भी थे; किन्तु सर्वत्र प्रायः एकरूपता मिलने से यह अनुमान किया जाता है कि ईसापूर्व तीसरी शताब्दी में पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण बृहत्तर भारतवर्ष में प्राकृतभाषा को सभी लोग पढ़ व समझ लेते थे। इसे विद्वानों ने मागधी भाषा का प्राचीनरूप माना है।[38]

यहाँ यह विचारणीय हो जाता है कि यदि यह सामान्य प्राकृतवत ही हैं, तो इसमें इतने व्यापक अंतर क्यों है। इसका समाधान यह है कि अशोक के शिलालेखों की प्राकृत के रूपों में अंतर प्रधानतः भाषागत कारणों से न होकर लिपिगत कारणों से है।[39] यथा -

1. चूंकि उस समय संयुक्त व्यंजनों के लिखने का विकास नहीं हुआ था अतः इनमें संयुक्ताक्षरों का प्रयोग नहीं है तथापि जहाँ

संयुक्ताक्षर का प्रयोग इष्ट था, वहाँ पूर्ववर्ती स्वर को ह्रस्व रखा गया, तथा लोप इष्ट था वहां पूर्ववर्ती स्वर प्राकृत के नियमानुसार दीर्घ कर दिया है। हलन्त अनुनासिकों को सर्वत्र अनुस्वार बना दिया है।

2. प्राकृत में 'नो णः सर्वत्र' के नियमानुसार णत्व का विधान है; फिर भी चूंकि उस समय 'न' एवं 'ण' दोनों वर्णों के लिए एक ही आकृति का प्रयोग होता था, अतः पाठ–सम्पादकों से न पढ़ा जबकि प्राकृत के अनुसार उसे 'ण' ही पढ़ा जाना चाहिए था। इसी तरह 'र' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग पूर्वीय प्रभाव की देन है।

4. अन्य कुछ संस्कृतनिष्ठ रूप राजकीय विद्वानों द्वारा निर्मित पाठों के प्रभाव से आये प्रतीत होते है। यथा –अस्ति, द्वो, ते, सर्वत, नास्ति, परिभोगाय, मया, इदं इत्यादि

यदि इन बातों को ध्यान में रखकर पुनः पाठ सम्पादन किया जाय तो अशोक के शिलालेखों से और भी कई नए तथ्य उजागर किये जा सकते हैं।

प्राकृत एक जनभाषा थी क्षेत्र एवं काल की दृष्टि से इनमें पाठ भिन्नता आती है जिससे हर कोई इसे आसानी से समझ सके। विशाल साम्राज्य की फैली हुई सीमाओं पर खुदवाये गए इन शिलालेखों को भारत का प्रथम भाषाशास्त्रीय सर्वे कहा जा सकता है। अतः प्राकृत के प्राचीन स्वरूप की जानकारी के लिए अशोक के शिलालेख अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन शिलालेखों में न तो पूरी तरह शौरसेनी, न ही मागधी, न ही महाराष्ट्री का आदर्श रूप मिलता है अपितु इन सभी का मिश्रित रूप दिखाई पड़ता है। अतः हम यही मान सकते है कि सम्राट अशोक के शिलालेखों की भाषा में कृत्रिमता है तथा संस्कृतनिष्ठ रूप भी प्राप्त होते हैं। सम्राट् अशोक का एकमात्र उद्देश्य जन–जन तक अपना संदेश पहुँचाना था।

सन्दर्भ ग्रंथ

1) डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

2) डॉ. डी.सी.सरकार, सिलेक्टिड इन्सक्रिप्शन्स।

3) वासुदेव उपाध्ये, प्राचीन भारतीय अभिलेख का अध्ययन।

4) राधाकुमुद मुखर्जी : अशोक।

5) डॉ. मधुकर अनन्त मेंहैंडल, कम्परेटिव स्टडी ऑफ अशोकन इन्स्क्रिप्शंस्।

---

1 2 शिलालेख – 4 लाइन
2 4 शिलालेख – 10 लाइन
3 9 शिलालेख
4 10 शिलालेख
5 10 शिलालेख – 8 लाइन
6 1 शिलालेख – 2 लाइन
7 3 शिलालेख
8 4 शिलालेख – प्रथम पंक्ति।
9 डॉ. मधुकर अनन्त मेहैंडल, कम्पेरटिव स्टडी ऑफ अशोकन् इन्स्क्रिप्शन।
10 9वें शिलालेख का 7वीं पक्ति।
11 पहले शिलालेख की 7वीं पक्ति।
12 पहले शिलालेख की पांचवीं पक्ति/ चौथे शिलालेख की दूसरी पंक्ति।
13 2 शिलालेख की चौथी पंक्ति।
14 पहले शिलालेख की आठवीं पंक्ति।
15 पहले शिलालेख की चौथी पंक्ति/13 शि. ले. 11वीं पंक्ति।
16 1 शि.ले., 5 ला.
17 13 शि.ले.
18 छठे शि. ले. में छठी पंक्ति।
(अ) दूसरे शिलालेख की चौथी पंक्ति।
(आ) दूसरे शिलालेख की पहली पंक्ति।
(इ) पहले शिलालेख की सातवीं पंक्ति।

(ई) चौदह शिलालेख की पहली पंक्ति।
(उ) पहली शिलालेख की आठवीं पंक्ति।

19 11 शि.ले.

20 1 शि. ले. छठी पंक्ति

21 प्रथम शि. ले. 4चौथी पंक्ति/ 4चौथी शि. ले. तीसरी पंक्ति।

22 11 शि.ले. 5वीं पंक्ति।

23 8 शि.ले. पहली पंक्ति।

24 8 शि.ले. पांचवी पंक्ति।

25 Comprative Grammer of Middle Indo Aryan.

26 प्रथम शि.ले. की प्रथम पंक्ति।
69वां स्तम्भलेख

27. चौथी पंक्ति / षष्ठ शिलालेख की 7वीं पंक्ति।

28 दूसरा स्तम्भलेख पांचवी पंक्ति।

29 सारनाथ स्तम्भलेख की 6, 10 पंक्ति।

30 10वी शिलालेख की दूसरी पंक्ति।

31 9वें शिलालेख की चौथी पंक्ति।

32 प्रथम स्तम्भलेख प्रथम पंक्ति।

33 5वां स्तम्भेलख 9वीं पंक्ति।

34 द्वितीय स्तम्भलेख 20वीं पंक्ति।

35 तृतीय स्तम्भलेख 2 पंक्ति।

36 ब्रह्मगिरि 2 पंक्ति

37 तीसरे स्तम्भ लेख की प्रथम पंक्ति–डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी

38 डॉ. सुदीप कुमार जैन : प्राकृत साहित्य स्तबक प्रथम भाग–।

39 स्व. रायबहादुर पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा 'प्राचीन भारतीय लिपि माला' में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर।

Human Rights in the Inscription of Ashoka

Dr. Keshev Narayn Mishra

Every high school students knows that universal declaration of 'Human Rights' was done by United Nation in the middle of twentieth century. Then, why should one try to find human right in the inscriptions of an Emperor who ruled India more than two millennia ago? Is it desirable to trace every good or bad thing that has happened in 20th century way back to our ancient history? This question also becomes all the more important keeping in view the fact that the concept of Human Rights has gained currency since French Revocation and wildly recognized as a western concept. It is more worth remembering that history of ideas have not developed in a linear way.

And there is no denying the fact that there was never a coherent and systematic preservation of human rights in ancient India. However, one is aware of the fact that human mind has grappled with these ideas in one form on the other since the dawn of civilization Human rights in the various parts of the world. Indian civilization unlike their counterparts in the west has always emphasized on duty rather than rights. The word 'Dharma' widely used in Sanskrit texts connotes righteous conduct and this Dharma has to be practiced by everyone. When the king is following his 'Dharma', the subject receives their rights and the vice versa. When the father performs his dharma towards his children, his children gets their rights fulfilled. Thus, one finds that if everyone follows one's dharma, rights are enjoyed by each person. In the western tradition the emphasis on rights is subject to fulfilment of

duties. No one can enjoy his rights, unless the other performs his duty. When the king Ashoka talks of 'Dharma', it is nothing but social responsibility as noted historian ***Romila Thapar*** writes in her book 'History of India[1]. It is well known that rights are demands of the society recognized by state and if King Ashoka proclaims that certain principles have to be followed by his officials in dealing with the subjects, it is nothing but recognition of societal demand which can be dubbed as rights.

It is true that the concept of human rights got a ***Fillip*** from the French Revolution. The concepts of liberty, equality and fraternity enunciated in French Revolution gave an impetus to the concept of human rights which is unparallel in human history. It is the ideas of French Revolution which culminated in the universal declaration of human rights in 1948. However, one should not forget that these ideas have occurred intermittently in various civilizations including India. The concept of 'Vasudhaiv Kutumbkam' in Sanskrit is a telling example of fraternity and equality. The ***seers*** of India have tried to dwell on these issues from time immemorial.

It is worth examining whether on can enjoy rights only under democratic from of government. It is true that a strong democracy provides the best safe guard against the curtailment of rights including human rights. But one should not forget that rights are the product of liberalism which tried to protect individuals from the ***tyranny*** of the State. When Magna Carta was declared in the west in 1215, England was kingdom. There has been a gradual enhancement of rights of the individual under kingdom in Europe in general and England in particular. Kingdom may not be considered the best way of realizing rights including human rights. However, one should keep in mind people have enjoyed some of the rights even under kingdoms in various parts of the World. Religion has acted as a constraint on the power of King. The concept of dharma and social structure has curtailed in the power

of kings to encroach upon the rights of human beings. Here, it is worth remembering that even a good legal structure like independent judiciary could not protect the rights of Indian during emergency. Even today, there is a gross violation of human rights in India as reported by different human rights organizations including Amnesty International.

One has to appreciate that the king Ashoka in his inscriptions stops judicial torture. Though the historical records are yet to be examined to find out how this was in actual practice and to what extent. But the very fact that the king puts these inscription in places where everyone can read them speaks volumes about his concern for human rights. In these inscriptions the king Ashoka asks his officials to take care of the families of prisoners. Even today the government of India does nothing for the families of prisoners. The king Ashoka asks his officials to release those prisoners who are helpless. If one tries to understand inscriptions of Ashoka, one finds a clear enunciation of prisoner rights. Judicial torture is prohibited by king Ashoka.

Humanism was the pillar on which Ashoka based his administration. A.L. Basham in his well known book 'The wonder that was India' writes that Ashoka's policy was human in internal administration and the rejection of aggressive ***war***. He quotes one inscription where Ashoka says – "for the be beloved of the Gods desire safety, self-control, justice and happiness for all human beings. He considers the greatest of all victories of the victory of righteousness[2].

Ashoka is also known for his religious tolerance in an era when much of the world was facing religious clash, to say the least. We find two types of Ashoka's inscription. His views are different in both the inscriptions. 'In the inscriptions' of small group. We find the approval of Buddhist tenets by Ashoka and his association with the sangha. Here, one finds the voice of such a

man who is a Buddhist and intolerant of persons opposed to his tenets. For instance, he asks that those opposed to majority view in the sangha should be ostracized. But in other more important inscriptions, Ashoka has put emphasis on tolerance. According to him, there were two forms tolerance: tolerance of Individuals and tolerance of their ideas and beliefs[3].

After Kalinga war, there was an abandonment of aggressive war by Ashoka. It was peace that was clear to him. One is aware of the fact that no one can enjoy his rights in the absence of peace. The human rights of even the most powerful are not fulfilled when the country is lacking in peace. Even the human rights of high court judges were missing when Punjab was facing terrorism in 1980's.

Ashoka stands for better treatment of slaves in his inscriptions. In an era, when the slave had to undergo inhuman treatment at the hands of their masters in the west, the call for better treatment with the slaves is remarkable. If a regime and a particular society has to be adjudged by its treatment of its lowest section Ashoka's regime stands for different from others of his time.

The best example of Ashoka's compassionate regime is illustrated in those inscriptions where he asks for better treatment for the criminals. He prohibits the killings of animals. One gets a concern for not only human being but even for animals in the inscription of Ashoka. E.P. Thomson writes "There is not a thought that is being thought in the west or the east that is not active in some Indian mind"[4]. When it comes to human rights, it becomes clear from the analysis of Ashoka's inscription that he was grappling with the issue of human rights in one way or the other. He may not be a philosopher or may not have given a systematic exposition of human rights, but as a king he tried to give his subjects some of

the human rights which or still not available to a large section of humanity.

1) Romila Thapar : Bharat ka shashan, Page No. 63, Rajkamal Prakashan, 1988

2) A.L. Basham : The wender that was India page No. 55, Rupa, 1992.

3) Romila Thapar: Bharat ka shashan, page 63, Rajkamal Prakashan, 1988

4) Quoted in "In spite of the Gods by Edward Luce" Page No.300 Little Brown 2006

सम्राट् अशोक के अभिलेखों में दार्शनिक तत्त्व

डॉ. कुलदीप कुमार

ई.पू. द्वितीय-तृतीय शताब्दी में सम्राट् अशोक के जन्म होने के अनेक आधार प्राप्त होते हैं, जिनमें ई.पू. 286 में अशोक के पिता बिन्दुसार ने अशोक को वायसराय बनाकर उज्जैन भेजा। ई.पू. 284 में अशोक के ज्येष्ठ पुत्र महेन्द्र का जन्म हुआ। ई.पू. 282 में सबसे बड़ी पुत्री संघमित्रा का जन्म हुआ। ई.पू. 270 में अशोक के राज्याभिषेक होने का प्रमाण उपलब्ध है। उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर अशोक का जन्म ई.पू. तृतीय शताब्दी निश्चित होता है।

भारतवर्ष में सम्राट् अशोक के अनेकानेक स्तम्भ लेख, शिलालेख, गुहालेख प्राप्त होते हैं, जिन्हें धम्मलेख के नाम से भी जाना जाता है। यद्यपि इन आलेखों को भारतीय कला एवं संस्कृति के सन्दर्भ में पुरातत्त्व वैज्ञानिकों ने अत्यधिक महत्त्व दिया है। वस्तुतः प्राचीन भारत की कला का इतिहास सम्राट अशोक से ही प्रारम्भ होता है। अशोक ने ही स्तूप, स्तम्भ तथा गुहाओं का निर्माण कराकर उन पर अपने सन्देश अभिलेखों के रूप में खुदवाए। जिनमें

1. प्रधान शिलाालेख-गिरनार, मानसेहरा, शाहवाजगढ़ी।
2. कलिंगलेख, धौलीलेख, जोगड़लेख।
3. लघुशिलालेख, रूपनाथ येरूगुड़ीलेख।
4. अशोक के स्तम्भलेख - दिल्ली स्तम्भलेख, रामपुरवा स्तम्भलेख।
5. गौड़ स्तम्भलेख, रानी का स्तम्भलेख, कौशम्बी स्तम्भलेख, साँची स्तम्भलेख, सारनाथ स्तम्भलेख।
6. स्मारक स्तम्भलेख, रूम्मनदेई स्तम्भलेख।

7. गुहालेख, बराबर नागार्जुनी गुहालेख।

8. वैराट शिलालेख। आदि प्रमुख हैं।

सम्राट् अशोक के ये अभिलेख न केवल भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं अपितु धार्मिक, दार्शनिक एवं आचार मीमांसा की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। अशोक के इन अभिलेखों के अध्ययन से उसके नीति-निर्धारक तत्त्वों, नीति मीमांसा अथवा आचार-शास्त्र का स्पष्ट ज्ञान होता है। जहाँ तक उसके व्यक्तिगत धर्म का सम्बन्ध है, अशोक बौद्धधर्म का एक उत्साही अनुयायी अवश्य था किन्तु उसका मन आन्तरिक तत्त्वों के विकास-आत्मोन्नयन के मार्गों से प्रभावित था। अशोक के लेखों में, इसके अनेक उपदेशों मे उपनिषदों के अनेक उपदेशों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। बौद्ध-जैनदर्शन के त्रिरत्नों प्रज्ञा-शील-समाधि एवं सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्पष्ट निदर्शन प्राप्त होता है साथ ही भगवत् गीता के -

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया

का स्पष्ट उल्लेख अशोक के विविध अभिलेखों में देखा जा सकता है। यथा माता-पिता, गुरुजनों, आचार्यों के प्रति सेवा के भाव रखने के अनेकों अभिलेखों में उल्लेख प्राप्त होते हैं। यथा- **साधु मातरि च पितरि च सस्रूसा, संम्म पटिपति मतपितुसु सुश्रुष**[40] इत्यादि।

इसी प्रकार श्रमणो, सन्यासियों, विद्वानों, दास-दासियों, मित्रों, परिचितों के प्रति सम्यक् व्यवहार का साक्षात् संकेत अशोक के विविध अभिलेखों में प्राप्त होता है। मानसेरा अभिलेख में कहा गया है कि - **इयं दास-भटकसि साम्यापटिपति गुलुना अपचिति।**[41]

इसी प्रकार विविध अभिलेखों में श्रावकों (गृहस्थों) के गार्हस्थ जीवन के कर्त्तव्यों का भलीभाँति निवर्हण करने के लिए श्रमणों, विद्वानों, मित्रों एवं बड़े-बुढ़ों के लिए विविध द्रव्य दान करने का उल्लेख मिलता है। यथा

- ❖ **संम्म पटिपति मतपितुसु**
- ❖ **मित संस्तुत–ञतिकनं श्रमण–ब्रमणन**[42]
- ❖ **दशन हिरञ–पटिविधने च**[43]

इसी प्रकार प्राणियों की हिंसा न करना अर्थात् अहिंसा धर्म के पालन करने के अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। यथा –**'प्राणारंभो विहिंसा च भूतान ञातीसु।'**[44] **प्राणानां संयमे**[45]**। अविहीसा भूतानां**[46]**। सव्र–भूतन अक्षति संयमं**[47]**। प्राणेसु द्रह्यितव्यं**[48]**। प्राणानां साधु अनारंभो**[49]**।**

अभिलेख के उपर्युक्त सन्दर्भो से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि सम्राट अशोक का हृदय कलिंग युद्ध में हुई हिंसा का विकराल रूप देखकर अत्यन्त परिवर्तित हो गया। वह पूर्णरूप से अहिंसावादी हो गया। अपने विभिन्न अभिलेखों के माध्यम से मानव समाज को अहिंसा धर्म पालन करने की प्रेरणा दी। इतना ही नहीं उसके अभिलेखों से शौच, सन्तोष, तप, दया, दान, संयम, गुरुभक्ति आदि से युक्त होने के भी प्रमाण मिलते हैं। यथा– **'दया दाने सचे सोचये'**[50] के द्वारा उसके दयालु होने का प्रमाण मिलता है। तथा अन्यत्र भी **'इयं दया दाने सचे सोचवे मघवे साधवे च'**[51] इत्यादि पंक्तियों के द्वारा अशोक के आन्तरिक मृदुता, दयाशीलता तथा साधुता के गुण वर्णित हैं।

इस प्रकार निर्विवाद रूप से हम कह सकते हैं कि अशोक के विभिन्न अभिलेख न केवल कला एवं संस्कृति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, अपितु उनमें दार्शनिक तत्त्व भी भरे पड़े है जिनके द्वारा हम न केवल दर्शन–शास्त्र का अध्ययन कर सकते हैं, अपितु अशोक की आचारमीमांसा या नीति–शास्त्र के भी दर्शन सहजरूप में कर सकते हैं।

इसी प्रकार आस्रव की चर्चा करते हुए अशोक ने देहली स्तम्भ लेख में क्रोध–मान–ईर्ष्या का वर्णन भी 'आसिनव गामिनि के रूप में किया है अर्थात् क्रोध–मान–ईर्ष्यादि दोषों के आचरण आस्रवगामी अर्थात् कर्म बन्धन के कारण होते हैं। यथा–**'आसिनव गामिनि नाम अथ**

चंडिये निठूलिये क्रोधे माने इस्या।'[52] जैन दार्शनिक भी हिंसा-असत्य, चौर्य, अब्रह्म, परिग्रह तथा कषायों को बन्ध का हेतु मानते हैं। यथा -

'मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः।'[53] तथा योग को ही आस्रव कहा गया है। यथा- **'कायवाङ्मनः कर्मयोगः। स आस्रवः।'**[54] तथा संवर के लिए अभिलेखों में संयम पद का प्रयोग किया गया है। यथा - **'सवे हि ते सयमे भव-शुधि च इछंति।'**[55]

अर्थात् मन शुद्धि के लिए संवर अर्थात् कर्मों का निरोध करना चाहिए। इसी अभिलेख में ही और स्पष्ट करते हुए उल्लेख किया है कि जो संयम का आचरण नहीं करते उसकी भव-शुद्धि नहीं हो सकती। यथा - **'यस नस्ति सयम भव, शुधि किट्रञत'**[56]**।**

अन्त में निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि सम्राट अशोक का नैतिक आचार में अखण्ड विश्वास था। लोक-परलोक पर उसकी आस्था थी। अच्छे कर्मों के आचरण से उत्तम पर्याय की प्राप्ति होती है अतः नियमपूर्वक धर्म का आचरण करते हुए मनुष्य को लोक तथा परलोक दोनों ही उज्ज्वल करने चाहिए।

40 क. गिरनार - 3/4, शाहबागढ़ी - 11/1, ग. शाहबाजगढ़ी- 13/4
41 कालसी शिलालेख - 9/2
42 शाहबाजगढ़ी पाठ - 11/1
43 शाहबाजगढ़ी पाठ 8/3, 4
44 शिलालेख गिरनार 4/1
45 शिलालेख कालसी 9
46 शिलालेख गिरनार 4/6
47 शिलालेख शाहबाजगढ़ी 13/8
48 शिलालेख ब्रह्मगिरि 2/9
49 घ चट्टान अभिलेख, गिरनार 3/5
50 स्तम्भ लेख -2/3
51 ङ स्तम्भ लेख -7/18
52 ङ देहली स्तम्भ लेख -3/4
53 तत्त्वार्थसूत्र 8/1
54 तत्त्वार्थसूत्र 6/1, 2
55 शाहबाजगड़ी - 7/2
56 शाहबाजगड़ी - 7 4/5

सम्राट् खारवेल के शिलालेख की सूत्रात्मक शैली की दृष्टि से समीक्षा

श्रीमती डॉ. रंजना जैन

दिग्विजयी सम्राट् खारवेल ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी का अपराजेय सम्राट् एवं प्रजावत्सल राजा था। प्राप्त उल्लेखों के अनुसार वह संभवतः भारत का ऐसा प्रथम सम्राट् था, जिसका 'महाराजा' के रूप में राज्याभिषेक किया गया था। जैसा कि वह अपने ऐतिहासिक हाथीगुम्फा शिलालेख में लिखता है– "महाराजाभिसेचनं पापुनाति।" उसने इस देश को 'भारतवर्ष' इस संज्ञा से भी अपने उक्त शिलालेख में अभिहित करके इस नामकरण को ऐतिह्यता एवं असंदिग्धता प्रदान की थी। इतिहास एवं संस्कृति की दृष्टि से अनेकों महत्त्वपूर्ण तथ्यों को आत्मसात् किये इस संक्षिप्त कलेवर वाले महनीय शिलालेख में शब्दों की सीमितता होते हुए भी अपार कथ्य समाहित है। इसीकारण से इसे 'सूत्रात्मक शैली में लिखे गये अद्वितीय ऐतिहासिक अभिलेख' की संज्ञा भी विद्वानों ने प्रदान की है। इसमें निहित सूत्रात्मकता को लक्षित करके उसकी साधार सिद्धि करने का संक्षिप्त प्रयास इस आलेख में किया गया है। धवलाकार ने सूत्र का लक्षण निम्नानुसार बताया है –

"अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद्गूढ़निर्णयम्।
निर्दोषं हेतुमत्तथ्यं सूत्रमित्युच्यते बुधैः॥"

आ. वीरसेन, जयधवल भाग–1, 68

इसके अनुसार सूत्र के प्रमुख लक्षण है –

1. जिसमें कम से कम शब्दों में अधिक बात कही हो (आल्पाक्षरम्)।

2. जिसमें संदेहरहित कथन हो (असन्दिग्धम्)।

3. जिसमें सारभूत बाते कही गई हो (सारवद्)।

4. जिसमें गूढ़ बातों का निर्णय किया गया हो (गूढनिर्णयम्)।

5. जो पुनरुक्ति आदि दोषों से रहित हो (निर्दोषम्)।

6. जिसमें हेतु या प्रमाणपूर्वक कथन किया गया हो (हेतुमत्)।

7. जो तथ्यात्मक हो (तथ्यम्)।

सूत्र लक्षण की इस कसौटी पर कसने पर यह स्पष्ट है कि सम्राट् खारवेल का शिलालेख किसी सूत्र-ग्रंथ का प्रणयन तो नहीं था, किन्तु उसमें सूत्र-शैली का भरपूर प्रयोग किया गया है। इसका साधार विवरण निम्नानुसार है-

1. अल्पाक्षरत्व

सामान्यत: शिलालेखों में सूत्रशैली के इस अंग का प्रयोग किया जाता है। क्योंकि इसमें लिप्यासन या लेखन की आधार सामग्री की सीमितता, लेख-उत्कीर्ण करने की कठिनता तथा उसमें लोक-रुचि बनी रहे

इस निमित्त लेखन सामग्री की सीमितता आदि कारणों से शिलालेख सीमित शब्दों में ही लिखाये जाने की परम्परा है। इस प्रतिष्ठित शिलालेख में तो इस बात का आद्योपांत अनुपालन हुआ है। यहाँ तक कि मंगलाचरण में भी पाँचों परमेष्ठियों की जगह मात्र दो परमेष्ठियों को नमस्कार करके ही वह मूल बात पर आ गये हैं। शब्दों की सीमितिता के कारण ही उसमें समास-बहुल प्रयोग किये हैं। यथा- "लेख-रूप-गणना-ववहार-विधि-विसारदेन, 'गोपुर-पाकार-निवेसन', 'कलिंग-युवराज निवेसितं', 'सीरि-कडार-सरीरवता', 'वितध-मुकुट', 'निखित-छत', 'भिंगारे', 'मणि-रतनानि' आदि।

यद्यपि कई विशेषणों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आत्मश्लाघा के लिये उसने शब्द-सीमितता की मर्यादा का उल्लंघन

किया है, किंतु सूक्ष्मता से विचार करने पर प्रत्येक विशेषण किसी न किसी नवीत तथ्य की व्यापक जानकारी का प्रतिनिधित्व करता सिद्ध होता है। संक्षिप्त कथन-शैली का यह प्रमुख वैशिष्ट्य है कि यदि उस लिखित सामग्री में से एक अक्षर या एक शब्द भी कम कर दिया जाये, तो वहाँ निश्चितरूप से अर्थ एवं वाक्य में कमी या न्यूनता आ जाती है। खारवेल शिलालेख में भी यह बात पूरी तरह घटित होती है। क्योंकि जहाँ कहीं से भी एक पद भी त्रुटित या अवाच्य रहा है, वहीं वह वाक्य अधूरा रह गया है और उसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता। यथा –

सतमं च वसं पसासतो वजिरघरव (ँ) ति धुसित घरिनी स (-मातुकपद) पुना (ति ? कुमार) .....

2. असंदिग्धत्व

यद्यपि हाथीगुम्फा अभिलेख में अल्पाक्षरता का पालन करने के लिये समासों एवं सीमित शब्दों के प्रयोग हुए है; फिर भी इस कारण से कही भी भ्रामक या संदेह-उत्पादक कथन उन्होंने नहीं किये हैं। न ही इसकी समास-शैली कहीं भी स्पष्ट अर्थबोध से बाधक बनी है। स्पष्ट अर्थ-वाले या संशयोत्पादक पदों का कहीं भी प्रयोग नहीं किया जाने से संक्षिप्त होते हुये भी हाथीगुम्फा शिलालेख का प्रत्येक कथन असंदिग्ध है। यथा –

गंधववेद-बुधो, हय-गज-णर-रथ-बहुलं, जीव-देह-सिरिका, सकल-समण-सुविहितानं, सब-रठिक-भोजके।

3. सारवत्त्व (सारवान्)

जिसमें अनावश्यक बातों का कथन न हो, मात्र सारभूत बातें ही आयें, उसे 'सारवद्' कहते हैं। इसके प्रति सम्राट् खारवेल इतना अधिक सावधान था कि उसके अभिलेख में त्रयोदश-वर्षीय राज्य-विवरण के अतिरिक्त अन्य कई महत्त्वपूर्ण सूचनायें भी नहीं आ पायी हैं। जैसा कि-खारवेल के माता-पिता का नाम या आगामी पीढ़ी आदि का विवरण

आदि। यद्यपि वह सातवें वर्ष में अपने राजकुमार पद की उत्पत्ति का संकेत करता है, किन्तु कोई विवरण वह नहीं देता है। इतिहासकारों को ये चीजें कमी के रूप में लग सकती है; किन्तु यदि हम भारतीय परम्परा का स्मरण करें, तो उसमें वैयक्तिक परिचय के बारे में संकोच के ऐसे प्रयोग अनेकत्र प्राप्त होते हैं। कई साहित्यकारों ने बड़े-बड़े ग्रंथ लिख दिये, किन्तु अपने कुल-परिचय के बारे में एक पंक्ति भी नहीं लिखी। तथा हाथीगुम्फा-अभिलेख के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है कि इसमें खारवेल का लक्ष्य अपने त्रयोदशवर्षीय राज्य-शासन का संक्षिप्त विवरण देना था। राज्याभिषेक के पूर्ववर्ती उसने 24 वर्षीय वैयक्तिक जीवन को भी मात्र कुछ ही शब्दों में कहकर समाप्त किया है। इसी प्रकार उपसंहार-वाक्य में भी उसने प्रत्येक विशेषण के द्वारा अपने व्यक्तिगत एवं जीवन की विशेष उपलब्धियों को संकेतित किया है। प्रत्येक पद सारभूत महत्त्वपूर्ण बातों को ही सूचित करता है। इसकी सारवत्ता को इस बात से जाना जा सकता है कि अभी तक लगभग डेढ़ सौ से अधिक विद्वानों ने इसके शिलालेख के प्रत्येक पद का भाष्य किया है, तथापि कई पद अभी भी अनेकों रहस्यों को अपने आप में संजोये हुए हैं। तथा उनके विशद-व्याख्यान में कई पृष्ठों की सामग्री आ सकती है। उदाहरणस्वरूप- 'गंधववेदबुधो' एवं 'विजाधिरादिवासं अपहतपुवं' ये दो पद ऐसी ही व्यापक-विवेचन की अपेक्षा रखते हैं।

4. गूढ़ निर्णयत्व

हाथीगुम्फा अभिलेख यद्यपि एक सम्राट् का ऐतिहासिक विवरण है, फिर भी इसके सीमित शब्द भी अनेकों गंभीर बातें संकेतमात्र में प्रस्तुत कर जाते हैं। जैसे कि - राज्याभिषेक के द्वितीय वर्ष में 'अचितयिता सातकणिं' यह पद बताता है कि खारवेल के राज्याभिषेक के समय सातकर्णी राजा एक पराक्रमी एवं सुसमृद्ध राज्य का धनी रहा होगा; किंतु खारवेल को अपने पौरुष, रणकौशल एवं दूरदर्शिता पर पूर्ण विश्वास था। अतः उसने सातकर्णी की परवाह किये बिना पश्चिम दिशा की ओर अपनी चतुरंगिणी सेना को भेजा। किंतु इससे यह भी स्पष्ट रूप

से संकेतिक है कि वह सातकर्णी से उलझा नहीं था। अर्थात् उसने सातकर्णी से युद्ध कहीं किया था।

इसी प्रकार 'कृष्णवेणा' को पार करने के बाद 'असिक नगर' का उल्लेख उसके मार्ग एवं भौगोलिक स्थिति की सार्थक सूचनायें देते हैं। इसी प्रकार राज्याभिषेक के पाँचवे वर्ष में 'नंदराजा' के द्वारा तीन सौ वर्ष पूर्व खुदवाई गई नहर को 'तिनसुलिया' के रास्ते 'कलिंग नगरी' लाना ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दोनों दृष्टियों से गूढ़ रहस्यों को सूचित करता है। राज्याभिषेक के आठवें वर्ष में प्रदत्त विवरण में भी 'पलवभार' एवं 'कपरुख' इन दो पदों के द्वारा उसने एक पूरी संस्कृति के गूढ़ तत्त्वों को संकेतित कर दिया है। ग्याहरवें वर्ष में 'पिथुंड' को गधों से जुतवाना भी ऐसे ही गूढ़ रहस्यों का उद्भावन करता है। क्योंकि किसी स्थान को उजड़वाने के लिये ऐसे प्रयोग किये जाते थे। इसी क्रम में जब वह एक सौ तेरह वर्ष प्राचीन 'तमिल गणतंत्र' की सूचना देता है, तो वह इसकी संबलता तथा दक्षिण भारत में ईसापूर्व तृतीय शताब्दी से गणतांत्रिक व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण रहस्य उद्घाटित करता है। अतंतः 'चोयठि-अंग-संतिंक तुरियं', 'जीवदेहसिरिका' एवं 'खेमराजा' आदि पदों का प्रयोग भी गूढ़ रहस्यों को सूचित करता है।

5 निर्दोषत्व

सूत्रशैली में 'पुनरुक्ति'या 'पिष्टपेषण' को सबसे प्रमुख दोष माना जाता है। हाथीगुम्फा अभिलेख में वर्ष क्रमानुसार तथ्यात्मक निरूपण होने से इसमें पिष्टपेषण की गुंजाइश भी नहीं थी। सम्राट् खारवेल ने भी इसके बारे में बेहद सावधानी रखी है। संपूर्ण शिलालेख में एक मात्र सम्राट् खारवेल का नाम ही एकाधिक बार आया है। वह भी वाक्य में असंदिग्धता के लिए, न कि पिष्टपेषण के लिये। क्योंकि यदि उन स्थलों पर इसके नाम की जगह सर्वनामों का प्रयोग किया जाता, तो उसमें भ्रम की पर्याप्त गुंजाइश थी। अन्य व्याकरणादि दृष्टियों से भी इस शिलालेख के पाठ अपेक्षाकृत अधिक आदर्श एवं निर्दोष है।

अतः सूत्रशैली के पाँचवें गुण निर्दोषता का भी इसमें स्पष्टरूप से अनुपालन प्रतीत होता है।

6. हेतुमत्त्व

जब प्रत्येक पद का प्रयोग सोद्देश्य एवं सहेतुक रीति से किया जाता है, तो उसे 'हेतुमत प्रयोग' कहते हैं। खारवेल अभिलेख में वैसे तो प्रत्येक पद का प्रयोग सोद्देश्य एवं सहेतुक है, जैसे 'णमो अरिहंताणं' आदि दो लघु वाक्यांश मंगलाचरण के निमित्त दिये गये हैं। 'महाराजाभिसेचनं' पद उसके विशिष्ट राज्याभिषेक को सूचित करता है। 'वातविहत' पद गोपुरों एवं प्राकारों आदि के पुनःसंस्कार का कारण बताता है। 'कण्हवेणं गताय' पद कलिंग नगरी से 'असिक नगर' की दिशा को समझने के लिए मील के पत्थर की भाँति है। 'दंप-नत-गीत- वादित-संदसनाहि' एवं 'उसव-समाज-कारापनाहि' में जो अलग-अलग क्रियाओं का प्रयोग गया है; वे इन कार्यक्रमों के आयोजनों की प्रकृति की भिन्नता बताने के लिये है। चतुर्थ वर्ष में 'वितध-मुकुट' एवं 'निखित-छत-भिंगारे' पदों का प्रयोग उन पराजित राजाओं को मूर्त्त रूप में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से किया गया है। 'बम्हण' एवं 'समणं' पदों का प्रयोग खारवेल के समय में विद्यमान प्रमुख सम्प्रदायों की उपस्थिति का सूचक है। अपने निवास के लिये बनवाये राजप्रासाद का 'महाविजय' नामकरण उसकी अखण्ड विजय-यात्राओं की सार्थकता को सूचित करता है। इसीप्रकार उपसंहार में 'पसंतो सुणंतो अनुभवंतो कलाणानि' का प्रयोग एक विशिष्ट क्रम को सूचित करता है। अधिसंख्य पद इसीप्रकार सहेतुक एवं सोद्देश्य प्रयुक्त हुये हैं।

7. तथ्यात्मकत्व

खारवेल ने अपने पौरुष एवं गौरवपूर्ण राज्यशासन का जो वर्णन किया है, वह तो तथ्यपूर्ण है ही; किंतु कहीं भी वैयक्तिक प्रतिष्ठा के आकर्षण में आकर उसने तथ्यों को बदला नहीं है। जैसेकि राज्याभिषेक

के पंचमवर्ष में जब वह तिनसुलिया के रास्ते एक नहर को कलिंग नगरी में लाने की बात करता है, तो वहाँ पर वह यह स्पष्ट कर देता है कि वह नहर मूलतः उसने नहीं खुदवाई थी। अपितु इसका निर्माण कार्य खारवेल से भी तीन सौ वर्ष पूर्व नंद राजा ने कराया था। इसीप्रकार मगधराज बसहतिमित्त का नामोल्लेख एवं उससे छीनकर कलिंगजिन की प्रतिमा को ससम्मान कलिंग नगरी लाना खारवेल शिलालेख की तथ्यपरकता की प्रामाणिकता को सिद्ध करता है। भले ही खारवेल ने अनेकों महत्त्वपूर्ण कार्यों का संपादन किया था। फिर भी जैन–आगमों के संरक्षण के लिये बुलाई गई गोष्ठी में मूल श्रेय वह अपनी रानी सिन्धुला को इसलिए देता है कि वह उसकी प्रेरणास्रोत थी।

इससे स्पष्ट है कि सूत्रात्मक के समस्त बिंदुओं का खारवेल–अभिलेख में अनुपालन होने से खारवेल अभिलेख सूत्रात्मक लेखन–शैली का आदर्श निदर्शन प्रमाणित होता है।

ईसापूर्व शिलालेखों की भाषा पर तत्कालीन शौरसेनी-प्राकृत का प्रभाव

डॉ. मंजूषा संठी

साहित्य 'समाज का दर्पण' होता है। समाज जिस प्रकार का होगा, उसी भाँति साहित्य में उसका प्रतिबिम्ब होता है। समाज के प्रत्येक पहलू के निश्चित-ज्ञान का मुख्य-साधन तत्कालीन साहित्य ही है। संस्कृति के उचित प्रचार तथा प्रसार का सर्वश्रेष्ठ-साधन साहित्य ही है। यदि हमें किसी भाषा तथा उसके साहित्य का अवलोकन करना है, तो हमे उस भाषा का इतिहास तथा विकासक्रम को जानना जरूरी है। वह साहित्य किस प्रकार के सामाजिक, राजकीय, सांस्कृतिक आदि परिप्रेक्ष्य में रचा गया? इस पर भी प्रकाश डालना होगा। प्रस्तुत शोधालेख में 'ईसापूर्व के महत्वपूर्ण-शिलालेखों की भाषा में तत्कालीन शौरसेनी प्राकृत भाषा का प्रभाव' इस विषय पर विचार किया गया है।

प्राकृतभाषा के प्राचीनतम लिखित प्रमाण शिलालेखों से ही प्राप्त होते हैं। अत: किसी भी प्राकृतभाषा के प्राचीन रूप का तुलनात्मक अध्ययन करना हो, तो ईसापूर्व युगीन-शिलालेख में उपलब्ध प्राकृत रूप एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपादान सिद्ध होता है। दिगम्बर जैन आगम-ग्रन्थों में, विशेषत: आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य से भारतवर्ष की प्राचीन एवं व्यापक-भाषा शौरसेनी-प्राकृत के महत्वपूर्ण निदर्शन प्राप्त होते हैं। इसमें इतना ही अन्तर है कि कुन्दकुन्द के लिखित-साहित्य परवर्ती लिपिकारों के विभिन्न कालखण्डों में की गयी प्रतिलिपियों के रूप में मिलता है। आ. कुन्दकुन्द द्वारा लिखित मूलप्रति कोई प्राप्त नहीं होता; जब की शिलालेखीय साहित्य मूलरूप में प्राप्त होता है। इसलिए तुलनात्मक

अध्ययन की दृष्टि से शिलालेखीय साहित्य एक महत्वपूर्ण साधन है। इसी बात का ध्यान रखते हुए इस आलेख में उक्त दोनों साहित्यों का इतिहास, भाषिक-प्रयोगों के साम्य एवं वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए भाषिक विकास एवं तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से समीक्षा की गई है। साथ ही प्राकृतभाषा के उपलब्ध-नियमों की दृष्टि से इनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

शौरसेनी प्राकृतभाषा का विकास -

प्राकृतभाषा का इतिहास-इतिहासकारों के अनुमानों के आधार पर ऋग्वेद के लेखन का काल ईसापूर्व 3000 वर्ष माना गया है। सिन्धुघाटी सभ्यता भी लगभग उतनी ही पुरानी अनुमानित की गई है। उसके उत्खनन में मानव-जीवन की दैनंदिन उपयोग से सम्बन्धित विविध सामग्रियों में मुहरें प्रमुख है, जिन पर अंकित शब्दावली को इतिहासकारों, पुरावेत्ताओं एवं भाषाशास्त्रियों ने प्राकृतभाषा माना है। प्राकृतभाषा का उद्गम एवं 'ऋग्वेद' की भाषा 'छान्दस्' इनका सुलनाल्मक अध्ययन कर विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि-आदिम जनबोली प्राकृत से विकसित वह भाषा ही 'छान्दस्' है, जिसमें 'ऋग्वेद' की रचना की गई है। विद्वानों के अनुसार प्राकृत-जनबोली से विकसित उक्त 'छान्दस्' से परवर्ती युगों में साहित्यिक-भाषाओं का विकास हुआ है। लौकिक-संस्कृत एवं साहित्यिक प्राकृत आगे चलकर नियमबद्ध होने के कारण लौकिक-संस्कृत का प्रवाह अवरूद्ध हो गया, जबकि प्राकृत का प्रवाह बिना किसी अवरोध के विकास होता रहा है। शौरसेनी-प्राकृतभाषा का विकास-ईसापूर्व के नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि के पहले शौरसेनी प्राकृत को किस नाम से जाना जाता होगा? इसके प्रमाण नहीं मिलते हैं। परंतु उस समय एक ऐसी प्राकृतभाषा थी जो सर्वमान्य थी। केवल क्षेत्रीय प्रभाव आने के कारण उनके शाब्दिकरूपों में परिवर्तन हुए हैं। इसका कारण अलग-अलग प्राकृत भाषायें, विभाषायें बनी हैं। भरतमुनि ने भी सर्वाधिक महत्व शौरसेनी को ही दिया है। जितने प्रमाण शौरसेनी-प्राकृत के जनबोली में तथा सर्वसामान्य लोगों की लोकप्रिय

भाषा में मिलते हैं, उतने अन्य किसी के नहीं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ईसापूर्व की प्राकृतभाषा का नाम 'शौरसेनी प्राकृत' ही था।

ईसापूर्व की शौरसेनी प्राकृत का स्वरूप -

ईसापूर्व से लेकर पाँचवी शताब्दी तक शौरसेनी-प्राकृत को ही 'सामान्य प्राकृत' कहा जाता था। ईसा की 5वीं शताब्दी से इसी की दुहिता 'महाराष्ट्री प्राकृत' को ही 'सामान्य प्राकृत' कहा गया। मध्यदेश की भाषा शौरसेनी-प्राकृत थी। क्षेत्रीयता से सम्बन्धित भले ही इसका नामकरण हुआ हो, परन्तु तत्कालिन भारत के व्यापक भूभाग की सुपरिचित व्यावहारिक भाषा होने से अपने संदेशों व उपदेशों की व्यापक उपयोगिता की दृष्टि से इसी शौरसेनी प्राकृतभाषा में विपुल साहित्य का सृजन हुआ है। साथ ही एक प्राकृतभाषा थी जो संस्कृत भाषा के सर्वाधिक निकट थी। 'शौरसेनी प्राकृतभाषा' लोकजीवन में सर्वाधिक प्रचलित भाषा थी, इसका प्रमाण हमें उन प्राचीन संस्कृत नाटकों से मिलता है; जिसमें अधिसंख्य प्रात्र इसी भाषा का प्रयोग करते हैं। ऐसी जीवन्त-भाषा को अपने साहित्य का माध्यम बना किसी भी विवेकी व्यक्ति का स्वाभाविक निर्णय कहा जा सकता है।

शौरसेनी-प्राकृत संस्कृतभाषा के निकटवर्ती है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शौरसेनी ही सबसे प्राचीन प्राकृत भाषा है। 'भाषा' संज्ञा की दृष्टि से संस्कृत एवं प्राकृत दोनों भाषाओं ने वैदिक 'छान्दस्' भाषा से सहोदरा कन्याओं के समान जन्म लिया है। अतः विद्वानों ने संस्कृत एवं प्राकृत को 'सहोदरा-बहिने' कहा है। भाषिक दृष्टि से तो दोनों समवर्ती भाषायें हैं। 'छान्दस्' भाषा से ही दोनों का उद्भव होने के कारण संस्कृत एवं प्राकृत का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ना निश्चित है। इससे यह नकारा नहीं जा सकता की ईसापूर्व की प्राकृत संस्कृतभाषा से घनिष्टता लिए होगी। वही भाषा शौरसेनी प्राकृत है। यह सिद्ध हो जाता है। ईसापूर्व का शौरसेनी भाषा साहित्य मूलरूप में आज उपलब्ध नहीं है, परन्तु इनकी प्रतिलिपियाँ, टीकासाहित्य तथा

उस साहित्य पर आधारित अन्य ग्रन्थ आज उपलब्ध है। सबसे पहले आचार्य पुष्पदन्त और आचार्य भूतबलि ने शौरसेनी प्राकृत में ही 'षट्खंडागम' के सूत्र की रचना की है। दिगम्बर जैनाचार्य कुन्दकुन्द ने शौरसेनी-प्राकृतभाषा में विपुल साहित्य का सृजन किया है।

शिलालेखों में प्रयुक्त प्राकृतभाषा-

विश्व में सबसे प्राचीन विस्तृत एवं प्रमाणिक शिलालेखिय साहित्य केवल सम्राट अशोक द्वारा लिखवाये गये अभिलेख ही है। इससे प्राचीन भी शिलालेख मिलते है, परन्तु साहित्य की दृष्टि से उनमें बहुत कमियाँ है। इस कारण अशोक के शिलालेखों का ही 'प्राचीन दस्तावेज' की मान्यता प्राप्त है। खारवेल के 'हाथीगुम्फा अभिलेख' इसी तरह का ईसापूर्व का महत्वपूर्ण, वर्षक्रम से सुव्यवस्थित विवरणवाला अभिलेख है। इनमें सबसे महत्वूपर्ण बात यह है कि सभी अभिलेख प्राकृतभाषा में ही लिखे मिलते हैं।

अभिलेखों की भाषा और लिपि

विद्वानों ने साहित्यिक प्राकृत से अशोक आदि के शिलालेखों की प्राकृत में भेद पाकर 'शिलालेखी-प्राकृत' नाम से एक नये प्राकृतभाषा के भेद का गठन कर दिया है। जो भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से बिलकुल अनुचित प्रयोग है। क्योंकि प्राकृतभाषा या किसी भी भाषा के देश, काल ई. के आधार पर भेद या वर्गीकरण संभव है, लेखन सामग्री के आधार पर कदापि नहीं।

अशोक के बहुसंख्यक अभिलेख भारत के प्राचीनतम अभिलेख होने के कारण तत्कालीन भारत की लिप्यात्मक, भाषात्मक एवं साहित्यिक स्थिति पर प्रकाश डालते हैं। सम्राट अशोक ने अपने पश्चिमोत्तर प्रदेशों के अभिलेखों में युनानी, ऐरेमाइक एवं खरोष्ठी आदि लिपियों का प्रयोग किया है। उसके 'शाहबाजगढ़ी' तथा 'मानसेहरा' अभिलेख खरोष्ठी लिपि के प्राचीनतम विस्तृत लेखन है। शेष समस्त भारत में उसने 'ब्रह्मीलिपि' का प्रयोग किया। इस लिपि का रूप प्रायः सर्वत्र समान है।

खारवेल के हाथीगुम्फा-शिलालेख की भाषा समान्यतः संस्कृतनिष्ट प्राचीन शौरसेनी है, जिसमें कतिपय वर्ण परिवर्तनों में क्षेत्रीय 'ओड्रमागधीप्राकृत' का प्रभाव परिलक्षित होता है। यद्यपि इस शिलालेख में प्राचीन शौरसेनी की समस्त प्रवृत्तियाँ परिलक्षित नही होती, तो भी उसका आदिमरूप मानने को किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं है।

विचारणीय बिन्दु -

(1) अशोक के अभिलेख तथा खारवेल के अभिलेख की लिपि अधिकांशतः 'ब्राह्मीलिपि' है। इसमें समस्या यह है कि प्राकृतभाषा में मूलतः 64 वर्ण हैं। प्रयोगतः 44 वर्ण ही हैं। अब यह विचारणीय हो जाता है कि अशोक के अभिलेखों में जो 'ब्राह्मीलिपि' प्रयुक्त मिलती है। क्या उनमें भी इतने ही वर्ण थे, अथवा इससे कम या अधिक थे? साथ ही स्वर, व्यंजन, संयुक्तव्यंजन, मात्रालेखन, अंकलेखन एवं विरामचिह्न इन बिन्दुओं का भी उस ब्राह्मीलिपि में क्या व्यवस्था थी? अभिलेखों में ब्राह्मीलिपि का प्राचीन रूप है। इस कारण संयुक्त व्यंजन व मात्राओं का अन्तिमरूप से निर्णय नहीं कर सकता तथा जो शब्द प्राकृत के नियमों के अन्तर्गत नहीं आते, उन्हे संस्कृतनिष्ट भी नहीं बता सकते।

(2) 'ब्राह्मीलिपि के स्वर, व्यंजन आदि 6 बिन्दुओं की दृष्टि से सूक्ष्मता से अध्ययन किये बिना भाषिक स्वरूप का भी निर्धारण निर्दोषविधि से संभव नहीं है। एक लिपि से दूसरी लिपि में लिप्यन्तरण करते समय यह ध्यान रखना अनिवार्य है कि उपरोक्त 6 बिदुओं की जैसी व्यवस्था मूलपाठ की लिपि में है, क्या यह लिप्यन्तरण की जानेवाली लिपि में भी उपलब्ध है?

(3) शिलोलेखों के प्राकृत के रूपों में भिन्नता मुख्यतया भाषागत कारणों से न होकर लिपिगत कारणों से है -

(अ) चूँकी उस समय संयुक्त व्यंजनों के लिखने का पूर्ण विकास नहीं हुआ था। अतः इसमें संयुक्ताक्षरों के प्रयोग कम है; तथापि जहाँ संयुक्ताक्षर के प्रयोग इष्ट था वहाँ पूर्ववर्ती स्वर को ह्रस्व रखा है।

जहाँ उसका लोप इष्ट था, वहाँ पूर्ववर्ती स्वर को ह्रस्व रखा है। जहां उसका लोप इष्ट था, वहां पूर्ववर्ती स्वर के प्राकृत के नियमानुसार दीर्घ कर दिया है हलन्त–अनुनासिकों को सर्वत्र स्वरान्त बना दिया है।

(आ) प्राकृत में 'नो णः सर्वत्रः' के नियमानुसार णत्व का विधान है। चूंकी उस समय 'न' एवं 'ण' दोनों वर्णों के लिए प्रायः एक जैसी ही आकृति का प्रयोग होता था, अतः पाठ सम्पादकों ने उसे 'न' ही पढ़ा जबकि प्राकृत के अनुसार उसे 'ण' पढ़ा जाना चाहिए था।

(इ) इसी क्रम में 'र' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग पूर्वीय प्रभाव की देन है। किन्तु वह प्रभाव नगण्य मात्र है। शौरसेनी की विशेषताओं को कही भी बाधित नहीं करता है। 'र' का 'ल' तो अभिलेखों में प्रयोग मिलता है; परन्तु 'स' का 'श' मागधी–प्राकृत मे होते हुए भी इसका उल्लेख कही नहीं है। इसीकारण शौरसेनी का महत्त्व यहां प्रतिपादित होता है। परन्तु यहां 'ण' का प्रयोग भी बहुलता से मिलता है, इस कारण से हम कह सकते है कि शिलालेखों की भाषा शौरसेनी प्राकृत है तथा क्षेत्रीय–प्रभाव के कारण इनका स्वरूप भिन्न–भिन्न प्रप्त होता है।

(ई) शिलालेखों के पाठ दरबारी विद्वान तैयार करते थे; वे विद्वान् संस्कृतभाषा के अच्छे जानकार थे अपेक्षाकृत प्राकृत के। यही कारण रहा होगा कि पाठ तैयार करते समय संस्कृत निष्ट–शब्दों का पाठों में आना स्वाभाविक हो जाता है।

(उ) साहित्य सृजन का नियम है कि लेखक जब जिस देश में रहता है, वहॉ की प्रचलित भाषा का प्रयोग करता है। इसके उच्चारण भी उसी प्रकार के होते हैं। यही नियम शिलालेखों पर भी लागू होता है। शिलालेखों की मूल भाषा तो शौरसेनी है परन्तु अशोक के शिलालेख सुदुर क्षेत्रों में पाये जाते है; इस कारण ही इसमें क्षेत्रियता की दृष्टि से भेद आया है।

(ऊ) अशोक के शिलालेखों में एक ही शब्द के अलग-अलग रूप प्राप्त होते हैं जैसे- 'मृगः' संस्कृत शब्द का गिरनार शिलालेख में 'मगो' शाहबादगढ़ी में म्रुगो तथा पूर्व में स्थित शिलालेख में 'मिग' रूप प्राप्त होता है। इसी प्रकार के कई उदाहरण भी मिलते हैं।

(ए) ऐसे अनेक रूप शब्दों के प्राप्त होते हैं। अध्ययन करने से इस बात का पता चलता है कि क्षेत्रगत ये भेद मात्र ध्वनियों के है; इनके व्याकरण का कोई मौलिक अन्तर नहीं है।

निष्कर्ष -

ईसापूर्व युगीन शिलालेखों में शैरसेनी-प्राकृत की प्रचुर मात्रा में प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। भले ही उन पर क्षेत्रीय प्रभाव पड़ा हो। चूंकि इनकी लिपि 'प्राचीन ब्राह्मीलिपि' है। अतः वर्णाकृति के साम्य के कारण कई विद्वानों ने इसके संस्कृतनिष्ठ पाठ बना दिये हैं। कहीं-कहीं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निर्मित पाठों में उनकी लिपि के प्रभाव के कारण भी पाठदोष आ गए हैं। जैसे 'न' एवं 'ण' इन दोनों वर्णो के लिए अंग्रेजी में 'छ' का ही प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी पाठ का देवनागरी लिपि में रूपान्तरण करते समय प्रायः सभी विद्वानों ने 'न' का ही प्रयोग किया है। 'ण' की प्रवृत्ति प्रायः लुप्त हो गयी है। जबकि वह मूल शिलालेखों में विद्यमान है। अब ऐसे पाठ दोष वाले पाठों को आधार बनाकर कई आधुनिक विद्वान् हैं। वे न तो प्राचीन ब्राह्मीलिपि के जानकार है और न प्राचीन प्राकृतभाषा के विद्वान् हैं वे कहते है कि "इन शिलालेखों में 'ण' ध्वनि है ही नहीं। ऐसा कथन सर्वथा मिथ्या है।"

इसी प्रकार ईसापूर्व के प्राचीन ग्रन्थों में भी परवर्ती प्रति लिपिकारों एवं कई सम्पादन कला के आधुनिक विशेषज्ञ सम्पादकों की असावधानियों से तथा भाषाज्ञान न होने के कारण से भी मूलपाठों में महाराष्ट्रीकरण आ जाने से इन ग्रन्थों के भाषिक-स्वरूप पर आक्षेप करने लगे हैं। ईसापूर्व युगीन शौरसेनी-साहित्य प्रमुखतः आचार्य कुन्दकुन्द रचित प्राप्त होता है। सवाल यह है कि सुदूर दक्षिण के आचार्य मध्यदेश

की 'शौरसेनी' प्राकृत में साहित्य सृजन कैसे कर सकता है? क्योंकि उस समय दक्षिण में आर्यभाषा का प्रभाव था। इस बारे में कैशितिकी ब्राह्मण में आया यह उल्लेख अत्यंत महत्त्वपूर्ण है "उत्तर में बहुत विद्वत्तापूर्ण वाणी बोली जाती है और शुद्ध वाणी सीखने हेतु लोग उत्तराखंड को आते थे। वहाँ से सीखकर जो आता था उसे सुनने के लिए लोग उत्सुक रहते थे।

आधुनिक समालोचक विद्वान् डॉ. जगदीशचन्द्र जैन लिखते है "मथुरा जैन–आचार्यों की प्रवृत्तियों का प्रमुख केन्द्र रहा है। अतएव उसकी रचनाओं में शौरसेनी आना अति स्वाभाविक है।" इस प्रकार शेष भारत के लोगों का उत्तर की भाषा शौरसेनी के प्रति अगाध आकर्षण, तथा जैन–संघ का दक्षिण भारत में दीर्घप्रवास यह दो मुख्य कारण प्रतीत होते हैं, जिनके फलस्वरूप शौरसेनी प्राकृत उपर्युक्त मध्यदेश के विशालतम क्षेत्र में प्रसारित हो गई। इसी भाषा से परवर्ती अपभ्रंश एवं विविध क्षेत्रीय भाषाओं एवं बोलियों का उद्‌भव और विकास हुआ है।

इस कारण शौरसेनी–प्राकृतभाषा और साहित्य के अध्ययन के बिना हम भारतीय भाषाओं, संस्कृति, इतिहास एवं साहित्य आदि के बारे में प्रामाणिक जानकारी नहीं ले सकते हैं।

सम्राट् अशोक के अभिलेखों का सामाजिक मूल्यांकन

डॉ. रजनीश शुक्ल

भारतवर्ष में अशोक के अभिलेख ही लिखित प्रमाण में मिलते हैं। इससे ही हम भारतवर्ष में प्रचलित लिपियों और भाषाओं के अध्ययन को केन्द्र में रखकर भारतीय लिपिविद्या और प्राचीन भारतीय भाषाओं का अध्ययन करने में अपने को सक्षम पाते हैं। सम्राट् अशोक का इतिहास भारतीय इतिहास का एक उज्ज्वल पृष्ठ है। अशोक के समय में भारत उन्नति के शिखर पर विराजमान था। देश में शांति रहती थी। प्रजा सुखी और समृद्ध रहती थी। अशोक के सम्बन्ध में सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि उसने धर्म के प्रचार के लिए जितना उद्यम किया उतना उद्यम अन्य किसी राजा ने नहीं किया। अशोक एक उत्साही और श्रद्धालु बौद्ध होते हुए भी उसने अपने लेखों के द्वारा किसी विशेष धर्म की शिक्षा जनसामान्य को नहीं दी। अशोक का धर्म बौद्धधर्म नहीं है अपितु वह आर्यो की सामान्य सम्पत्ति है। अशोक ने अपने सभी शिलालेखों में प्रमुखता से यह लिखवाया है कि माता-पिता की सुश्रूषा करना, गुरुजनों का सम्मान करना, दास और भृत्यों के साथ सद्व्यवहार करना, अहिंसा और सत्य का व्रती होना किस धर्म सम्प्रदाय को मान्य नहीं है?

अशोक के अभिलेख ईसा के 250 वर्ष पूर्व से प्राप्त होते हैं। अशोक के बनवाये हुए स्मारकों में उसके पत्थर पर खुदे हुए लेख विशेष महत्व के हैं। अशोक के कुल 30 से अधिक अभिलेख हैं जो चट्टानों, गुफा की दीवारों और स्तंभों पर खुदे मिलते हैं। इन्हीं लेखों से

अशोक के इतिहास का पता चलता है। अभिलेख भारत वर्ष में हिमालय से लेकर मैसूर तक और बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक फैले हुए हैं। अशोक के लेखों की भाषा संस्कृत, लंका के बौद्ध ग्रन्थों की भाषा पालि और कतिपय विद्वान् इसे प्राचीन प्राकृत भी मानते हैं। ये लेख ऐसे स्थलों पर खुदवाये गये थे, जहां लोगों का आवागमन अधिक होता था। पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के दो स्थानों पर चतुर्दश शिलालेख खरोष्ठी अक्षरों में प्राप्त होते हैं। जिनका प्रचार वहां पर था। खरोष्ठी अक्षर अरबी या उर्दू लिपि की तरह दाहिनी ओर से बायीं ओर लिखे जाते हैं और प्राचीन एरेमाइक लिपि से निकले थे। बाकी के अभिलेखों की लिपि ब्राह्मी लिपि में खुदे हुए मिलते हैं। प्राचीन ब्राह्मी लिपि वही है, जिससे देवनागरी तथा उत्तरी और दक्षिणी भारत की वर्तमान लिपियाँ निकली है। जो बायीं और से दायीं ओर लिखी जाती है।

अशोक के लेख के समय के अनुसार सभी लेखों को आठ भागों में बांटा जा सकता है: 1. लघु शिलालेख, 2. भाब्रु शिलालेख, 3. चतुर्दश शिलालेख– शाजबाजगढ़ी, मानसेहरा, कालसी, सोपारा, गिरनार, धौली और जौगढ़ में प्राप्त हैं। चतुर्दश शिलालेखों में अशोक के शासन और धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। सभी शिलालेखों की विषयवस्तु अलग–अलग है। 4. दो कलिंग शिलालेख, 5. तीन गुहालेख, 6. दो तराई स्तंभलेख, 7. सात स्तम्भलेख और 8. तीन लघु स्तंभलेख भी प्राप्त हैं।

इन अभिलेखों में निहित सामाजिक जीवन मूल्यों की कितनी ही सारगर्भित व्याख्या की गयी है। यदि सभी प्राणी अशोक के इन धर्मलेखों को पढ़कर अपने जीवन में उसका पालन करें तो, आज कहीं भी सामाजिक एवं भाषिक असमानता, आतंकवाद जैसी वैश्विक समस्याओं का सामना ही नहीं करना पड़ेगा।

उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार सम्राट् अशोक का जन्म ईसापूर्व 304 में हुआ था। इनके पिता सम्राट बिन्दुसार ने इन्हें 18 वर्ष के आयु में उज्जैन का राज्यपाल बनाकर भेजा था। व्यापक राजकीय एवं

प्रशासनिक अनुभव के बाद ईसापूर्व 274 में 30 वर्ष की आयु में सम्राट् अशोक को राजसिंहासन प्राप्त हुआ था। तथा इनका विधिवत् राज्याभिषेक इसके चार वर्ष बाद ईसापूर्व 270 में हुआ था। तब अशोक की आयु लगभग 34 या 35 वर्ष की थी। इस समय सीमा को ही अर्थात् राज्याभिषेक के वर्ष को ही अशोक ने अपने वर्णनों का केन्द्र-बिन्दु माना है तथा शिलालेखों में उपलब्ध समस्त गणना इसी के आधार पर की गयी है। अतः शिलालेखों में वर्णित किसी भी घटना का सही समय निकालने के लिए राज्याभिषेक का वर्ष 'मील का पत्थर' की भांति बहु उपयोगी है। राज्याभिषेक के बाद आठ वर्ष अशोक ने साम्राज्य विस्तार के लिए बिताए। ईसापूर्व 262 कलिंग-विजय के उपरांत उसका हृदय-परिवर्तन हुआ और उसने राज्य-विस्तार की जगह प्रशासनिक व्यवस्था तथा सामाजिक, राजनैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति की ओर अधिक ध्यान दिया। यह प्रक्रिया लगभग 4 वर्षों तक चिन्तन, मनन, विचार एवं लघु-प्रयोगों के रूप में चला। तदुपरान्त राज्याभिषेक के 12वें वर्ष में (ईसापूर्व 258 से 257) 14 शिलालेखों की ईसापूर्व 259 कलिंग के लिए दो विशेष लेख जारी किये जो व्यापक महत्त्व की जानकारियाँ अभिलेखीय दृष्टिकोण से इन 14 शिलालेखों से मिलता है। गिरनार अभिलेख में अशोक ने प्रशासन व न्याय व्यवस्था के बहुत से क्षेत्रों में नवीन प्रयोग किये हैं। इन प्रयोगों व उससे सम्बन्धित पदाधिकारियों-महामात्रों (छठा शिलालेख) व्रजभूमिकों (13वां शिला अभिलेख), युक्तो, प्रादेशिकों (तीसरा शिला अभिलेख) परिषदों पदाधिकारियों के लिए पंचवर्षीय दौरों व अनुसंधान का भी उल्लेख मिलता है। न्याय व्यवस्था के नये प्रयोगों को भी वह अपने शासनकाल में करता है (5वां शिला अभिलेख)। यह सब कार्य उसने धर्म की अभिवृद्धि के हेतु धर्म पराक्रम के रूप में किये थे। सामाजिक रूप से अशोक के अभिलेखों का मूल्यांकन करते समय वर्ण व्यवस्था समेत अनेक अन्य तत्त्वों की भी चर्चा की गयी है। उसी का क्रमशः निरूपण किया गया है।

अशोक के धर्मलिपियों में ब्राह्मण और श्रमण दोनों के प्रति सम्मान का भाव प्रकट किया है और दान-दक्षिणा द्वारा उन्हें संतुष्ट रखने

की आवश्यकता प्रतिपादित की है। ब्राह्मण श्रमण के अतिरिक्त अशोक की धर्मलिपियों में भिक्षु, भिक्षुणि, निग्रंथ और प्रव्रजित का भी उल्लेख हुआ है। भिक्षु और भिक्षुणि से बौद्ध भिक्षु अभिप्रेत है और निग्रंथ से जैन। प्रव्रजित उन सन्यासियों को कहते थे जिन्होंने वैदिक आश्रम के मर्यादानुसार सन्यास आश्रम में प्रवेश किया हुआ हो। मौर्य युग में बहुत से धार्मिक सम्प्रदाय विद्यमान थे, जिन्हें अशोक की धर्मलिपियों में 'पाषण्ड' कहा गया है। इन पाषण्डो के अनेक प्रकार के साधु होते थे, जो वैदिक प्रव्रजितों के समान ही मनुष्यों की सेवा और धर्मोपदेश में तत्पर रहा करते थे। अशोक की धर्मलिपियों में यद्यपि शूद्रों का कहीं उल्लेख नहीं है, पर दास और भृतक से सम्भवतः समाज के उसी वर्ग को सूचित किया गया है। अशोक अपने अभिलेखों में उनके लिए लिखवाता है कि उनके प्रति सम्यक् व्यवहार किया जाए।

अशोक के अभिलेखों से यह भी जानकारी मिलती है कि वह जादू-टोने के प्रति भी विश्वास व्यक्त किया है। एक अभिलेख में जादू-टोने (अभिचार) से अवशिष्ट लोगों में कार्य करने लिए भी धर्ममहामात्रों की नियुक्ति का उल्लेख किया है। धर्ममहामात्र जहां करावास में बन्द कैदियों और अधिक सन्तान से पीड़ित गृहस्थों में कार्य करते थे, वहां उनका कार्यक्षेत्र ऐसे लोगों में भी था, जो जादू-टोने में विश्वास रखते हों।

नक्षत्र आदि में विश्वास के निर्देश भी अशोक की धर्मलिपियों में विद्यमान है। धौली शिलालेख पर उत्कीर्ण प्रथम प्रतिरिक्त धर्मलिपि में अशोक ने अपने धर्ममहामात्रों को यह आज्ञा दी है कि 'वह (धर्म)लिपि पुष्य नक्षत्र में सुनानी चाहिए, ऐसा करते हुए आप आज्ञा को सम्पादित करने में समर्थ होंगे। यथा **धंम-चल(ना)ये (च) अंला(नि)इयं च लिपी अ(नु)च(ा) तुं(ासं स (ात) विया तिसेन अतं (ला) पि च सोतव्यिा, खने संतं एके(न) पि (सोता)वया हेव(ँ) च (क)लं(त) चघथ संपटिपातयित्(ावे)**[57] विशिष्ट नक्षत्रों के समय में अशोक ने पशुहिंसा का जो निषेध किया था उसका कारण यह

भी था कि उस समय के विश्वासों के अनुसार ये नक्षत्र जनता की दृष्टि में अधिक पवित्र थे।

आधुनिक समय में भारतीय जनता अनेकविध मंगलाचार करती है। ये मंगलाचार प्रायः सन्तान के जन्म, कन्या के विवाह, विपत्ति के समय और किसी प्रियजन के प्रवास के लिए जाने पर किये जाते हैं। शुभ अशुभ में विश्वास मानव समाज में बहुत बद्धमूल है। धर्मलिपियों द्वारा सूचित होता है कि अशोक के समय में भी मंगलाचारों में विश्वास जनता में बद्धमूल थे। पर अशोक इन्हें क्षुद्र और निरर्थक समझता था। वह इन मंगलाचारों के विरूद्ध नहीं था, पर उसका विचार यह था कि ऐसे मंगलाचार करने चाहिए जो कि अल्पफल देने वाले न होकर महाफल देने वाले हों। अशोक की दृष्टि में 'धर्ममंगल' महाफल प्रदान करने वाले होते हैं। इनमें दासों और भृतकों के प्रति समुचित व्यवहार, गुरुजनों का आदर, प्राणियों की अहिंसा और श्रमण-ब्राह्मणों को दान दिया जाता है। इसी प्रकार के अन्य कार्य धर्ममंगल कहलाते हैं। इसलिए पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र परिचित एवं पड़ोसी को भी यह कहना चाहिए कि यह मंगलाचार अच्छा है। इस मंगलचार को तब तक करना चाहिए, जब तक कार्य सिद्ध न हो जाए, क्योंकि इसके अतिरिक्त जो अन्य मंगल हैं वे संदिग्ध हैं। उनसे कार्य सिद्धी हो भी सकती और नहीं भी हो सकती है, वह (इहलौकिक) ही। किंतु धर्ममंगल जो हैं, वे काल से परिछिन्न नहीं हैं। यदि इहलोक में उनसे अभिष्ट सिद्धि न भी हो तब भी परलोक में अनन्त पुण्य होता है।

मंगलचार के विषय में अशोक के विचार चाहे कैसे भी क्यों न हो, पर यह निश्चित है कि उसके शासनकाल में भारत की सर्वसाधरण जनता ने मंगलाचारों का सम्पादन किया करती थी और आज ही की तरह शुभ-अशुभ भावों के साथ-साथ तिथि और नक्षत्रों पर भी पूर्ण विश्वास करती थी।

वर्तमान सन्दर्भों में अशोक के अभिलेख में वैसे तो बहुत ही विचारणीय बिन्दु है, जो कि सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से

महत्वपूर्ण है, लेकिन उनमें से भी वर्तमान सन्दर्भों में इस अभिलेख के मुख्य रूप से क्या उपयोगिता है इसके लिए कतिपय विचारणीय बिन्दु निम्नप्रकार से है :-

(1) धार्मिक पूजा आदि अनुष्ठानों में जीव हत्या पर निषेधः 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति- (निरुक्त अ. 3 पाद-7) 'यज्ञार्था पश्वः सृष्टाः' (मनुस्मृति)

इत्यादि वाक्यों से ऐसी हिंसक वैदिक यज्ञ परम्परा की स्पष्ट प्रमाण मिलता है। इसके अनुसार यज्ञ कार्यों में पशुओं की बलि देना अनिवार्य अंश माना जाता था। यज्ञ पूजा आदि का कार्य होने से वैदिक पुजारी आदि उस क्रिया को हिंसा जैसी पापसूचक क्रिया का प्रयोग करने से ऐतराज करते थे, क्योंकि वे उसे पुण्य कार्य मानते थे। निर्देशपरक कार्यों में यज्ञादि धार्मिक-अनुष्ठानों में जीवहिंसा का निषेध प्रमुख है। वह लिखता है **'हिद नो कि(ं) च जिवे अर(भितु प्)रयुहोतवे'**[58] पहले मेरे रसोईघर में भोजनार्थ रोज सैकड़ो हजारों प्राणी मारे जाते थे; किन्तु इस धर्मलिपि के लिखाये जाते समय अर्थात् राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष में ऐसे प्राणियों की संख्या अत्यधिक सीमित कर दिये गये हैं। मात्र दो मोर और एक मृग मारे जाते हैं। उनमें भी मृग प्रतिदिन मारा जाना निश्चित नहीं है। साथ ही वह अपना यह भी संकल्प व्यक्त करता है कि बाद में ये तीन प्राणी भी भोजन के लिए नहीं मारे जायेंगे। यद्यपि अशोक के युग में खाने-पीने एवं आमोद-प्रमोद आदि के निमित्त भी पशु हिंसा होती थी। जब यह हिंसा धार्मिक क्षेत्रों में प्रवेश पा गया तो **'अहिंसा परमो धर्मः'** की चिरन्तन भारतीय मान्यता के रक्षणार्थ सम्राट अशोक ने धर्म के नाम पर होने वाली जीव हत्या का निषेध किया। अशोक कालीन धर्म का स्वरूप अभी भी समाज में अपने प्रतिष्ठा को साथ लिए जीवित है जिसको परिमार्जित एवं संशोधित करने में **'अहिंसा परमो धर्मः'** के पोषक विचार वाले सतत प्रयत्नशील हैं। ये वर्तमान समाज में धर्म कार्यों के अन्दर होने वाले जीव हत्या को पूर्णतया रोकने के लिए अनेकों प्रयत्न करते रहे हैं। जिससे हम यह कह

सकते हैं कि यह सभी न केवल अशोक के उस भाव से अनुप्राणित है। अपितु इस भाव के साथ अशोक को समाज में उसी रूप में जीवित रखना चाहते हैं।

(2) प्रदर्शन की दृष्टि से होने वाले आयोजनों (समाज) का निषेध :

'समाज' एक प्रकार का सामूहिक उत्सव या सम्मेलन था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जिस सन्दर्भ में इस शब्द का प्रयोग किया गया है, उससे इस पर पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस शब्द का प्रयोग निम्नाकिंत सन्दर्भों में हुआ है, **'यात्रा-समाजोत्सव-प्रवहणानि, उत्सव-समाज-यात्राषु-समाजाभ्यां, समाजे दैवल-प्रैत- कार्योत्सव-समाजेषु, देश-दैवतसमाजोत्सव-विहारेषु। (** अर्थशास्त्र-2.21, 2.25, 5.2, 13, 3, 5)।

इससे स्पष्ट है कि समाज एक प्रकार का विलास और आमोद-प्रमोदपूर्ण उत्सव था। जिसमें गाना, बजाना, नृत्य, मांस, मदिरा आदि का प्रयोग उन्मुक्त रूप से होता था। डॉ. दत्तात्रेय रामकृष्ण भंडारकर ने महाभारत, हरिवंश और बौद्ध साहित्य का उल्लेख करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि प्राचीन भारत में दो प्रकार का समाज होता था। एक प्रकार के समाज में शुद्ध मनोरंजन होते थे, परन्तु दूसरे प्रकार में मांस मदिरा आदि भी चलता था। दूसरे प्रकार के समाज को अशोक ने बन्द कर दिया था। प्रथम प्रकार के समाज में परिवर्तन-परिवर्धन करके अशोक ने धर्म का माध्यम बनाया। अशोक के 'गिरनार अभिलेख' में सामाजिक सुधार के जो बिन्दु दिये गये हैं, उनमें कोई साम्प्रदायिक दृष्टि नहीं हैं, अपितु प्रणीमात्र का हित प्रधान है। प्रथम अभिलेख में अशोक लिखता है कि **'न च समाजो कतव्यो बहुकं हि दोसं समाजम्हि पसति देवनांपियो पियदसि राजा'** अर्थात् नहीं 'समाज' का आयोजन करना चाहिये, क्योंकि अशोक की दृष्टि में समाजों के आयोजनों में बहुत प्रकार के दोष होते हैं। किन्तु अशोक का दृष्टिकोण कोरा प्रतिक्रियावादी नहीं था। सामाजिक बुराइयों के निषेध के साथ उसने

अपना रचनात्मक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया क्योंकि सामाजिक मानोविज्ञान के अनुसार मनुष्य को पारस्परिक मेल–मिलाप, सौहार्द एवं रचनात्मक संगठन की दृष्टि से ऐसे उत्सव एवं समाजों में आयी हुई विकृतियों को दूरकर इनका आदर्श रीति से आयोजन करने की परम्परा प्रवर्तित की, जिसकी सूचना वह शिलालेख में इन शब्दों में देता है **'अस्ति पि तु एक चा समाजा साधुमता देवानंपियस पियदसिनो राजो।'** आमोद–प्रमोद, भोग–विलास का सार्वजनिक आयोजन, समाजों के कारण हिंसा, सुरापान तथा भेदभाव आदि के कारण इन पर नियंत्रण लगे इसके लिए **'न च समाजो कर्तव्यों'** के दोषों को ध्यान में रखकर उसने इन आयोजनों (समाज) का निषेध किया था।

(3) चिकित्सा के क्षेत्र में मनुष्य चिकित्सा और पशु चिकित्सा के लिए किये गये कार्य :

मेरे द्वार मनुष्यों एवं पशुओं की चिकित्सा के लिये कार्य शुरु किये गये हैं। जिन क्षेत्र में जिस प्रकार की औषधियों की कमी है, न केवल वे औषधियाँ अन्य क्षेत्रों से वहाँ मंगवायी गयी है अपितु उनकी पैदावार भी वहाँ शुरु की गयी है। इस निमित्त जड़ी–बूटियों एवं औषधीय गुणों के फलों के वृक्ष एवं पौधें मंगवाकर उन क्षेत्रों में लगवाये गये है। रास्तों में जलापूर्ति के लिए कुएँ खुदवाये गये हैं। विश्राम के लिए वृक्षारोपण भी किया गया है। **सर्वत्रदेवानां पियस पियदसिनो राजो द्वे चिकीछा कता मनुस चिकिछा च पसुचिकीदा च, ओसुढानी च यानि मनुसोपगानि च यत–यत रास्ति सर्वत्रा हारापितानी च रोपापितानि च। मूलानि फलानि च यत–यत नास्ति सर्वत हारापितानि चरोपापितानि च। पंथेसु कूपा च खानापिता वछा च रोपापिता परिभोगाय पसु–मनुसानं।'** अपने सम्पूर्ण निर्देशों में अशोक ने आडम्बर का प्रयोग कहीं भी नहीं किया है। जो उसकी स्वयं की कमी थी, उसका भी उसने स्पष्ट किया है। मनुष्यों तथा पुशओं के लिए उपयोगी चिकित्सा का प्रबन्ध अशोक ने अपने शासनकाल में किया था। मनुष्यों और पशुओं के लिए उपयोगी औषधियों के वृक्षों को वहाँ पर लगवाया

जहां-जहां पर वे औषधियाँ नहीं थी। पौधों का वर्गीकरण में यह भी बताया गया है कि दो प्रकार के औषधिय वृक्षों को लगवाया। एक जमीन के अन्दर जिसकी जड़ी-बूटी औषधि के काम आती थी। दूसरे प्रकार के वृक्ष जिनके फल, पुष्प की पत्ते औषधि के रूप में कार्य आते थे। इन सबका विशेष रूप से अनुपलब्ध औषधीय वृक्षों के कृषि आधारित उत्पादन को बढ़ाया था।

(4) लोकहित एवं पर्यावरण की दृष्टि से किये गये उपयोगी कार्य :

राजमार्ग तथा अन्य सभी मार्गों में छायादार वृक्ष लगवाया जिसमें कि मनुष्यों तथा पशुओं को छाया मिले। पर्यावरण की दृष्टि से भी लाभकारी हो। उसने जगह-जगह कूपों का भी निर्माण करवाया जिसमें कि राज्य के सभी प्रजाजन तथा पशु पक्षी आदि सुखपूर्वक रहें।

(5) युक्त, रज्जुक एवं प्रादेशिक आदि अधिकारियों की पंचवर्षीय काल सीमा का निर्धारण :

1. **युक्त** - जिले के राजस्व विभाग के अधिकारी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र (21) और मनुस्मृति (8.34) दोनों में इसका उल्लेख मिलता है। भ्रष्ट युक्तो के सम्बन्ध में अर्थशास्त्र का यह कथन है कि-

मत्स्याः यथान्तस्सलिले चरन्तो ज्ञातुं न शक्या सलिलं पिबन्तः।

युक्तास्तथाकार्य-विधौ नियुक्ताः न शक्या धनमादमानी॥

अर्थात् जिस प्रकार यह नहीं माना जा सकता है कि पानी के नीचे चलती हुई मछली जल पी रही है या नहीं उसी प्रकार यह नहीं जाना जा सकता कि राजकार्य में नियुक्त अधिकारी धन अपहरण कर रहे हैं या नहीं। मनु ने कहा है कि **'नष्ट हुआ जो धन प्राप्त हो वह युक्तों की सुरक्षा में रखा जाए। उनमें से जो चोर (युक्त) हड़पने का प्रयत्न करे उन्हें राज-हस्ति (बड़े हाथी) से मरवा डालना चाहिए।'**

2. **रज्जुक** - भूमि माप करने वाला अधिकारी। रज्जु या रस्सी से भूमि मापी जाती थी अतः यह नाम दिया गया है। भूमि की व्यवसाय करने वाला बड़ा अधिकारी होता था, इसलिए अशोक के शासन में ऐसे लोक कल्याण, न्याय सम्बन्धी आदि कार्य भी उसे सौंपे गये थे। (चतुर्थ स्तंभलेख)। जैन ग्रन्थों के आधार पर व्यूलर ने लिखा है कि रज्जुक लेखक का कार्य करते थे और उच्च अधिकारियों का चुनाव उन्हीं में से होता था। (जेड. डी. जी., जिल्द 40, 70 पृष्ठ 16)।

3. **प्रादेशिक** - एक प्रदेश का शासक प्रादेशिक कहलाता था। वर्तमान में राज्यपाल के समकक्ष। कल्हण की राजतरंगिणी के (4. 126) प्रादेशिकेश्वर शब्द आया है। जिसका अर्थ है प्रदेश का मुख्य अधिकारी। उसने अपने प्रशासनिक अधिकारियों के लिए पांच वर्ष का कार्यकाल निर्धारित किया था। (शिलालेख 3) यह एक अत्यन्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण था। इसका एक सुनिश्चित परिणाम यह था कि अधिकारी अधिक कर्त्तव्यनिष्ठ होते, क्योंकि वे जानते थे कि यदि उन्होंने काम ठीक ढंग से नहीं किया, तो 5 वर्ष बाद उन्हें पुनः नियुक्ति नहीं मिलेगी। आज भी विशिष्ट-दायित्ववाले पदों पर 5 वर्ष अधिक कार्यकाल के लिए नियुक्ति नहीं की जाती है। किन्तु आज जो जल्दी-जल्दी स्थानान्तरण होता है, उसका दुष्परिणाम यह होता है कि उस अधिकारी को उस क्षेत्र की परिस्थितियों के अनुरूप-नीति-निर्धारण करने और उसके गुण-दोष परखने का अवसर नहीं मिल पाता है। इससे कार्यों की गुणवत्ता और प्रभावोत्पादकता निश्चितरूप से प्रभावित होती है। रज्जुक एवं प्रादेशिक अधिकारियों के पंचवर्षीय समय सीमा का निर्धारण प्रशासनिक दौरा होता था। यह तबादला नहीं होता था। वर्तमान समय में भी शासकीय अधिकारियों का कार्यकाल पांच वर्ष का ही होता है। यह संभवतः अशोक के शासनकाल से ही यह काल सीमा निर्धारण की प्रक्रिया चली है।

(6) व्यक्ति समाज एवं राष्ट्रहित में दिये गये उपयोगी निर्देश :

सिगालोवाद सुत्ता ग्रंथ में माता-पिता के प्रति, मित्र और साथियों के प्रति, ब्राह्मणों और श्रमणों के प्रति पांच प्रकार का व्यवहार

करने का निर्देश किया गया है। जैसे - 1. कभी उन्होंने हमारा भरण पोषण किया था, 2. अब मैं उनका भरण पोषण करूँगा, 3. जो कर्त्तव्य उनके हैं उन्हें मैं पूरा करूँगा, 4. मैं कुलवंश की रक्षा करूँगा तथा 5. मैं अपने दाय के योग्य बनूँगा। यह मातरि च पितरि च सुसूषा का ही तात्पर्य है। मित्रों तथा साथियों के लिए भी यह नियम बताया गया है, जैसे दान, शिष्टाचार, परोपकार, उनके साथ अपने जैसा व्यवहार करना और जैसा बोलना वैसा ही करना। पांच प्रकार के ब्राह्मणों और श्रमणों के साथ व्यवहार करना चाहिए जैसे मनसा, वाचा, कर्मणा से मित्रता, उनके लिए दरवाजे सदा खुले रहे और उनकी लौकिक आवश्यकताएं पूरी करें। इन्हीं निर्देशों का पालन करने के लिए अशोक ने बार-बार लिखवाया है। जिसमें सर्वप्रथम स्थविरों की सेवा, माता-पिता की सेवा, मित्रों प्रशंसको एवं रिश्तेदारों को सहयोग देना, ब्राह्मणों को दान देना, श्रमणों को दान देना, अनावश्यक प्राणियों को नहीं पालना, दिखावें के लिए अनावश्यक खर्च नहीं करना तथा आवश्यकता से अधिक धन संग्रह नहीं करना। इसके लिए अपव्ययता, अपभाडंता साधु शब्द का प्रयोग गिरनार अभिलेख में किया गया है।

(7) लोकहित को अपना कर्त्तव्य मानना :

लोकहित के बारे में वह गिरनार के छठे अभिलेख में कहता है कि **कतव्यमते हि में सर्वलोकहित**' अर्थात् मैंने अपना कर्त्तव्य माना है कि जिसमें सभी प्राणियों का हित है। वहीं अपना कर्त्तव्य माना है। बढ़ने वाला व्यक्ति कभी भी संतोष नहीं करता है बल्कि 'तृणा' शब्द संतोष का वाचक नहीं है। सर्वलोक-हित से बढ़कर और कोई अच्छा काम नहीं है। प्राणीमात्र का जो ऋण मेरे ऊपर है उससे मुक्त होऊँ और उनका इस लोक तथा परलोक में हित बढ़े। अशोक यह धर्मलेख भी इसीलिए लिखवाने की बात कहता है। कि वह चिरस्थायी रहे और मेरे पुत्र तथा प्रपौत्र सब लोगों की भलाई के लिए इसी तरह का प्रयत्न करें। अशोक यह भी कहता है कि सर्वलोक का हित उसी के द्वारा सर्वप्रथम शुरु किया गया है। उसने अपने कर्मचारियों को पूरी छूट दे रखी थी, कि

प्रजा की सूचना हमें सभी जगह दी जाय चाहे मैं रनिवास में रहूँ या अपने अन्तःपुर में। अशोक यह भी कहता है कि राजकार्य से संतोष नहीं होता क्योंकि सब लोगों की भलाई करना ही हमने अपना कर्त्तव्य माना है इसलिए हमें प्रजा की सूचना यथाशीघ्र दिया जाय। वर्तमान समय में भी यदि इसी आधार पर सरकार में मुख्य लोग कार्य करें तो सम्भवतः अशोक द्वारा दिये गये सभी आदेश व निर्देश का पालन करके एक सुराज समाज का निर्माण किया जा सकता है।

(8) सर्वधर्म समभाव :

गिरनार के सातवें अभिलेख में वह कहता है कि **'देवानंपियो पियदसि राजा सर्वत इछति सवे पासंडा वसेयु'** अर्थात् अशोक यह चाहता था कि, सभी क्षेत्रों में सभी संप्रदाय के लोग रहे क्योंकि वे सब संयम और आत्मशुद्धि चाहते हैं। परन्तु भिन्न–भिन्न मनुष्य इन बातों का पूरा या कम पालन करते हैं क्योंकि भिन्न–भिन्न मनुष्यों की इच्छा और अनुराग भिन्न–भिन्न होते हैं। मनुष्य कितना भी दाने करें पर यदि उसमें संयम, आत्मशुद्धि न हो तो वह नीच के बराबर है। इतनी घृणा वह इस तरह के लोगों से करता है। एक अन्य जगह वह धर्म का पालन करने के लिए भेरिनाद द्वारा धर्म की घोषणा करवाता है। विमानों, हाथियों, अग्निस्कन्धों आदि दिव्य रूपों के दर्शन करवाता है। इन सबके माध्यम से अपने प्रजा को धर्माचरण करने की भी अनुशंसा करता है। इसी के माध्यम से वह अहिंसा, जीवों की रक्षा, सम्बन्धियो, ब्राह्मणों तथा श्रमणों का आदर, माता–पिता और वृद्धों की सेवा इत्यादि बातों का पालन स्वयं तथा अपने पुत्रोः व प्रपौत्र व सम्बन्धियों को इसका पालन करने का आदेश देता है। दूसरी जगह वह कहता है कि धर्मयात्रा करनी चाहिए, जिसमें ब्राह्मण तथा श्रमण भिक्षुओं के दर्शन किये जाने का भी महत्त्व बतलाता है। इसका पालन करनें के लिए कहता है। वर्तमान सन्दर्भों में यदि यह नीति का पालन किया जाए तो सम्भवतः सर्वधर्म समभाव की स्थापना की जा सकती है।

(9) लौकिक कार्यों में क्षुद्र और निरर्थक मांगलिक कार्यों के स्थान पर कर्त्तव्य पालन को सर्वश्रेष्ठ मंगलकार्य कहना :

गिरनार के नवम अभिलेख में उसने लोकमंगल को दो विभागों में विभाजित कर उनकी समीक्षा की है। प्रथम वर्ग में अनेक प्रकार के रोगों, विवाह, पुत्रोत्त्पती एवं प्रवास पर जाने इत्यादि प्रसंगों में किये जाने वाले लोकमंगल के कार्यों का उल्लेख किया है। हम आज भी देखते है कि अनेक प्रकार के रोगों के सांसारिक परेशानियाँ जैसे कि धनहानि, दुर्घटना, लोकापवाद आदि अनेक प्रकार की घटनाओं के निदान के लिए नजर उतारना, झाड़फूंक करना, गण्डे–ताबीज एवं विविध प्रकार के टोटके करना लोकजीवन में प्रचलित है।

इसी प्रकार विवाह के समय भी कई–कई दिनों तक चलने वाले अनेक प्रकार के आडम्बरपूर्ण कार्य लोकमंगल के रूप में किये जाते हैं। पुत्रोत्पत्ति की कामना एवं पुत्रोत्पत्ति होने पर भी ऐसे कार्य विभिन्न क्षेत्रों में बहुरूपों में प्रचलित है। लम्बे प्रवास पर जाते समय भी अनेक प्रकार के टोटके एवं शकुन, अपशकुनों का विचार किया जाता है। यद्यपि इन कार्यों की अशोक ने सीधे शब्दों में कोई निन्दा नहीं की है, किन्तु इन्हें **उचावचं मंगल'।** कहकर इनके प्रति प्रायः अरुचि का दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है। साथ ही उसने इसका कारण भी बताया है कि ये लोकमंगल के कार्य समय और संसाधन अधिक लेते हैं, किन्तु इनका परिणाम विशेष उपलब्धि जनक नहीं होता है **अपफलु तु खो एतरिसं मंगल'।** दूसरे प्रकार के लोकमंगलों में उसने महिलाओं के द्वारा किये जानेवाले अनेक प्रकार के टोना–टोटका, व्रत–उपवासों एवं आडम्बरों को किया है किन्तु इनकी उसने स्पष्ट निरर्थकता एवं क्षुद्रता घोषित कर उनकी हीनता बता दी है। वह लिखता है कि **एत तु महिलाओं बहुकं च बहुविधं च छुदं च निरथं च मंगल करोते' (**प्रथम अभिलेख पंक्ति 3)। किन्तु इन लोकमंगल की समीक्षा करते हुए भी उसने दो कार्यो को मंगल प्रेरणास्वरूप उल्लिखित किया है। जिसमें प्रथम है कर्त्तव्य मंगल अर्थात् जिसका जो नैतिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं

राष्ट्रिय कर्त्तव्य बनता है, वह अपने उस कर्त्तव्य का विधिपूर्वक पालन करें, इसकी अपने अनिवार्यता को सूचित की है। वह लिखता है **'त कतव्यमेव तु मंगल'।** इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि अशोक कर्त्तव्य–निर्वाह में शिथिलता को कदापि पसंद नहीं करता था। अतः उसके कर्मचारी मुस्तैद एवं कर्त्तव्यनिष्ठ रहें होंगे। यह कर्त्तव्य–मंगल की भावना को आज भी 'Work is Worsip' कार्य करते समय संसाधन अधिक लेते हैं, किन्तु इनका परिणाम विशेष उपलब्धि जनक नहीं होता। किन्तु इसके साथ–साथ धर्ममंगलरूपी एवं अन्य लोकमंगल का अत्यन्त बहुमान के साथ उल्लेख किया है तथा इसके लिए व्यापक प्रेरणा भी प्रदान की है।

वह लिखता है कि अन्य लोकमंगलों की तुलना में धर्ममंगल अधिक श्रेष्ठ फल देने वाला है। **'अयं तु महाफले मंगले च धंममंगले'** उक्त दोनों प्रेरक मंगलों का विशेषण भी उसने अपने नवम शिलालेख में किया है। **'कर्त्तव्य–मंगल'** के रूप में उसने पिता का पुत्र के प्रति, पुत्र का पिता के प्रति, भाई का भाई के प्रति अथवा पति का पत्नी के प्रति तथा सेवक का स्वामी के प्रति, स्वामी का सेवक के प्रति जो श्रेष्ठ हो एवं जिसे करना अनावश्यक हो, इन सबको उसने कर्त्तव्यमंगल के रूप में किया है। इसमें उसने पिता–पुत्रादि के मध्य आत्मीयतापूर्ण संवाद की परम्परा को 'कर्त्तव्य–मंगल' माना है। **'त वतव्यं पिता च पुतेन का भात्रा वा स्वामिकेनवा इदं साधु, इदं कतव्य मंगलं आव तस अथस निस्ठाएनाय।'** (नमव अभिलेख) लोक में अनेक प्रकार के छोटे–बड़े मंगल कार्य किये जाते है, विपत्तियों में भी मंगल कार्य किये जाते है। स्त्रियां बहुत प्रकार के क्षुद्र तथा निरर्थकमंगलकार्य करती है। मंगल कार्य अवश्य करने चाहिए यह कर्त्तव्य है। ऐसा अशोक के गिरनार अभिलेख में कहा गया है।

(10) दासों, नौकरों और चाकरों पर भी समता भाव रखना :

'क्रीतदासों, नौकरों–चाकरों के प्रति समता का व्यहवार करना, गुरुजनों की सेवा करना, प्राणियों की रक्षा के लिए आत्मसंयम का पालन

करना तथा ब्राह्मण श्रमणों को दान देना इत्यादि कार्य, ऐसे ही अन्य कार्य 'धर्म-मंगल' के अन्तर्गत आते हैं। अशोक के अनुसार धर्म यह है कि दासों और सवेकों से अच्छा व्यवहार किया जाय, पिता और माता की श्रेष्ठ सेवा की जाय, मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों तथा श्रमणों को दान दिया जाय, जीवों की हिंसा न की जाय। पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, परिचित और पड़ोसी को भी यह कहना चाहिए कि यह पुण्य कार्य है, इन्हें करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य को इस लोक में भी सुख मिलता है। इससे परलोक के लिए भी अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। **'ततेत दाभतकम्हि सम्यप्रतिपति गुरूनं अपचिति साधु पाणेसु संयमोसाधु बम्हण-समणानं साधु दानं, एवं च अन्य च एतारिसं धंममंगलं नाम।'** इस प्रकार सामाजिक सुधार के अनेक कार्यों का रचनात्मक पक्ष प्रस्तुत करने के साथ-साथ उसने अपने द्वारा कराये गये जन-कल्याणकारी कार्यों का भी परिचय दिया है।

(11) अपने धर्म एवं सम्प्रदाय की प्रसंशा एवं दूसरे के धर्म की निन्दा न हो सके इसके लिए संयम की व्यवस्था :

अशोक ने अपने शासन काल में वाक् संयम की व्यवस्था की थी। जिससे कि लोग अपने धर्म की प्रसंशा तथा दूसरे के धर्म के बारे में कुछ नहीं कहेंगे, अर्थात् दूसरों की निन्दा नहीं करना है। अनावश्यक भी यदि कोई बात आ जाय तो उस निन्दा से लोग क्षुद्र या लघु हो जाते है। लोग किसी भी धर्म की निन्दा न करें बल्कि सभी लोग सभी का उपकार करें। इसका मूल वाणी का संयम कैसे है इस प्रश्न का समाधान है कि लोग अपने धर्म के प्रति अधिक अनुराग रखने के कारण वार्तालाप या चर्चा के अवसर पर स्व सम्प्रदाय का आदर भाव रखना और पर सम्प्रदाय के प्रति निन्दा का भाव प्रकट करते हैं। इसके विपरीत प्रजा को अवसर निकालकर परसम्प्रदाय का भी आदर करना चाहिए। ऐसा करने से अपने सम्प्रदाय की उन्नति और दूसरे के सम्द्राय को भी क्षति पहुँचती है। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है कि दूसरों की निन्दा और अपनी प्रसंशा, सद्गुणों का गोपन और असद् (जो गुण नहीं हैं) गुणों को प्रकट करने

से जीव को नीच गोत्र का बंध होता है। इसलिए एक दूसरे के धर्म को सुनने और सुनाने की इच्छा के विचार से 'समवाय' प्रशंसनीय है। क्योंकि देवताओं के प्रिय सम्राट अशोक चाहता है कि सभी धार्मिक सम्प्रदाय ज्ञान से पूर्ण हों। जो लोग इस या उस धर्म से प्रेम रखते हैं उन्हें बता दिया जाना चाहिए कि 'देवताओं के प्रिय दान या सम्मान ऐसा नहीं मानता जैसा की सब सम्प्रदायों की वृद्धि हो।

इस उद्देश्य से धर्ममहामात्रों, व्रजभूमिकों और अन्य अधिकारी वर्ग की नियुक्ति की है कि अपने सम्प्रदाय की उन्नति और धर्म का प्रकाश फैलता रहे। यही भावना अशोक ने धर्म के माध्यम से तथा वाक्संयम के द्वारा पालन करने के निर्देश से अपने निगरनार अभिलेख के से प्रकट की है।

उपसंहार

वर्तमान सन्दर्भों को ध्यान में रखकर अशोक के अभिलेखों में निहित उपर्युक्त सामाजिक बिन्दुओं पर विचार करने से एक नवीन तथ्य यह प्राप्त होता है कि समाज में शासन, चिकित्सा, संस्कृति, सर्व–धर्म–समभाव वाक्संयम तथा लोकव्यवहार आदि सभी विचारों को स्थापित करने सक एक अभूतपूर्व परिवर्तन वर्तमान समाज में आ सकता है। हमारे देश में अशोक के आदर्श धर्मलेखीय प्रतिमानों को स्थापित किया जाय तो साम्प्रदायिक दंगे, आपसी वैमनस्य, चोरी, वर्गभेद, राष्ट्रव्यापी भ्रष्टाचार को रोकने के लिए अशोक के सिद्धान्त अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

भारत सरकार द्वारा अशोक के अभिलेखों में प्रतिपादित विषयों को ध्यान में रखकर इसके लिए कठोर कानून बनाकर समाज में लागू करें। इन बातों का संवैधानिक रूप से भी महत्त्व दिया जाय। सामाजिक भेद–भाव, आपसी वैमनस्य, विदेशनीति, आपसी भाईचारा, सुसंगठित समाज निर्माण के साथ–साथ राष्ट्र–निर्माण में सम्राट अशोक के अभिलेखों में निहित प्रमुख तत्त्वों की उपयोगिता वर्तमान सन्दर्भों में बहुत ही आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. निरुक्त अध्याय 3 पाद 7.
2. मनुस्मृति।
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2, 21, 2, 25, 5, 2, 13, 3, 5.
4. मनुस्मृति 8, 34.
5. व्यूलर जेड. डी. एम. जी. जिल्द 40, 70 पृष्ठ 16.
6. कल्हण, राजतरंगिणी 4/126.
7. सिगोलवाद सत्तंत पालिसाहित्य।
8. तत्त्वार्थ सूत्र 6/25.
9. डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी, अशोक।
10. डॉ. राजबली पाण्डेय, शिलाअभिलेख।
11. सत्यकेतु विद्यालंकार, मौर्य साम्राज्य का इतिहास।

---

57 जोगड़ अभिलेख 15, 16

58 घ चट्टान लेख शाहबाजगढ़ी 1

सम्राट् अशोक के अभिलेखों में अंकित शैक्षिक तत्त्वों का अनुशीलन

श्रीमती श्वेता बार्ष्णेय

किसी भी साहित्य, संस्कृति और समाज का व्यवस्थित अध्ययन करने के लिए शिलालेख सर्वोत्तम साधन है। ताड़पत्र या कागज पर लिखें हुए साहित्य में संशेधन या परिवर्तन की सम्भावना रहती है जबकि पत्थर या धातु पर खुदे हुए लेख सैकड़ो वर्षों के पश्चात् भी उसी रूप में विद्यमान रहते हैं।

प्राकृत में सबसे प्राचीन शिलालेख प्रियदर्शी सम्राट् अशोक के है। ये शिलालेख ई.पू. 269 में राज्याभिषेक के 12वर्ष पश्चात् उत्कीर्ण कराये गये हैं। इन शिलालेखों की दो लिपियाँ है–ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपि। खरोष्ठी लिपि में शाहबाजगढ़ी और मानसेहरा के शिलालेख मिलते है तथा अवशेष शिलालेख की लिपि ब्राह्मी है।

सम्राट अशोक के शिलालेखों की संख्या अनुमानतः 30 है[59]। जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से प्रस्तुत कर रही हूँ –

1. चतुर्दश धर्मलेख –

शाहबाजगढ़ी (पेशावर जिला) मानसेहरा (हजारा जिला), गिरनार (जूनागढ़), सोपारा (थाना जिला महाराष्ट्र), कालसी (देहरादून, उ.प.) धौली (पुरी जिला), जौगढ़ (जंजाम जिला) और इरागुडी (निजाम रियासत) स्थानों में प्राप्त हुए है।

2. सात स्तम्भ लेख

टोपरा (दिल्ली) मेरठ, कौशाम्बी (इलाहाबाद), रामपुरवा, लौरिया (अरराज), लौरिया (नन्दनगढ़) स्थानों में प्राप्त हुए है।

3. भ्रबु शिलालेख

4. दो लघु शिलालेख -

(क) शिलालेख - सिद्धपुर, जेटिंग रामेश्वर, ब्रह्मगिरि, रूपनाथ (जबलपुर), सहसराय (शाहाबाद), वैराट (जयपुर) मास्की, गवीमठ, पल्लीगुण्डु और इरागुडी में पाया जाता है।

(ख) सिद्धपुर जटिंग रामेश्वर और बह्मगिरी में ही पाया गया है।

5. दो कलिंग अभिलेख - धौली और जौगढ़ में प्राप्त है।

6. दो तराई अभिलेख - लुम्बिनी और निग्लित।

7. तीन लघु स्तम्भ लेख - साँची, कौशाम्बी और सारनाथ में प्राप्त हैं।

8. तीन गुहालेख - बराबर दरीगृह के तीन अभिलेख है।

सम्राट अशोक के इतने अभिलेख प्राप्त होते हैं। लेकिन प्रस्तुत समय में 'गिरनार' शिलालेख में प्राप्त शैक्षिक बिन्दूओं पर प्रकाश डाल रही हूँ। अगामी समय में अशोक के और शिलाालेखों पर भी अपना शोध-आलेख प्रस्तुत करूँगी।

गिरनार शिलालेख में प्राप्त शैक्षिक तत्त्व

'गिरनगर' से 'गिरनार' शब्द बना है, जिसका अर्थ है "पहाड़ो के बीच बसा नगर"। अब यह जूनागढ़ के नाम से जाना जाता है।

आदिम युग से लेकर वर्तमान युग तक के इतिहास का यदि अवलोकन करें तो हम पायेंगे कि शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य की जन्मजात

शक्तियों का विकास होता है, उसके ज्ञान और कला-कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन होता हे। 'शिक्षा' के कारण ही मानव में विचारशीलता, बुद्धिमत्ता, सदाचारत्व आदि गुण देखने को मिलते हैं। शिक्षा के द्वारा ही मानव सभ्य एवं सुसंस्कृत बनता है। सम्राट् अशोक ने अपने 'गिरनार' शिलालेख में निम्न प्रकार की शैक्षिक बातों को बताया है, जो कि मैं इस प्रकार से प्रस्तुत कर रही हूँ।

जीव मैत्री/अहिंसा की शिक्षा

पुरा महानसम्हि देवानंप्रिय पियदसिनो राञो अनुदिवसं बहुनि पाणसतसहसानि आरभिसु सूपाथाय। से अज यदा अद्यं धंमलिपि लिखता ती एव पाणा आरभये सूपाथाय-द्वो मोरा एको मगो सो पि मगो च ध्रुवो। एते पि ती पाणा मछा न आरभिसरे।[60]

अर्थात् प्रियदर्शी राजा की रसोई घर के लिए प्रतिदिन हजारों जीव मारे जाते थें, पर अब जब यह धम्मलिपि लिखवायी गयी रसोई के लिए सिर्फ तीन जीव मारे जो थे अर्थात् दो मोर और एक हिरण। पर वह हिरण भी प्रतिदिन नहीं मारा जाता था। ये तीन जीव भविष्य में नहीं मारे जाऐंगे।

नैतिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार

सर्वत्र देवानप्रिय राञो द्वे चिकीछा कता - मनुचिकिछा च पसुचिकिछा[61]**।**

अथात् देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी ने दो प्रकार की चिकित्सा मनुष्य तथा पशुओं के लिए उपयोगी चिकित्सा का प्रबन्ध किया तथा जहाँ-जहाँ ये उपयोगी औषिधियाँ नहीं थी वहाँ-वहाँ लगवाई गयी। इसी संदर्भ में सम्राट् अशोक कहते है कि -

साधु मातरि च पितरी च सुस्तुसा मित संस्तुत जातीनां बाम्हण समणान साधु दानं प्राणानं दास भतकम्हि सम्यप्रतिपति साधु आनरभो अपव्यकता अपभांडता साधु[62]**।**

अर्थात् माता-पिता की सेवा करना अच्छा है, मित्रों परिचितों और सम्बन्धियों, ब्राह्मणों और श्रमणों के प्रति उदार होना अच्छा है। दासी और सेवकों के साथ शिष्ट व्यवहार करना अच्छा है। जीवों को न मारना तथा थोड़ा व्यय और थोड़ा संचय करना अच्छा है।

धार्मिक/आध्यात्मिक शिक्षा

धर्ममहामात्रों की नियुक्ति - **त मया तैदस-वासाभिसितेन धंममहामाता कता। ते सवपासंडेसु व्यापता धामघिस्टानाय धंमबधिय हिदं सुखये**[63]**।** अर्थात् अभिषेक के 13वें वर्ष में धर्म-महामात्र नियुक्त किये हें। वे सब धार्मिक सम्प्रदायों में धर्म की रक्षा के लिए अभिवृद्धि के लिए, धार्मिक लोगों के हित एवं सुखों की रक्षा के लिए नियुक्त किये गये है।

धर्म यात्राओं की शुरुआत

सो देवानप्रियो पियदसि राजा दसवसीभिसितो संतो अयाय संबोधि। तेनेसा धंमयाता। एतयं होति बाम्हण-समणानं दसणे च दाने च थैरानं दसणे च हिरण पटिविधानो च जनस दस्पनं धमानुसस्टी च धर्मपरिपुछा च तदोपया।[64]

अर्थात् देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी ने अपने अभिषेक के दस वर्ष बाद संबोधि (बोधिवृक्ष) की यात्रा की। इस प्रकार धर्म यात्रा की प्रथा पड़ी। इन धर्मयात्राओं में ब्राह्मणों और श्रमण भिक्षुओं के दर्शन किए जाते है और उन्हें सोना दान दिया जाता है। जनपदवासियों से मिलाना, धर्म सम्बन्धी अनुशासन और प्रश्न करना होता है।

धर्म से उन्नत फल की प्राप्ति

नास्ति एतारिसं दानं यारिसं धंमदांसो.....तथा करू इलोकचस आरधो होति परत च अनतं पुइञ भवति तेन धंमदानेन[65]।

अर्थात् देवताओं का प्रियदर्शी राजा ऐसा कहता है - ऐसा कोई दान नहीं है जैसा धर्म का दान, ऐसी कोई मित्रता नहीं जैसे धम्म के साथ

मित्रता, ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं जैसा धर्म के साथ सम्बन्ध। धर्म यह है कि दासों और सेवकों से अच्छा व्यवहार किया जाय, पिता और माता की श्रेष्ठ सेवा की जाए। यह पुण्य कार्य है सभी मनुष्यों को धर्म करना चाहिए जिससे इसलोक में सुख प्राप्त कर परलोक में उन्नत फल की प्राप्ति हो सके।

अतः अन्त में कहा जा सकता है कि वर्तमान युग में शिक्षा के सिद्धान्तों के अतिरिक्त व्यवहारों में भी परिवर्तन हो रहा है। आज के समय में ज्ञान देना ही महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि यह देखना भी महत्त्वपूर्ण है कि मनुष्य को उस ज्ञान का बोध हुआ है या नहीं और वह उस ज्ञान को व्यवहार में प्रयुक्त कर सकता है या नहीं। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए सम्राट् अशोक ने अपने 'गिरनार' शिलाालेख के माध्यम से नैतिक, आध्यात्मिक एवं जीवनोपयोगी/समाजोपयोगी शिक्षा का आम जनता में प्रचार व प्रसार किया, जिससे वह अपनी प्रजा को बुद्धिमान, शीलवान, विनयी एवं सुसंस्कृत बना सके।

वर्तमान परिस्थितियों में विश्व और राष्ट्र को ऐसे शिलालेखों के अध्ययन की आवश्यकता है क्योंकि वर्तमान समय में भ्रष्टाचार, आतंकवाद, लूट–मार, हत्या इत्यादि बढ़ते जा रहे हैं। सरकार को चाहिए की ऐसे आलेखों के अध्ययन अध्यापन की व्यवस्था की जाए जिससे राष्ट्र/विश्व के चारित्र निर्माण में बड़ा सहयोग मिलेगा तथा सभ्य, विनीत एवं सुसंस्कृत समाज का निर्माण हो सकेगा।

---

59 भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, पृ. 63–64

60 गिरनार शिलालेख/सम्राट् अशोक/प्रथम शिलालेख।

61 गिरनार शिलालेख/सम्राट् अशोक/द्वितीय शिलालेख।

62 गिरनार शिलालेख/सम्राट् अशोक/तृतीय एवं नवम् शिलालेख।

63 गिरनार शिलालेख/सम्राट् अशोक/पंचम शिलालेख।

64 गिरनार शिलालेख/सम्राट् अशोक/आठवां शिलालेख।

65 गिरनार शिलालेख/सम्राट् अशोक/एकादश शिलालेख।

सम्राट् खारवेल अभिलेख का भाषिक वैशिष्ट्य

दिनेश, शोधछात्र

प्राचीन अभिलेखों का अध्ययन मात्र ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं, अपितु सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, दार्शनिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसमें तत्कालीन सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, भौगोलिक परिस्थितियों का वर्णन प्राप्त होता है। इन अभिलेखों में भावपक्ष गरिमापूर्ण होता है। कलापक्ष के रूप में इसके बाह्य कलेवर की दृष्टि से भाषा, लिपि, लेखनशैली, कलात्मकता आदि के साथ-साथ ये अभिलेख तत्कालीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी प्रभावित है।

साहित्य के व्यवस्थित अध्ययन की परम्परा सबसे अधिक अभिलेखों में सुरक्षित है। शिलालेखी साहित्य में किसी भी प्रकार का संशोधन एवं परिवर्तन संभव नहीं है। अतः अभिलेखों का अध्ययन किसी भी भाषा और साहित्य की परम्परा को जानने के लिए नितान्त आवश्यक हैं।[66]

ईसापूर्वयुगीन अभिलेखों में सर्वाधिक अभिलेख सम्राट अशोक के द्वारा लिखवाये गये उपलब्ध होते हैं। ये अभिलेख ई.पू. 261 में राज्याभिषेक के 12 वर्ष पश्चात् गिरनार, कालसी, मानसेहरा आदि स्थानों पर उत्कीर्ण कराये गये हैं। इनकी विशेषता यह है कि इनके द्वारा सम्राट् अशोक ने प्रजा में अहिंसा के प्रति आस्था उत्पन्न करने का प्रयास किया है।[67]

यदि हम इन प्राप्ताभिलेखों में ऐतिहासिक कालक्रम पर दृष्टि डाले तो विशुद्ध रूप से खारवेल ही स्पष्टतया सिद्ध होते हैं। कालक्रम

में अशोक के अभिलेख प्राचीन हैं, परन्तु कालगणना की दृष्टि से खारवेल के अभिलेख महत्वपूर्ण है। खारवेल के अभिलेखों में उनके वंश, काल, विद्या, राजनैतिक, सामाजिक इत्यादि सभी महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर स्पष्टता से प्रकाश डाला है।

ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में कलिंग में चेदिराजवंश को प्रख्यात प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी। महामेघवाहन कलिंग में चेदिराजवंश के प्रतिष्ठाता थे। सभी ऐतिहासिकों ने महामेघवाहन को कलिंग का प्रथम चेदि राजा और खारवेल को तृतीय चेदि माना है। अभिलेख की आद्यपंक्ति में उल्लिखित चेतराज खारवेल के पिता तथा द्वितीय चेदिराज है।[68]

सम्राट् खारवेल का विख्यात वंश चेदि था। चेदि शब्द को वंश के अतिरिक्त 'स्थानवाची' भी माना गया है। डॉ. विजयेन्द्र माथुर ने प्राचीनकाल में बुंदेलखण्ड और उसके आस–पास के क्षेत्र को चेदि प्रदेश कहा है। महाभारत में भी चेदि शब्द प्रदेशवाची ही उल्लेखित मिलता है। महाभारत–युग में राजा शिशुपाल को इस 'चेदि–जनपद' का शासक माना गया है।[69]

'खारवेल' शब्द का अर्थ सम्भवतः समुद्र या समुद्र–वेष्ठित देश है। संस्कृत शब्द 'क्षारवेल' का प्राकृत रूप 'खारवेल' है। यह उल्लेखनीय है कि खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख में सर्वत्र 'क्ष' के स्थान पर 'ख' वर्ण का प्रयोग हुआ है।

खारवेल का एक शिलालेख उड़ीसा के भुवनेश्वर तीर्थ के पास उदयगिरि पर्वत की एक गुफा में खुदा मिला है जो हाथीगुफा के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें सम्राट खारवेल के जीवनवृत्तान्तों का वर्णन है जो 17 पंक्तियों में उद्धृत हैं। भारतवर्ष का सर्वप्रथम उल्लेख इसी अभिलेख की 10वीं पंक्ति में 'भरथवस' (भारतवर्ष) के रूप में मिलता है। इस देश का नाम भारतवर्ष है। इसका पाषाणोत्कीर्ण प्रमाण इसी अभिलेख में है।

इस अभिलेख का अन्वेषण करने वाले मनीषियों की त्रिवेणी में

महापंडित राहुल सांकृत्यायन, डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल एवं डॉ. राखालदास बनर्जी जैसे विद्वान थे। इन्हें सन् 1929 में इस शिलालेखों के विषय में सूचना मिली कि यह शिलालेख ब्राह्मी-लिपि में तथा इसकी भाषा प्राकृत है। तब इन्होंने इस विषय पर अध्ययन किया तथा प्रथम प्रतिलिपि बनायी जिसे डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल जी ने सर्वप्रथम "काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका" में अनुवाद सहित प्रकाशित कराया।

खारवेल के शिलालेख की भाषा

ईसापूर्व प्रथम सदी में खारवेल समकालीन हाथीगुम्फा अभिलेख में ब्राह्मी लिपि है। भाषा का स्तर उन्नत तथा विकसित था। वह कलिंग की मौलिक भाषा है, जिसे ओड्रमागधी प्राकृत के नाम से नामाङ्कित किया है।[70]

भरत के नाट्यशास्त्र में (ई. 1-2 सदी) इस ओड्र प्राकृत को ओड्र विभाषा के नाम से नामित किया गया है। प्राचीन संस्कृति की आलोचना के क्षेत्र में भरत की भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

उनके द्वारा प्रणीत नाट्यशास्त्र में भारतवर्ष चार संस्कृतिक क्षेत्रों में विभाजित है, वे है - आवंती, दाक्षिणात्य, ओड्रमागधी तथा पांचाली।

चतुर्विधा प्रवृतिश्च प्रोक्ता नाट्यप्रयोक्तिभिः।
आवंती दाक्षिणात्या च पांचाली चोड्रमागधी।। (13-17)

अन्यत्र इसी ग्रन्थ में चार के अतिरिक्त भरतमुनि ने पाँच सांस्कृतिक क्षेत्रों का उल्लेख किया है।

आवंती दाक्षिणात्या च तथाचैवोड्रमागधी।
पांचाली मध्यमा चेति विज्ञेयास्तु प्रवृत्तयः।। (6-26)

भरत प्रवृत्ति की व्याख्या के रूप में नाना देश वेश भाषाचार वार्ताः कहते हैं। अलग-अलग क्षेत्रों में वेश-भूषण, भाषा तौर-तरीके आदि के सम्मिलित रूप को "प्रवृत्ति" कहा जाता है।

उपरोक्त उद्धृत में आवंति पश्चिम भारतीय संस्कृति, "दाक्षिणात्य" दक्षिण में द्राविड़ संस्कृति, "मध्यमा" मध्य भारतीय संस्कृति, "पांचाली" उत्तर भारतीय संस्कृति का द्योतक है। ओड्रमागधी संस्कृति की सीमा को भरत ने सुदूर विस्तार कहा है। उत्तर में नेपाल से दक्षिण में कलिंग, पूर्व में ब्रह्मदेश से पश्चिम में वत्सराज तक यह सांस्कृतिक क्षेत्र विस्तृत होकर था।

भरत ने ओड्रप्राकृत की भांति एक उन्नत भाषा को एक ओड्र विभाषा के रूप में अभिहित किया है। उस भाषा को नाट्यशास्त्र में "विभाषा" कहा गया है।

हाथीगुम्फा अभिलेख भाषा की अनेक विशेषताएँ हैं। विद्वानों ने इसमें अंतनिर्हित प्रभावशाली गद्यशैली के कारण समग्र भारतवर्ष के प्राचीन अभिलेखों में विशिष्ट स्थान दिया है। जिनको मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सम्राट खारवेल की भाषा सामान्यतः संस्कृत–निष्ठ शौरसेनी प्राकृत है। जिसमें कतिपय वर्ण–परिवर्तनों में क्षेत्रीय ओड्रमागधी प्राकृत (उडिया) का प्रभाव परिलक्षित होता है। सामान्यतः शौरसेनी प्राकृत में नकार को णकार केवल मंगलाचरण की पंक्तियों में ही हुआ है अन्यत्र नकार ही प्रस्तुत है।

1. इस अभिलेख में 'ऋ' वर्ण के स्थान पर अ, इ और उ वर्ण का परिवर्तन हुआ है। यथा –

   बहसतिमितं < बृहस्पतिमित्रम् पंक्ति – 12, पृ. 10

   पिथुड < पृथुल पंक्ति – 11 पृ. –10

2. ऐ और औ के स्थान पर ए और ओ का परिवर्तन होता है।[71] यथा –

   सेसय < शैशव, पंक्ति –2

   योवराज < यौवराज्यं पंक्ति –2, पृ. –10

3. संयुक्त रेफ का लोप हो जाता है और व्यंजन मात्र शेष रह जाता है।

यथा – बधनेन < वर्धनेन पंक्ति–1, पृ. –9

वसे < वर्षे पंक्ति – 7, पृ. 10

4. प्रायः संयुक्ताक्षरों में पूर्ववर्ती व्यंजन शेष रहता है। उत्तरवर्ती का लोप हो जाता है। यथा –

कीड < क्रीडा, पंक्ति –5, पृ. 10

संपुणं < सम्पूर्णम्, पंक्ति –2, पृ. 10

5. 'गृह' शब्द के स्थान पर 'घर' प्रयोग हुआ है।

यथा – घरिनी < गृहवती, पंक्ति –7, पृ.10

6. वृक्ष शब्द के स्थान पर रुख का प्रयोग हुआ है।

यथा – रुख < वृक्ष (पंक्ति –9, पृ. 11)

7. हाथीगुम्फा अभिलेख में 'ऋ' तथा रेफ की मात्राओं का प्रयोग नहीं हुआ है। केवल दन्त 'स' का ही प्रयोग है। सर्वत्र 'क्ष' स्थान पर 'ख' का प्रयोग हुआ है। अनेकत्र 'ध' ने थ का स्थान ग्रहण किया है। जबकि अभिलेख में कई जगह 'ध' का भी उल्लेख है। अनुस्वार का भरपूर प्रयोग है, पर विसर्ग कही भी नहीं है।

8. इसमें देशीय शब्दों का प्रयोग भी अल्पमात्रा में पाया जाता है। जैसे–

खबीरं (पंक्ति–3) वाटा–पंक्ति–6, पृ. 10 पनाडि पंक्ति– 6

9. कृदंतो का प्रयोग भी सामान्यतः किया है।

यथा - वर्तमानकृदंत पंसतो < पश्यन्, पंक्ति - 16, पृ. 13

अनुभवंतो < अनुभवन्, पंक्ति-16, पृ. 13

सम्बन्धकृदंत-घातापयिता < घातयित्वा (पंक्ति-8, पृ. 14)

भूतकृदंत-परिखिता < परीक्षिता पं. 14, पृ. 12

10. प्रेरणार्थक रूप बनाने के लिये गिरनार अभिलेख के समान धातु में 'पय' प्रत्यय जोड़ा गया है। यथा-

कीडापयति < क्रीडयति, पंक्ति -5, पृ. 10

बंधापयति < बन्धयति पंक्ति-3, पृ. 10

11. अव्यय का प्रयोग अल्पमात्रा में पाया जाता है।

यथा - च (समुच्चयार्थकाव्यय) 7वीं पंक्ति, पृ. -11

12 वाच्य की दृष्टि से कर्तृवाच्च तथा कर्मवाच्च में समानरूप से प्रयोग हुआ है।

कर्तृवाच्च- दसमे च वसे (सतुनं) उपातानं च मणिरतानि उपलभते।, पंक्ति-10, पृ. 11

कर्मवाच्च-खारवेलसिरिना जीवदेहसिरिका परिखिता। पंक्ति-14, पृ. 12

13. इसमें शब्दरूप तथा धातुरूपों का प्रयोग प्राय: संस्कृतनिष्ठ किया गया है।

शब्दरूप -

राजगहं < राजगृहम् पंक्ति-8, पृ. 11

वसे < वर्षे पंक्ति -4, पृ. 10

रतनानि < रत्नानि पंक्ति-10, पृ. 11

धातुरूप

नेयाति-नाययति पंक्ति-12, पृ. 12

ददाति < ददाति पंक्ति-9, पृ. 11

उपलभते < उपलभते पृ. 10, पृ. 11

अतः खारवेल के अभिलेख भाषिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसमें संस्कृतनिष्ठ देशज, कृदंत, अव्यय इत्यादि महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है।

यदि हम प्राकृताभिलेखों से पूर्व नाट्यसाहित्य पर दृष्टि डाले तो आदिरूपककार महाकवि भास के नाटक उपलब्ध होते हैं, जो उस समय की जनसामान्य की प्राकृतभाषा से परिपूर्ण है। उनके नाटकों में शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री इत्यादि प्राकृत भाषाओं का प्रयोग हुआ है। उनका समय ई.पू. चतुर्थशती से खारवेल के अभिलेख तक जो भी उनके प्राकृत से समानता मिलती है उन बिन्दुओं पर प्रकाश डालना चाहूँगा।

भास के नाटकों में भी संस्कृतनिष्ठ प्रयोग हुआ है।

यथा - इच्छामि-इच्छामि स्वप्नवासवदत्तम् पंचमांक, 155 पृ.

गच्छामि-गच्छामि स्वप्नवासवदत्तम् तृतीयांक, 38 पृ.

जाणामि-जानामि चारुदत्तम् प्रथमांक, 41 पृ.

भूतकृदंत-रक्खिदा-रक्षिता प्रथमांक पृ. 41

वर्तमानकृदंत-परिहरन्तो-परिहरन्-चारुदत्तम् द्वितीयोऽङ्कः पृ. 26

अव्यय-च समुच्चयार्थक चारुदत्तम् द्वितीयोऽङ्कः पृ. 26

हि अवधारणार्थकाव्यय चारुदत्तम् द्वितीयोऽङ्कः पृ. 26

इस प्रकार भास के नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत तथा खारवेल के अभिलेख में प्रयुक्त प्राकृत का समानान्तर अध्ययन के उपरान्त निष्कर्ष

यह निकलता है, कि भास के काल में भिन्न–भिन्न क्षेत्रों के पात्रविशेष की भाषा के कारण भिन्न–भिन्न प्राकृत का प्रयोग हुआ है। खारवेल के कालक्रम में शौरसेनी इत्यादि प्राकृत के साथ निजी क्षेत्रीय भाषा (कलिंग की) ओड्रमागधी का प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है। शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग तो संस्कृत निष्ठ ही किया गया है।

खारवेल एक महान प्रतापी एवं प्रजा सेवक सम्राट् था। उसके मन में सर्वधर्म समभाव का श्रेष्ठ गुण मौजूद था। श्रमण एवं ब्राह्मणों को समानतापूर्वक सम्मान करता था। वह एक आस्तिकवादी प्रभावक राजा था। इनके अभिलेख के अध्ययन से समाज में एवं प्रजाजनों में राष्ट्रिय एकात्मकता की भावना जागृत होती है।

अभिलेख से तत्कालीन भाषा एवं लिपि की समग्र जानकारी प्राप्त होती है। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में ऐसे प्राचीनाभिलेखों के अध्ययन से वर्तमान परिपेक्ष्य में कला, स्थापत्य, संस्कृति के उन्नयन के अनेक आयाम उद्घाटित होते हैं। वस्तुतः भाषा एक सम्प्रेषण है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार प्रस्तुत करता है। अभिलेखों में प्रयुक्त प्राकृतभाषा के व्याकरणमूलक शब्दों के गहन अध्ययन से वर्तमान में शोधकार्यरत छात्रों का उत्साहवर्धनपूर्वक ज्ञानवर्धन होगा।

सन्दर्भग्रन्थ

1) खारवेल, सदानन्द अग्रवाल, श्री दिगम्बर जैन समाज, कटक, 1993

2) प्राकृतभाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. नेमिचन्द्रशास्त्री, तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी, 1988

3) स्वप्नवासवदत्तम्, भासकृत, व्या.आ. श्रीशेषराजशर्मा रेग्मी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, सप्तम संस्करण, 1988

4) चारुदत्तम्, भासकृत, व्या. श्री कपिलदेवगिरि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण–1988

5) भासनाटकचक्रम, आ. बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1973

---

66 प्राकृतभाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. नेमिचन्द शास्त्री, पृ. 247

67 खारवेल, सदानन्द अग्रवाल, पृ. 2

68 खारवेल, सदानन्द अग्रवाल, पृ. 4

69 खारवेल, सदानन्द अग्रवाल, पृ. 2

70 खारवेल, सदानन्द अग्रवाल, पृ.

71 प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. नेमिचन्द्रशास्त्री, पृ. 60

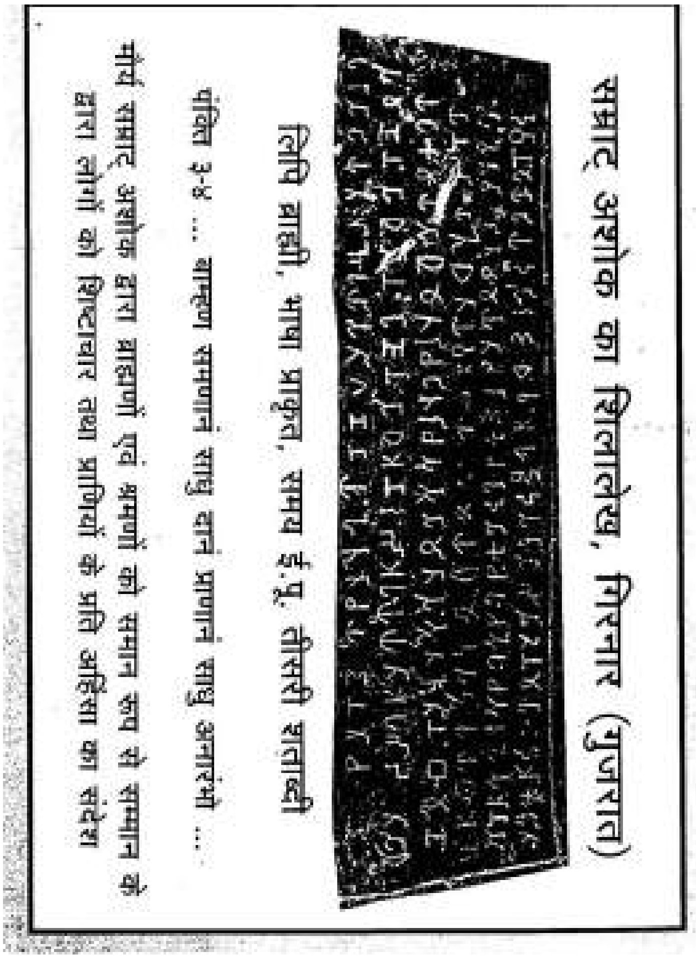

'ब्राह्मीलिपि प्रवेशिका' प्रकाशक–कुन्दकुन्द भारती प्राकृतभाषा शोधसंस्थान नई दिल्ली से सभार।

सम्राट अशोक के मूल अभिलेख

सम्पादक: राधाकुमुद मुखर्जी, मोतीलाल बनारसीदास 2004
हिन्दीअनुवाद: डॉ. शिवस्वरूप सहाय, भारतीय पुरालेखों का अध्ययन
प्र. मोतीलाल बनारसीदास 2008

क. लघु चट्टान लेख

1. (ब्रह्मगिरि, मैसूर)

पंक्ति 1. (स) ु व् (ा) ं णगिरीते अयपुतस महमाताणां च वच (े)ो
न इसिलसि महामाता आरोगियं वतविया हेवं च वतविया[1]
देवाणंपिये[2] आणपयति[3]

2. अधिकानि[4] अढातियानि व् (ा) सानि य हकं......सके[5]
नो तु खो बाढं प्रकंते हुसं
एकं सवछरं[6] सातिरेके तु खो संवछरें[7]

3. यं मया संघे उपयीते[8] बाढं च मे पकंते
इमिना चु कालेन अमिसा समाना मुनिसा जंबुदीपसि

4. मि(स)ा देवेहि[9]
पकमस हि इयं फले
नो हीयं सक्ये महात्पेनेव पापोतवे[10]
कामं तु खो खुदकेन पि

पंक्ति 5. पर्का (म).....णेण[11] विपुले स्वगे[12] सक्ये आराधेतवे[13]
ए (त्)ायठाय इयं सावणे सावापिते[14]

6. ....महात(प)ा[15] च इमं पकमे(यु) ि(त) अंता[16]

च मै[17] जानेयु[18] चिरठितीके च इयं

7. (पक[19])..........

इयं च अठे वढिसिति विपुलं च वढिसिति अवरधिया

दियढियं

8. (व)ि(ढ)सिति[20]

इवं च सावन(े) साव(ा ि)पते व्यूथेन 200 50 6 [21]

2. ब्रह्मगिरि

(पूर्व लेख जारी)

पंक्ति 8. से हेवं देवाणंपिये

पंक्ति 9. आह माता-पितिसु सुसू (ि)सतविये हेमेव गरु(सु) प्राणेसु द्रह्यितव्यं सचं

10. वतवियं से इमे धंम-गुणा पवतितविया

हेमेव अंतेवासिना

11. आचरिये अपचायितविये ञातिकेसु च (क) य...रह[22] पवतितविये

12. एसा पोरा(ण)ा पि(क)ती द(ीघ)ावुसे च एस

हेवं एस कटिविये

13. चपडेन लिखिते लि(पि) करेन[23]

हिन्दी अर्थ

1. सुवर्णगिरि से आर्यपुत्र और महामात्रों की आज्ञा से इषिल के महामात्यों का आरोग्य पूछना चाहिए। देवानंप्रिय की विज्ञप्ति है-

2. ढाई वर्ष से अधिक व्यतीत हुए मैं उपासक था। परन्तु अधिक पराक्रम एक वर्ष तक मैंने नहीं किया। किन्तु एक वर्ष से कुछ अधिक व्यतीत होने पर

3. जब मैं संघ की शरण में आया तब मैंने अधिक पराक्रम किया। इस काल में अमिश्र मनुष्य दवों से मिश्र हुए

4. पराक्रम का यह फल है। केवल बड़े लोग की इसे प्राप्त नहीं कर सकते। स्वेच्छा से निश्चय करने पर छोटा व्यक्ति भी।

5. विपुल पराक्रम से स्वर्ग प्राप्त कर सकता है। इसीलिए यह धर्म विषय (श्रावण) सुनाया गया

6. कि छोटे और बड़े सभी इसके लिए पराक्रम करें। सीमा के लोग भी इसे जानें और यह चिरस्थायी

7. पराक्रम हो। इससे उद्देश्य बढ़ेगा, प्रचुर रूप में बढ़ेगा और पहले की अपेक्षा डेढ़ा बढ़ेगा।

8. यह श्रावण 200 50 6 (256) में सुनाया गया। वहां देवानां पियने कहा -

9. माता-पिता की सुश्रूषा करनी चाहिए। प्राणियों के लिए दृढ़ आदर भाव करना चाहिए। सत्य

10. बोलना चाहिए। इन धर्मगुणों का प्रवर्तन करना चाहिए। इसी प्रकार विद्यार्थियों द्वारा

11. आचार का आदर करना चाहिए। स्वजातियों और कुलों से उचित व्यवहार करना चाहिए।

12. यह पुरातन परम्परा है। इससे दीर्घायुता प्राप्त होती है। इसलिए इसका पालन होना चाहिए।

13. लिपिक पद द्वारा यह लेख तैयार किया गया।

ख. भाब्रू या बैराट सं. 2 चट्टान लेख

पंक्ति1. (ि)प्रयद(ि)स ल(ा)जा मागधे संघं अभिवादे(तू)नं आहा

अप(ा)वाघतं च फासु–विहालतं चा

2. विदिते व(े) भंते आवतके ह(ा)मा बुधसि धंमसि

संघसी ति गालवे चं प्रसादे च

ए केचि भंते

3. भगवता बुधे(न) भासिते सर्वे से सुभासिते वा

ए चु खो भंते हमियाये दिसेया[24] हेवं सघंमे

4. चिल्(ा–ठि)तीके होसती ति अलहामि हकं तं व(ा)तवे[25]

इमानि भंत(ेध)ंमपलियायानि विनय–समुकसे

5. अलिय–वसाणि अनागत–भयानि मुनि–गाथा मोनेय–सूते उप–

तिस–पसिने ए चा लाघुलो –

6. वादे मुसा–वादं अधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते

एतानि भंते धंम–पलियायानि इछामि

7. किति बहुके भिखु-(प)ाये चा[26] भिखुनिये च(ा) अभि-

खिनं सुन(े)यु चा उपधाल्(ा)येयू चा

8. हेवंमेवा उपासका चा उपासिका चा

एतेनि[27] भंते इमं लिखा(प)यामि अभिप्रेत मे

जनंतू ति

हिन्दी अर्थ

1. प्रियदर्शी राजा ने मगध के संघ को अभिवादन कहा। उसके लिए वह बाधाओं का अन्त और सुख की स्थापना चाहता है।

2. भंते (सम्मान्यजन) ! आप लोगों को ज्ञात है कि कितना बुद्धधर्म और संघ के प्रति मेरा आदर और श्रद्धा है। भदन्त ! जो कुछ भी

3. भगवान बुद्ध ने कहा है वह सब सुभाषित है। भदन्त ! मैंने जो कुछ भी धर्म के बारे में देखा है तथा वह

4. जिस प्रकार चिरस्थायी होगा वह मैं। कहता हूँ। भदन्त ! ये धर्म पर्याय हैं - विनय समुकस,

5. अलियवस, अनाअगतभय, मुनिगाथा, मौनेसुत्त, उपतिसपसि और राहुलवाद में

6. मुसावाद के ऊपर जो भगवान बुद्ध द्वारा कहा गया है। भदन्त ! इन धर्म पर्यायों को चाहता हूँ

7. कि बहुत से भिक्षु और भिक्षुणियाँ इन्हें निरन्तर सुने और इनको उपाधारण करें।

8. इसी प्रकार उपासक और उपासिका भी भदन्त ! इसीलिए यह लिखवाता हूँ कि लोग मेरा अभिप्राय जानें।

ग. कलिंग चट्टान लेख 1. (धौली)

पंक्ति 1. (देवान)ं(पि)य्(ास वच)नेन तोसलियं म(हा)माता

(नग)लि (वयो)हालक(ा)

2. (व)तविय[28]

(अं किछि दखा)मि हकं तं इछामि (ि)कं (त)कं-

(मनप)टि(पादय) ेहं

3. दुवालते च आलभेहं

एस च मे मोख्य-मत दुवा(ल एतसि अठ)सि अं

तुफ(ेसु)

4. अनुसथि

तुफे हि बहूसु पान-सहसेसुं आ(यत) प्(ा)न(यं)

(ग)छ(े) म सु मुनिसानं

सवे

5. मुनिसे पज ममा

अथ(ा) पजाये इछामि ह्(ा)क(ँ किति स)वे(न हि)त-

सुखेन हिदलो(किक)-

6. पाललोकिके(न) य(ूजेव) ू ि (त) (तथा........मुनि)सेसु[29] पि (इ)

छामि (ह)क (ँ)

नो च पापुनाथ आव(ा)-ग-

7. (म) ु(क) े (इयं अठे)

(क) `(छ) व्(ा) एक-पुलि (से).....नाति[30] ए(त)ँ से पि देसं
नो सवं
दे(ख)त्(ा हि त) ु(फे) एतं

पंक्ति 8. सुवि(हि)ता पि
ि(न)तिय[31] एक-पुलिसे (पि अथि) य (`) बंधनं वा (प्)ालि-
किलेसं वा पापुनाति
तत होति

9. अकस्मा तेन बधन (ँ)तिक्(ा) अंने च.........हु जने[32]
दं (व)ये दुखीयति[33]
तत इछितविये

10. तुफेहि किति म्(ा)झं पतिपादयेमा ति
इमे(ि)ह चु (जाते)ि(ह)
नो संपटिपजति इसाय आसुलोपेन

11. नि(ठू)लियेन तूलना(य) अनावूतिय आलसियेन (ि)कलमथेन
से इछितविये किति[34] एते

12. (जाता नो) हुवेवु म(म)ा ति
एतस च सव(स) मूले अनासुलोपे अ (तू)ल(ा)ना च
निति(य)ँ ए किलंते सिया

13. (न) ते उग(छ)[35] संचलितविय(`)तु
वं (ट)तं (व)य(`) एतविये वा[36]

हेवंमेव ए द(खेय) त(ु) फाक(ा) तेन वतविये

14. आनंने देखत[37] हेवं च हेव्(ा)ं च (द) ेवानंपियस

अनुसथि

से[38] मह(ा-फ)ले (ए) त्(ा)स (संप)टिपाद

15. महा-अपाये असंपटिपति

(वि)प(ि)टपादयमीने हि एतं नथि स्वगस (आ)ल्घि (=लघि) नो

लाज(ा)र्ला (घ)

पंक्ति 16. दुआ(ह)ले हि इ(म)स के कंम्(ास) म(े) कुते मन(ो)-अतिलेके

स(ँ)पटिपजम(ी)न(े) चु (एतं) स्वग(ं)

17. आलाघ (यि) स(थ मम च आ) ननियं एहथ

इयं च (ि)ल(ि)प (ि)तसन(ख)तेन[39] सो(त)विय(ा)

18. अतं (ल)ा ि(प) च ि (तस) े(न ख)नसि ख (न)ि (स) एकेन पि

सोतविय हेवं च कलंतं तुफे

19. चघथ संप(टि)पाद्(ाि)यतवे

(ए)त(ा)ये अठाये इय (ँ) ि (ल)ि (प) लिखित्(ा) ि (ह)द

एन

20. नगल-वि(य) ो(हा)लका[40] सस्(व्)ातं समयं यूजेवू (ि)त.....

(न)स[41] अकस्मा (प)लिबोधे व

21. (अ)क्(ा)स्मा पलिकि(ल) `(स) ` व नो सिया ति

एताये च अठाये हक(ँ)...मते[42] प्(ा)ंचसु

पंचसु (व)से-

22. सु[43] ि (नखा)म(ि)यसामि ए[44] अखखसे-अ(चं)ड(`) स्(ा)खिना-

लंभे होसति एतं अठं जानितु........(त)था

23. कल(ँ)ति अथ मम अनुसथी इत्

उजेनिते पि चु कुमाले एताये व्(ा) अठाये (नि)खाम(यिस).

24. हेदिसमेव वगं नो च अतिकामयिसति तिंनि वसनि

हेमेव त्(ा)खि (स) लाते पि

(अ)दा अ..........

25. ते महामाता[45] निखमिसंति अनुसयानं तदा अहापयितु

अतने कंमं एतं पि जानिसंति

26. तं पि त(था) कलंति अ(थ) लाजिने अनुसथी ति

हिन्दी अर्थ

1. देवानां प्रिय ने ऐसा कहा- समापा के महामात्र और नगर व्यवहारिकों को ऐसा करना चाहिए। जो कुछ मैं उचित समझता हूँ वह मैं इच्छा करता हूँ और कार्य रूप में उसे प्रतिपादित करता हूँ।

2. और उचित रीति से उसकी प्राप्ति करता हूँ। मेरे मत में आप लोगों के लिए धर्मानुशासन ही मुख्य उपाय है। आप बहुत से लोगों पर नियुक्त हैं इसलिए कि मनुष्यों का प्रेम आप अवश्य ही प्राप्त कर लें। सभी मनुष्य मेरी।

3. संतान हैं। जिस प्रकार मैं अपनी प्रजा के लिए इच्छा करता हूँ कि सभी इस लोक में और परलोक में हित और सुख से युक्त हों उसी प्रकार मैं सभी मुनष्यों के लिए चाहता हूँ। आप इसे नहीं समझ सकते कि कितनी दूर तक

4. इस मन्तव्य को ग्रहण करना चाहिए। कोई व्यक्ति इस बात को समझ सकता है पर पूर्ण रूप से नहीं आंशिक रूप से। आप देखें कि यह बात अच्छी तरह स्थापित है। ऐसा होता है कि

5. अकस्मात् कोई व्यक्ति बन्दी बनाया जाता है और वही उसकी मृत्यु का कारण होता है। इससे दूसरों को कष्ट होता है। ऐसी स्थिति में आपको इच्छा करना चाहिए कि मध्यममार्ग का अनुसरण करें। किन्तु निम्न वासनाओं के होने से यह सम्भव नहीं हो सकता– ईर्ष्या, असंतुलन, निष्ठुरता।

6. त्वरता, अविवेक, आलस्य और थकावट। अतः आपको इच्छा करनी चाहिए कि ये वासनाएँ आपमें न हों। इन सबका मूल है – असंतुलन और अत्वरा। जो नैतिक दृष्टि से शिथिल होता है उसका विकास नहीं हो सकता।

7. किन्तु आप को इस मार्ग पर चलना है, अपना उत्थान करना है और इसे व्यवहार में लाना है। ऐसा आपको देखना है। लोगों का कहना है कि आप लोगों को परस्पर देखना है कि देवानंप्रिय प्रियदर्शी का यही धर्मानुशासन (धर्मोपदेश) है। इसका प्रतिपादन

8. महाफलदायक है तथा असम्पादन महापाप है। इसके सम्पादन न होने से न तो स्वर्ग की प्राप्ति होती है न राजा के कृपा की उपलब्धि। मेरी दृष्टि में इस पर अधिक ध्यान देने से दो परिणाम होंगे। इसके पालन करने से मेरे

9. ऋण से आप मुक्त होंगे और स्वर्ग को प्राप्त करेंगे। प्रत्येक तिष्य नक्षत्र को यह धर्मलिपि सुननी चाहिए। बीच में भी

प्रत्येक क्षण सुनना।

10. चाहिए। इस उद्देश्य के लिए यह धर्मलिपि लिखवाई गई कि महामात्र, नागरक निरन्तर इसका पालन करें जिससे लोगों को निरर्थक कारावास तथा कष्ट न हो: इसी प्रयोजन से मैंने

11. पाँच-पाँच वर्षों में सौम्य, मधुर महामात्रों को दौरे पर भेजा। इसी प्रकार कुमार

2 (जौगड़)

पंक्ति 1. देवानंपिये हेवं आ(ह)

समापायं महमता ल(ा)ज-वचनिक्(ा) वतविया[46]

अं किछि दख(ा)मि हकं तं इ(छ)ामि हकं (िं)कति कं कमन

2. पटिपातयेह दुवा(ल)ते च आलभेहं

एस च मे मोखिय-मत्(ा) दुवाल्(ा) एतस अ(थ) स अ(ं)

त(ु फ) ेसु अनुस(थि)

3. सव-मुनि-सा मे पजा

अथ पजाय (े) इछामि किति मे सवेणा हित-सु(ख) ेन

यु(जे)यू (अ)थ पजाये इछामि किं (ति) म(े) सवेन हित-सु-

4. ख(े)न युजेयू[47] ति हिदलोगिक-पाललोकि(क) े(ण) हेवं मेव

मे इछ सवमुनिसेसु

सिया अंतानं (अ)विजिता

5. नं कि एताका[48] (वा) मे इछ (अ)तेसु पापुनेयु लाजा हेवं

इछ्(।)ति अनु(व)ि (ग)न ह्वे(यू)

6. ममियाये (अ)स्वसेयु च मे सुखं(म) ेव्(।) च लहे य(ू) ममते (न)ो ख (ं)[49] हेवं च पापुनेयु खि(मस)ति ने लाजा[50]

7. ए स्(।)किये खमितवे ममं निमितं च धंम(ँ) चलेय(ू)ति हिदलोग् (ँ) च पललोगं च आलाघयेय(ू) एताये

8. च अठाये हकं तुफेनि अनुसासामि अन(ने एत)केन- (ह)कं तुफेनि अ(नु) सासितु छंद(ंच) वेदि-

9. (त) ु आ मम धिति पतिंना च अचल

स हेवं (क) टू क्(ां)मे (च)लितविये अस्वासि(न)या च् (अ)

ते एन्(।) ते पापुने-

10. यु अ(थ)ा पित (ह) ेवं (न) े लाजा ति अथ (अ) तानं अनुकंप(ि) त

(हे)वं अ(फ) ेनि अनुक(ंप)ति अथा पजा हे-

पंक्ति 11. वं (मय) े लाि (ज)ने

तुफेनि हकं अनुसांसित[51] (छ)ादं (च व) े(दि)त[52]

(आ) म)म घिति पटि(ं)ना चा अचल[53] (सक)ल-

12. देसा-आय(ु)ि (त) के[54] होसामी एत्(।)सि (अ)थ(ि) स

(अ)लं [55] ि(ह) तुफे अस्वास(ना)ये हि(त)-सुखाये (च ते)

स(ँ) हिद-

13. लोगि(क)-प(।)लल(ो)कि(क)ा(य) े

हेवं च कलंतं स्वग (ँ च आ)लाघयिस (थ) मम

च आन (न) ॑यं एस(ा)[56] थ ए-

14. ताये च अ(थ)ाये इ(य)॑ लिपी लि(खत हि)द ए(न म)ह(ा)-

माता सास्वतं समं [57] युजेयू अस्वासनाये च

15. धंम-चल(ना)ये (च) अंता(न)॑

इयं च लिपी अ(नु)च(ा) तुं(म)ासं [58] स(ोत) विया तिसेन

अतं (ला)[59] पि च सोतव्यिा

16. खने संतं एके(न) पि (सोत)वया

हेव(ँ) च (क)लं(त)॑ चघथ संपटिपातयित्(ावे)

हिन्दी अर्थ

1. देवताओं के प्रिय ने ऐसा कहा - समापा के महामात्रों को राजा के संदेश के रूप में कहना चाहिए कि मैं जो कुछ उचित समझता हूँ उसकी इच्छा करता हूँ कि उसे क्रिया द्वारा

2. करूँ और आवश्यक रीति द्वारा प्रारम्भ करूँ। मेरे विचार में इस उद्देश्य का मुख्य उपाय है आप लोगों में धर्म का अनुशासन।

3. सभी मनुष्य मेरी प्रजा (सन्तति)- हैं। जैसे मैं अपनी संतति के लिए इच्छा करता हूँ कि वे सभी हित और सुख से युक्त हों उसी प्रकार मैं सभी मनुष्यों के लिए भी कामना करता हूँ कि वे सभी

4. इहलौकिक और पारलौकिक हित और सुख से युक्त हों। सभी मनुष्यों के लिए यही मेरी इच्छा है। सीमावर्ती लोग जो अविजित हैं उन्हें यह जानने की इच्छा हो सकती है

5. कि हमलोगों के प्रति राजा का क्या विचार है? इसे मेरे सीमा के लोगों तक पहुँचाना चाहिए कि राजा ऐसी इच्छा करते हैं -

आप अनुद्विग्न हों।

6. मुझसे आश्वस्त रहें। मुझसे दुःख नहीं सुख प्राप्त करें। यह सन्देश भी पहुँचाना चाहिए – राजा क्षमा करेंगे जहां तक उन्हें

7. क्षमा करना सम्भव होगा। उनको धर्म का आचरण करना चाहिए। उन्हें इस लोक तथा परलोक में धर्म की प्राप्ति करनी चाहिए।

8. मैं आप लोगां में धर्मोपदेश प्रजा के लिए करता हूँ। मैं इससे उऋण होता हूँ। आप लोगों को उपदेश देकर तथा इसको बतलाकर।

9. जो मेरी प्रतिज्ञा है वह अचल है, ऐसा करके कर्त्तव्य का आचरण करना चाहिए। उन्हें आश्वासन देना चाहिए कि वे समझें

10. कि राजा भी मेरे लिए वैसा ही जैसे पिता। जैसे वे अपने ऊपर कृपा करते हैं। वैसे मेरे ऊपर भी। पिता की जैसी सन्तान होती है।

11. वैसे ही हम राजा के लिए हैं। आप लोगों को उपदेश कर अपनी इच्छा बतावें कि जो मेरा विश्वास है वह अचल है।

12. इस उद्देश्य के लिए सभी प्रादेशिक अधिकारियों को नियुक्त करूँगा। उनके हित और सुख के लिए आश्वासन देने हेतु आप पर्याप्त हैं।

13. इस लोक के कल्याण के लिए आप लोगों को ऐसा करते हुए स्वर्ग की प्राप्ति करनी चाहिए और उससे उऋण होना चाहिए।

14. यह धर्मलिपि इस प्रयोजन के लिए लिखवाई गई है कि प्रजा को आश्वासन देने का कार्य सभी समय धर्ममहामात्र करें और

15. सीमावर्ती लोगों में भी धर्म का प्रचार करें। यह लिपि प्रत्येक चतुर्मास्य में तिष्य नक्षत्र में सुनी जानी चाहिए तथा बीच-बीच में भी सुननी चाहिए।

16. प्रत्येक क्षण भी मनुष्यों को इसे सुनना चाहिए। ऐसा करते हुए कार्य करने की चेष्टा करें।

घ. चौदह चट्टान लेख

१ (शाहबाजगढ़ी)

पंक्ति 1. (अय) ध्रम-दिपि[60] देवनप्रिअस खो लिखपितु

हिद नो कि(ि)च जिवे अर(भितु प्)रयुहोतवे

नो पि च्(ा) सम(ज) कटव

ब(हु)क (हि) दोष स(मय)स्पि

देवणप्रिय(े) प्रिअद्रशि रय्(ा द)खति

2. (अ)स्ति पि चु एकतिअ समये ससु-मते[61]

देवनपिअस प्रिअद्रशिस रञो

पुर[62] महन(स)ि (स देवनि)प्रअस

प्रिअद्रशिस रञो अनुदिवसो बहुनि प्र(ण)-शत-सहसनि

(अरभि)यिस(ु) सुपठये

स(ो इ)दनि[63] यद अय

3. ध्रम-दिपि लिखित तद त्रयो[64] वो प्रण हंञ(ि)त[65]

मजुर[66] दु(ि)व २ म्रुगो १ सो पि भ्रुगो नो ध्रुव(ँ)

एत पि प्रण त्रयो पच नो अरभिशंति

हिन्दी अर्थ

1-3. (1-12) यह धम्म-लिपि देवानंप्रिय (देवताओं में प्रिय) प्रियदर्शी राजा (अशोक) द्वारा लिखवाई गयी। यही कोई भी जीव बलि के लिए नहीं मारा जायेगा। न कोई समाज ही किया जाएगा। बहुत-सा दोष समाज में देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा देखता है। फिर भी निश्चित प्रकार के समाज को ही देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा उचित मानता है। पहले भोजनालय में देवानंप्रिय प्रियदर्शी के प्रत्येक दिन सहस्रों जानवर (प्राणी) सूप (व्यंजन) के लिए मारे जाते थे। पर आज जब यह धर्मलिपि लिखवाई गई तब से तीन ही प्राणी-दो मोर और एक मृग व्यंजन के लिए मारे जाते हैं। इनमें भी मृग का मारना निश्चित नहीं है। पीछे ये भी तीन प्राणी नहीं मारे जायेंगे।

२ (गिरनार)

पंक्ति 1. सर्वत विजितम्हि[67] देवानंप्रियस पियदसिनो राञो

2. एवमपि प्रचंतेसु[68] यथा चोडा पाडा[69] सतियपुतो[70]
केतलपुतो[71] आ तंब-

3. पंणी अंतियको योन-राजा ये वा पि तस अंतिय(ा)कस्(ा)
सामीप्(ां)[72]

4. राजानो सर्वत्र देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो द्वे
चिकीछा कता

5. मनुस-चिकीछा च पसु-चिकीछा च
ओसुढानि च यानि म्(ा)नुसोपगा(ि) न च

6. पसो(प)गानि च यत यत नास्ति सर्वत्रा हारापितानि च

रोप(ा)पितानि[73] च[74]

पंक्ति 7. मूलानि च फलानि च यत यत्र नास्ति सर्वत हारापितानि

च रोप(ा)पितानि च -

8. पंथेसू[75] कूपा[76] च खानापिता व्रछा[77] च रोपापित(ा)

परिभोगाय[78] पसुमनुसानं

हिन्दी अर्थ

1. देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने सर्वत्र विजय करके
2. इस प्रकार प्रत्यन्तों में भी -चोल, पांड्यय, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्र-
3. पर्णी, अन्तियोक, नामक यवन राजा तथा उस अन्तियोक के निकट जो
4. राजा हैं सर्वत्र देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो चिकित्साओं को स्थापित किया-
5. मनुष्य-चिकित्सा तथा पशु-चिकित्सा। और वे औषधियाँ जो मनुष्योपयोगी तथा
6. पशूपयोगी हैं जहां-जहां नहीं हैं सर्वत्र लाई गई और लगाई गई।
7. जहां-जहां मूल तथा फल नहीं हैं सर्वत्र लाए गए तथा लगाए गए
8. मार्गों में मनुष्यों तथा पशुओं के लिए कूएँ खुदवाए गए तथा वृक्ष लगवाए गए।

३ (गिरनार)

पंक्ति 1. देवानांपियो पियदसि र(ा)जा एवं आह

द्बादस-वासा-भिसितेन मया इदं आञ्(ा)पितं

2. सर्वत विजिते मम युता च राजूके च प्रादेसिक च

पंचसु पंचसु वासेसु अनुसं-

3. य(ा)न(ँ) ि(न)यातु[79] एतायेव अथाय इमाय धंमानुसस्टिय

यथ अञा-

4. य पि कंमाय्(ा)

(स)ाधु मातरि च पितरि चं सुस्रूसा मित्र-संस्तुत-

ञातीनं बाम्हण-

5. समणानं साध(ु द)ानं प्राणानं [80] साधु अनारंभो

अप-व्ययता अप-भाडता[81] साधु

6. परिसा पि युते आञपयिसति गणनायं हेतुवो च व्यंजनतो च

हिन्दी अर्थ

1. देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा।

2. गद्दी पर आसीन होने के बारह वर्ष बाद निम्न आदेश दिया गया।

3. मेरे सम्पूर्ण राज्य में युक्त, राजुक, प्रादेशिक अपने-अपने क्षेत्र में प्रत्येक पांचवें वर्ष यात्रा (अनुसंयान) के लिए निकलें और धम्म के निम्न निर्देशों का प्रचार करें और अन्य राज्य सम्बन्धी कार्य करें।

4-5. माता-पिता की सेवा (आज्ञापालन) सर्वोचित (साधु) है। मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों और श्रमणों के प्रति सद्भाव सर्वोचित है। प्राणियों की हत्या से विरत होना सर्वोचित है। व्यय तथा संग्रह में कमी करना सर्वोचित है।

6. राज्य परिषद राज्याधिकारियों को आदेशित करें कि वे इन आदेशों का शब्दानुसार और भावानुसार पालन करें।

४ (गिरनार)

पंक्ति 1. अतिकातं अंत्(ा)रं बहूनि वास-सतानि वधितो एव प्राणा-
रंभो विहिंसा च भूतानं ञातीसु

2. अस्(ा)प्रतिपती ब्रा(म्)हण-स्रमणानं [82] असंप्रतीपती
त अज देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो

3. धंम-चरणेन (भे)री-घोसो अहो धंम-घोसो विमान-
दर्सणा च हस्ति-द(स)णा च

पंक्ति 4. अगि-ख(ा)ंधानि[83] च (अ)ञानि च दिव्यानि रूपानि दसयित्पा जनं
यारिसे बहूहि व(ास)-सतेहि

5. न भूत-पुवे तारिसे अज वढिते देवानंप्रियस प्रिय-
दसिनो राञो धंमानुसस्टिया अनारं-

6. (भ)ो प्राणानं अविहीसा भूतानं ञातीनं संपटिपती
ब्रम्हण-समणानं [84] संपटिपती मातरि पितरि

7. (स)ुस्र ुसा थैर[85]-सुस्रु ुसा
एस अञे च बहुविधे ध)ंम-चरणे व(ढि)ते
वढयिसति चेव देवानंप्रियो

8. (प्रि)य(द)सि राजा धंम-(च)रणं इदं

पुत्रा च (प)ोत्रा च प्रपोत्रा[86] च देवानंप्रियस

प्रियदसिनो राञो

9. (प्र)वधयिसति इदं (ध)ंम–चरणं आव सवट–

कपा[87] धंमम्हि सीलम्हि तिस्टम्तो (ध)ंमं अनुसा–सिसंति

10. (ए)स हि सेस्टे[88] कंमे य धंमानुसासनं

धंम–चरणे पि न (भव)वति असीलसा

(त)इमम्हि अथम्हि

11. (व)धी च अहीनी च साधु

ए(त)ाय अथाय इद(ं) लेखापित[89] इमस अथ(स) व्(ा)धि

युजंतु हीनि च्(ा)

12. (नो) लोचेतव्या[90]

द्बादस–वासाभिसितेन देवान्(ा)प्रियेन प्रियदसिना

राञ्(ा) इदं लेखापितं [91]

हिन्दी अर्थ

1. अतीत में सैकड़ो वर्षो से पशुओं का वध, जीवधारियों के प्रति निर्दयता तथा श्रमण और ब्राह्मणों के प्रति असम्मान बढ़ता रहा है।

2. किन्तु अब देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी द्वारा धम्म के प्रसार के कारण युद्धभेरी के स्थान पर धम्मघोष सुना जाता है तथा जनता में प्रदर्शित किया जाता है विमान, रथ, हाथी, अग्नि, ज्योति तथा दिव्यरूप।

3. देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी के धम्म के प्रचार के कारण जो सैकड़ों वर्षो से नहीं देखा जाता था अब वह देखा जाता है कि

लोगों में पशुवध का निषेध, जीवधारियों के प्रति निर्दयता का अभाव, सम्बन्धियों के प्रति श्रद्धा, ब्राह्मण और श्रमणों के प्रति आदर तथा माता–पिता के प्रति कर्त्तव्यपराणयता जाग्रत हो गई है।

4. इस रीति से तथा अनेक रीतियों से धम्म का प्रचलन विकसित हुआ है। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी सदा धर्म के चलन को विकसित करेंगे तथा देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी के पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र धम्म के विकास में सदा योगदान देंगे इस कल्प के अन्त तक वे स्वयं धम्म का अनुसरण करेंगे, आचार का पालन करेंगे तथा लोगों को धम्म का उपदेश देंगे और सदाचार का भी।

5. यह अत्यन्त गौरवपूर्ण कार्य है – धम्म का उपदेश देना। जो सच्चरित्र से रहित है वह धर्माचरण नहीं कर सकता। धर्म का विकास सदा गौरवपूर्ण (साधु) है, इसकी उपेक्षा नहीं। इसी उद्देश्य से यह लेख लिखा गया है।

6. कि लोग सम्मिलित रूप से धर्म के विकास में अपने को समर्पित करें इसके ह्रास में नहीं यह आलेख देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी ने राज्यारोहण के बारह वर्ष बाद खुदवाया है।

5. (मानसेहरा)

पंक्ति 1. दे(वनं)प्रियेन प्रियद्रशि रज एव(ं) अह

कलण(ं) दुकर(ं)

ये अदिकरे कयणस से दुकरं करोति

तं मय बहु

(क)अयणे (क)टे

(त)ं म(अ) पुत्र (च)

2. नतर(ं) च पर च त्(ं)न ये अपतिये[92] मे (अ)व-(क)पं
तथ अनुवटीशति से सुकट क(ष)ति
ये (चु) अत्र देश पि हपेशति[93] से दुकटं कषति[94]

3. पपे हि नम सुपदरवे[95]
स(ं) अतिक्रत(ं) अ (ं)तर(ं) न भुत प्रुव ध्रम-
(म)हमत्र नम
से त्रेडष-व(ष)भिसितेन मय ध्रम-महमत्र कट
ते
सव्र-प(ष)डेष

4. वपुट ध्रमाधिथ(न)ये च ध्रम-वध्रिय हिद-
सुखये च ध्रम-युतस योन-कंबोज-गधरन[96]
रठिक-पितिनिकन[97] ये व पि अञे अपरत[98] भटमये -

5. षु ब्रमणिभ्येषु अनथेषु वुध्रेषु[99] हिद-सु(खये)
ध्रम-युत-अपलिबोधये[100] विय(प) ुट ते
बधन-बध(स) पटिवि(धनय) ं अपलिबोधये
मोक्षय(ं) (च इयं)

पंक्ति 6. अनुबध प्रज[101] (ि)त व कट्रभिकर ति व महलके[102]
ति व वियप्रट ते
हिद[103] बहिरेषु च नगरेषु सव्रेसु[104] (ओ)रोधनेसु[105]
भतन[106] च स्पस(ु)न[107] (च)

7. ये व पि अञे ञतिके सव्रत्र वियपट

(ए) इयं ध्रम-निशितो[108] तो व ध्रमघिथने ति व

दन-संयुते ति सव्रत्र विजितसि[109] मअ ध्रम-युतसि

वपुट (ते)

8. ध्रम-महमत्र

एतेय अथये अयि ध्रम-दिपि[110] लिखित[111] चिर-थितिक[112] होतु

तथ च मे

प्रज अनुवटतु

हिन्दी अर्थ

1. देवताओं के प्रिय प्रियद्रर्शी राजा ने ऐसा कहा। कल्याण दुष्कर है। जो कल्याण करना आरम्भ करता है वह दुष्कर कार्य करता है। इसलिए मेरे द्वारा बहुत कल्याण किया गया है। मेरे पुत्र,

2. पौत्र तथा उसके बाद जो इस प्रकार कल्प-पर्यन्त मेरा अनुसरण करेंगे वे ठीक करेंगे। जो इसके एक भाग का भी विरोध करेगा वह बुरा (दुष्कृत्य) करेगा।

3. क्योंकि पाप अत्यन्त सरलता से प्रसारित होने वाला है। बहुत समय व्यतीत हुआ, अतीत में धर्ममहामात्र न थे। पर अपने राज्याभिषेक के तेरहवें वर्ष मैंने धर्ममाहामात्रों को नियुक्त किया। वे सभी धार्मिक सम्प्रदायों में

4. धर्मरक्षा तथा अभिवद्धि के लिए, लोगों के हित और सुख के लिए तथा धार्मिक यवनों, कम्बोजों, गांधारों तथा राष्ट्रिकों पिटैनिकों तथा अन्य अपरान्त (पश्चिमी सीमाप्रान्तों) भतकों तथा आर्यों, ब्राह्मणों, वैश्यों, अनाथों, वद्धों में उनके हित-सुख

के लिए और धर्मयुक्तों में लोभ से उनकी मुक्ति के लिए व्याप्त है।

5.–8. बन्धन बद्ध (बन्दी कैदी) को सहायता, अपरिबाधा और मुक्ति के लिए भी बाल–बच्चों वालों, जादू–टोना से आविष्ट लोगों और बड़े लोगों में वे व्याप्त हैं। यहां (पाटलिपुत्र) और बाहर के नगरों में, सब अवरोधनों में, भाइयों–बहनों और अन्य जाति के लोगों में वे सर्वत्र व्याप्त हैं। मेरे राज्य में सर्वत्र धर्म महामात्र धर्मयुक्तों की (सहायता के लिए नियुक्त) हैं जिससे धर्म के प्रति श्रद्धा, धर्म की स्थापना, अथवा दान का विभाजन हो। इस प्रयोजन के लिए यह धर्मलिपि अंकित कराई गई जिससे कि वह चिरस्थायी हो और मेरी प्रजा इसका अनुसरण करे।

6. (गिरनार)

पंक्ति 1. (देवा).........[113] ि (स) राजा एवं आह

अतिक्रात्(ा)ं अंतर (ं)

2. न भूत–प्रु(व्)[114] .(स्).(व्)...(ल्).[115] अथ–कंमे व पटि–

वेदना वा

त मया एवं कटं सवर विवसेतवा(य) तिपंक्ति

3. स्(ा)वे काले भुंज्(ा)मानस[116] मे[117] ओरोधनम्हि गभागा–

रम्हि वचम्हि व

4. विनीतम्हि च उयानेसु च सवत्र पटिवेदका स्टिता अथे मे

(ज)नस

5. पटिवेदेथ इति[118]

सर्वत्र च जनस अथे करोमि

य च किंचि मुखतो

6. आञपयामि स्वयं [119] दापकं वा स्रावापकं [120] वा य वा

पुन महामात्रेसु

7. आचायि(के)[121] अरोपितं भवति[122] ताय अथाय विवादो निझती

व्(ा स्)ांतो परिसायं

8. आनंतरं[123] प(ि)टवेदेत(व्)यं मे[124] स(ं)वत्र सर्वे

काले

एवं मया आञपितं[125]

नास्ति हि मे तो(स)ो

9. उस्टानम्हि अथ-संतीरणाय व

कतव्य-मते हि मे स(र्व) लोक-हितं

10. तस च पुन एस मूले उस्टानं च अथसंतीरणा च

नास्ति हि कमंतरं

11. सर्व-लोक-हितत्पा[126]

य च किंचि पराक्रमामि अहं किंति भूतानं

आनंणं गछेयं [127]

पंक्ति 12. इध च नानि[128] सुखापयामि परत्रा च स्वगं[129] आराध-

यंतु त[130]

एताय अथाय

13. अयं ध(ं)म-लिपी लेखपिता[131] किंति चिरं तिस्टेय इति[132]

तथा च मे पुत्रा पोता च प्रपोत्रा च

14. अनुवतरं सव–लोक–हिताय

दुकरं (त) ु इदं अञत्र अगेन पराक्रमेन

हिन्दी अर्थ

1.–3. देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा – बहुत समय व्यतीत हुआ अतीत में सब समय राजा को आवश्यक कर्म अथवा कार्य की सूचना नहीं होती थी। अतः मैंने ऐसा किया कि सब समय चाहे मैं भोजन करता रहूँ, अन्तःपुर में रहूँ, शयनगृह में रहूँ, पशुशाला में रहूँ, पालकी में रहूँ या

4.–6. उद्यान में रहूँ सर्वत्र प्रतिवेदक मुझसे जनता के कार्य की प्रतिवेदना करें। मैं सर्वत्र जनता का कार्य करूँगा। जो कुछ मैं मौखिक आज्ञा देता हूँ स्वयं दान या विज्ञप्ति के सम्बन्ध में अथवा कोई आवश्यक कार्य महामात्रों को

7.–9. सौंप दूँ और इसके बारे में परिषद में विवाद खड़ा हो अथवा पुनर्विचार के लिए प्रस्ताव हो तो अविलम्ब मुझे सर्वत्र और सब काल में प्रतिवेदन मिलना चहिए। इस प्रकार मैंने आज्ञा दी है। मुझे उत्थान और कार्य सम्पादन में संतोष नहीं है। सर्वलोक हित–मेरा कर्तव्य है और मेरा मत है।

10–14 उसका मूल है उत्थान और कार्य सम्पादन। सर्व लोक हित से दूसरा कोई बड़ा कर्म नहीं है। जो कुछ भी प्रराक्रम मैं करता हूँ वह इसलिए कि जीवधारियों के ऋण से मुक्त हो जाऊँ। मैं उनको इस लोक में सुखी बनाऊँ और वे दूसरे लोक में स्वर्ग प्राप्त कर सके। अतः इस प्रयोजन के लिए यह धम्मलिपि लिखवाई गई जिससे कि यह चिरस्थायी हो तथा मेरे पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र सर्वलोकहित के लिए इसका अनुसरण करें। उत्तम पराक्रम के बिना यह दुष्कर है।

7. (शाहबाजगढ़ी)

पंक्ति 1. देवनंप्रियो प्रियशि[133] रज सवत्र इछति सव्र-

2. (प्)रषंद वसेयु

सवे हि ते सयमे भव-शुधि च इछंति

3. जनो चु उचवुच-छंदो उचवुच-रगो

ते सव्रं व एक-देशं व

4. पि कषंति

विपुले पि चु दने यस नस्ति सयम भव-

5. शुधि किट्रञत दृढ़-भतित निचे पढम्[134]

हिन्दी अर्थ

1-2. देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा सर्वत्र इच्छा करते हैं कि सभी धार्मिक सम्प्रदाय बसें। वे सभी संयम और भावशुद्धि चाहते हैं।

3. किन्तु लोगों के ऊँच-नीच विचार और ऊँच-नीच भाव होते हैं। वे या तो सम्पूर्ण कार्य करेंगे अथवा उसका अंश।

4-5. जो बहुत दान नहीं कर सकता उसमें भी संयम, भावशुद्धि, कृतज्ञता, दृढ़भक्ति नित्य आवश्यक है।

8. (शाहबाजगढ़ी)

पंक्ति 1. अतिकतं अतरं देवनंप्रिय विहर-यत्र नम

निक्रमिषु[135]

अत्र म्र ुगय अञनि च एदिशनि अभिरमनि अभुवसु[136]

सो देवनंप्रियो प्रियद्रशि रज दशवषभिसितो सतं

निक्रमि[137] सबोधि[138]

तेनद ध्रंम-यत्र

अत्र इयं होति श्रमण-ब्रमणानं[139] द्रशने दनं

वुढन(ं)[140] दशन हिरञ-प्(ा)टिविधने च (जन)-

पदस जनस द्रशन ध्रमनुशस्ति ध्रम-प(रि)प(रु)-

छ च ततोपयं

एषे भुय(` र)ति[141] भोति देवनंप्रियस प्रियद्रशिस रञो

भगो अंञि

हिन्दी अर्थ

1. बहुत समय व्यतीत हुआ, राजा लोग विहार यात्रा में जाते थे। इसमें मगया और अन्य इसी प्रकार के
2. आमोद होते थे। किन्तु देवानं प्रिय प्रियदर्शी राजा अपने अभिषेक के दसवें वर्ष बोधगया गये।
3. इससे धर्मयात्रा की प्रथा प्रारम्भ हुई। इसमें यह होता है – ब्राह्मण और श्रमणों का दर्शन तथा दान, वृद्धों का दर्शन और
4. धन से उनके पोषण की व्यवस्था, जनपद के लोगों का दर्शन, धर्म का आदेश और धर्म के सम्बन्ध में परिप्रश्न।
5. देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा के शासन के दूसरे भाग में यह प्रचुर रति होती है।

9. (कालसी)

पंक्ति 1. देवानंपिये पिय(ा)दर्(स) ला(जा) आहा

जन(` ) उच(ाव) ुचं मंगलं क(ल) `ति आबाधसि अव(ाह)सि

विवाहसि पजोपदाने[142] पवाससि ए(ता)ये अंनाये चा एदिसाये

जने बहु मगल(ँ) क्(ा)लेति

हेत(च) ु अबक-जनि(यो)[143] बहु चा बहुविधं चा

खुदा[144] (च)ा निलथिया चा मगलं क(ल)ँति

2. से कटवि[145] चेव खो मंगले

अप-फले (च) ु खो (ए)स(े)

(इ)यं चु खो-मह(ा)-फ(ा)ले ये धंम-मगले

हे(ता)[146] इयं दास-भटकसि स्(ा)म्यापटिप(ा)ति गुलुना

अपचिति (प)ा(न)ान्(ां) संयमे स्(ा)मन्(ा)-बंभना-

नं [147] दाने एसे अंने चा हेडिसे ।[148] धंम-मगले नामा

से वर्ता(व)ये पितिना पि पुतेन पि भ(ा)तिना पि सुवामिकेन्(ा)[149]

पि मित-संथुतेन(ा) अव पटिवेसियेना ि(प)

3. इयं साधु इयं कटविये (म)ग्(ा)ले आव(त)सा अथसा

नि(द) तिया[150] इमं कछामि ति

ए हि इ(त)ले मगले स (ँ)सयिक्ये से

सिया व तं अठं निवटेय(ा) सिया पुना नो

हि(द)लोकिके चेव्(ा) से

इयं पुना धंम-मगले अकालिक्य(े)

हंचे पि तं अठं नो निटेति[151] हिद अठम्[152] पलत

अनंतं पुना पवसति[153]

हंचे पुन तं अठं निवतेति हिदा ततो उभये(स)ं

4. लधे होति हिद चा से अठे पलत चा अनंतं पुना[154]
पसवति तेना धंम–मगलेन(ा)

9. (गिरनार का पाठ[155])

पंक्ति 6. अस्ति च पि वुतं

7. साधु दन[156] इति

न तु एतारिसं अस्ता[157] दानं व अन(ग)हो[158] व यारिसं

धंम–दानं व धमनुगहो व

त तु खो मित्रेन च सुहदयेन (व)ा

8. ञतिकेन[159] व सहायन[160] व ओवादितव्यं तम्हि तम्हि

पकरणे (इ)दं कचं इदं साध[161] इति इमिना सक्(ा)

9. स्वगं आराधेतु इति

कि च इमिना कतव्यतरं यथा स्वगारधि

हिन्दी अर्थ

1. देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा। लोग बाधाओं

2. अवाह–विवाह, पुत्रोत्पन्न होने और प्रवास के समय छोटे–बड़े मंगल कार्य करते हैं। इसी तरह के अन्य अवसरों पर भी लोग छोटे–बड़े मंगलकार्य करते हैं।

3. ऐसे अवसरों पर स्त्रियाँ बहुत प्रकार के छोटे एवं निष्प्रयोजन मंगल कार्य करती हैं। मंगल कार्य करना तो कर्त्तव्य है। किन्तु ये

4. मंगल कार्य अल्प फलवाले होते हैं। धर्ममंगल ही महाफल वाला होता है। वे हैं – दास और भतकों के प्रति शिष्टाचार, श्रेष्ठ लोगों का आदर साधु है।

5. प्राणियों के प्रति संयम साधु है। ब्राह्मण–श्रमणों को दान देना

साधु है। ये और इसी प्रकार के दूसरे धर्ममंगल हैं। इसलिए

6. पिता, पुत्र भाई और स्वामी द्वारा कहना चाहिए कि यह साधु है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह मंगल कर्तव्य है। ऐसा कहा गया है –

7. दान करना साधु है। ऐसा कोई दान और अनुग्रह नहीं है जैसा धर्मदान और धर्म-अनुग्रह। इसलिए मित्र, सुहृद्

8. जाति, सहायक सभी को उपदेश करना चाहिए कि इन अवसरों पर यह कर्त्तव्य है, यह साधु है। इससे

9. स्वर्ग की प्राप्ति सम्भव है। स्वर्ग की प्राप्ति से बढ़कर अन्य क्या अधिक करणीय है।

10. (कालसी)

पंक्ति 1. देवा(नं)पिये पिय्(ा)दषा[162] लजा य्(ा)षो वा किति वा नो (म)ह-

थावा[163] मनति अन्(ा)ता (य)ं पि यसो वा कि(त) वा इछ्(ा)ि(त)

तदत्वाये अयतिये [164] चा जने धंम-सुसुषा सुसुषातु मे ति

धंम-वतं वा अनुवि(घ)य(ं) तु ति

धत(क)ाये[165] देवान(ँ)पिये पियदसि

पंक्ति 2. लाजा यषो वा किति वा इछ[166]

अं च(ा) किछि लकमति[167] देवनंपिये पियदषि लजा त

(ष)व पालंतिक्याये[168] वा किति सकले अप-प्(ा)लाषवे[169]

षियाति ति

(ए)षे चु पलिसवे ए अपुने

दुकले चु खो एषे खुदकेन वा वगेना[170] उषुटेन वा

अन(त) अगने(ा प)लकमेना षव(ं) पलितिदितु

(ह) े(त चु) खो

3. (उ)षटे(न) वा दुकले

हिन्दी अर्थ

1. देवानं प्रिय प्रियदर्शी राजा यश अथवा कीर्ति को श्रेष्ठ नहीं मानते। इसके अतिरिक्त इस समय और भविष्य में मेरी प्रजा

2. धर्माचरण के लिए प्रेरित हो और धर्म की विधियों का पालन करें। इसीलिए देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा यश अथवा कीर्ति की इच्छा करते हैं।

3–4. देवानां प्रिय प्रियदर्शी राजा जो भी पराक्रम करते हैं वह सब परलोक के लिए है। जिससे सब लोग अल्प पाप वाले हों। जो पाप है वही परिश्रव है। उत्तम पराक्रम और सभी कर्मों के परित्याग के बिना छोटे और बड़े किसी व्यक्ति से यह सम्भव नहीं है। इनमें से बड़े और भी दुष्कर हैं।

11. (शाहबाजगढ़ी)

पंक्ति 1. देवन(ँ)प्रियो प्रियद्रशि रय एवं हहति

नस्ति ए(ि)दशं दनं यदिशं ध्रम–दन ध्रम–

संस्तव(े) ध(़)म–संविहगो ध(़)म–संब(ँ)ध

तत्र एतं [171] दस–भटकनं संम्म–पटिपति मत–

पितुषु सुश्रुष मि(त्) व्र–संस्तुत–ञतिकनं श्रमण–

ब्रमणन

2. दन प्रणन अनर(ं)भो

एतं वतवो पितुन पि पुत्रेन पि भ्रतुन पि (स्प)मिकेन

पि मित्र-संस्तुतन[172] अव प्रतिवेशियेन (इ)म(ं) सधु

इमं कटवो

सो तथ करत(ँ) इअलोक च अ(र)धेति परत्र च

अनतं पुञ प्रसवति[173]

3. (ते)न ध्रम-दनेन

हिन्दी अर्थ

1. देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा। ऐसा कोई दान नहीं है जैसा धर्मदान, जैसा धर्म मित्रता, जैसी धर्म की उदारता, जैसा धर्म का सम्बन्ध।

2. दास और भृत्यों की प्रति शिष्टाचार, माता-पिता की सेवा, मित्र, परिचित, जाति और ब्राह्मण-श्रमणों को दान देना साधु है।

3. प्राणियों का अबध साधु है। पिता, पुत्र, भाई, मित्र, परिचित, जाति तथा पड़ोसी से यह कहना चाहिए कि - यही साधु है यही कर्त्तव्य है।

4. जो ऐसा आचरण करता है उसे इस लोक की प्राप्ति होती है तथा परलोक में भी उसे धर्मदान से अनन्त पुण्य होता है।

12. (गिरनार)

पंक्ति 1. देवानंपिये पियद्(ा)सि राजा सव-पासंडानि च (प)व-

जितानि च घरस्तानि च पूजयति द(ा)नेन च विवाधाय[174]

(च) पूजाय पूजयति ने

2. न तु तथा दानं व पू(जा) व द(े)वानंपियो मंञते

यथा किति सार–वधी अस स(व–पा(संडानं

सार्(ा)–वधी तु बहुविधा

3. तस तु इदं मूलं य वचि–गुती किंति आत्प–पासंड–

पूजा व पर–पासंड–गरहा व नो भवे अप्रकरणंहि

लहुका च अस

4. तम्हि तम्हि प्रकरणे

पूजेतया तु एव पर–पासंडा तेन तन[175] प्रकरेण[176]

एवं करुं आत्प–पासंडं च[177] वढयति पर–पासं–

डस च उपकरोति

5. तद्–अंञथा करोतो आत्प–पासडं च छणाति[178] पर–

पासंडस च पि अपकरोति

यो हि कोचि आत्प–पासंडं पूजयति पर–पासंडं व्(ा)

गरहति

6. सवं आत्प–पासंड–भतिया किंति आत्प–पासंडं दीप–
येम इति सो च पुन तथ करातो[179] आत्प–पासंड(ँ)
बाधतरं उपहनाति
त समवायो[180] एव साधु

7. किंति (अ)ञमंञस धंमं स्र्ुणारु च सुसुंसेरे च

एवं हि द(`)वानंपियस इछा किति सव-पासंडा

बहु-स्र्ुता च असु कल(ा)णागमा च अ(सु)

8. ये च तत्र तत प्रसंना तेहि वतव्यं

देवानंपियो नो तथा दानं व पूजां व मंञते

यथा किंति सार-वढी अस सर्व-पासडानं

बहका[181] च एताय

9. अथा[182] व्यापता धंम-महामाता च इथीझख[183] -महा-

माता च वचभूमिका[184] च अञे च निकाया

अयं च एतस फल य आत्प-पासंड-वढी च होति

धंमस च दीप्(ा)ना

हिन्दी अर्थ

1. देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा सब धर्मों, संन्यासियों एवं गृहस्थों को दान एवं विविध प्रकार के पूजा द्वारा आदर करता है। दान तथा पूजा को

2. देवताओं का प्रिय उतना नहीं मानता जितना की सब धर्मों की सारवृद्धि को। पर यह सारवृद्धि कई प्रकार की है। उसका मूल है वाक्संयम।

3. जिससे अपने पाषण्ड की बड़ाई और दूसरे पाषण्ड की निन्दा बिना अवसर न करें या उसके सम्बन्ध में सामान्य विवरण न दें। उचित अवसर पर दूसरे धर्म-सम्प्रदाय के लोगों का भी आदर करना चाहिए।

4. ऐसा करने से व्यक्ति अपने पाषण्ड की वृद्धि तो करता ही है और पर पाषण्ड का भी उपकार करता है। इसके विपरीत करने पर वह अपने धर्म की

5. हानि करता है और दूसरे धर्म का भी अपकार करता है। जो अपने धर्म में भक्ति के कारण अपने धर्म का सम्मान करता है और पर धर्म की निन्दा करता है कि

6. अपना धर्म प्रकाशित हो वह ऐसा करते हुए अपने धर्म को बहुत हानि पहुँचाता है। इसलिए सभी धर्मों में व्याप्त एकता ही साधु है कि

7. दूसरे विचार वाले भी धर्म को सुनें और उसकी सुश्रूषा करें। देवताओं के प्रिय की यह इच्छा है कि सब पाषण्ड बहुश्रुत तथा हितकर सिद्धान्तों वाले हों। जो उन–उन

8. सम्प्रदायों से सन्तुष्ट हैं उनसे कहना चाहिये कि देवताओं का प्रिय दान और पूजा को उतना महत्त्व नहीं देता जितना सभी धर्मानुयायिओं की सारवृद्धि को। इस निमित्त बहुत से अधिकारी नियुक्त हैं यथा –

9. धर्ममहामात्र, स्त्रियाध्यक्षमहामात्र, ब्रजभूमिक और अन्य अधिकारी। इसका यह फल होगा कि अपने धर्म की वृद्धि होगी। और धर्म का प्रकाशन।

13. (शाहबाजगढ़ी)

पंक्ति 1. (अठ)–वष–अ(भि)ि (स)त(स देवन)प्रि(अ)स प्रि(अ)द्रशिस र (ञो)

क(लिग) वि)ज)त[185]

दिअध–मत्(ा ़) ` प्रण–शत–(सह)स्र ` य(`) ततो अंपवुढे

शत–सहस्र–मत्रे[186] तत्र हते[187] बहु–तवत्(के व) म(ुटे)

2. ततो (प)च अ(धु)न लध(े)षु कलिगेषु तिव्र े ध्रम-

शिलन)[188] ध्र(म-क)मत ध्रमनुशस्ति च देवन-

प्रियस

सी (अ)स्ति अनुसोचन देवनप्(रिअ)स विजिनिति कलिग(नि)

3. अविजितं (हि वि) जिनमनो यो तत(त्र) वध व मरणं व

अपवहो व जनस तं बढं व(े)दनि(य)-म(तं)

गुरु-मत(ँ) च देवनंप्रियस

इदं पि चु (ततो गुरु-मततरं (देवनं)प्रियस ये

तत्र

4. वसति ब्रमण व श्रम(ण)[189] व अ(ं)ञे व प्रषंद

ग्र(ह)थ[190] व येसु विहित एष अग्रभुटि-सुश्रुष मत-

पितुषु सुश्रुष गुरुन सुस्र ुष मित्र-संस्तुत-सहय-

पंक्ति 5. ञतिकेषु दस-भटकनं सम्म-प्रतिप(ति) दृढ़-भतित

तेष तत्र भोति (अ)पग)(त्र)थो[191] व वढो व अभिरतन व निक्रमणं [192]

येष व पि सुविहितनं (सि)हो[193] अविप्रहिनो (ए ते)ष मित्र-

संस्तुत-सहय-ञतिक वसन

6. प्रपुणति (त)त्र तं पि तेष वो अपघ्रथो भोति

प्रतिभगं च (ए)तं सव्र-मनुशनं गुरु-मतं

च देवनंप्रिय(स)

नस्ति[194] च एकतरे पि प्रषडस्पि न नम प्रसदो

सो यमत्रो[195] (ज)नो तद कलिगे (ह)तो च मुट(ो) च अप–

व(ुढ) च ततो

7. शत–भगे व सहस्र–भगं व (अ)ज गुरु–मतं व(ो)

देवनंप्रियस

यो पि च अपकरेयति क्षमितविय–मते व देवनं–

पि्(त्र)यस यं शको क्षमनये

च पि च अटवि देवनंप्रियस विजिते भोति त पि अनुनेति

अनुनिजपेति[196]

अनुतपे पि च प्रभवे

8. देवनंप्रियस वुचति तेष किति अवत्रपेयु न च (ह)–

ञेयसु

इछति हि द(े)वनंप्रियो सव्र–भुतन अक्षति स(ँ)य–

मं सम(च)रियं रभसिये[197]

अयि च मुख–मुत(ा) विजये देवनंप्रिय(स) यो–

ध्रम–विजयो

सो च पुन लघो देवनंप्रियस इह च सवेषु च

अंतेषु

पंक्ति 9. (अ) षषु पि योजन–श(त)ेषु यत्र अंतियोको नम य(ो)न–रज

परं च तेन अतियोक(ो)न[198] चतुरे[199] रजनि तुरमये

नम अंतिकिनि नम मक[200] नम अलिकसुदरो नम

निच चोड-पंड अव त(ँ)बपं(णि)य

(ए)वमेव (हि)द रज-विषवस्पि[201] योन-क(ं)बोयेषु

नभक-नभितिन[202]

10. भोज-पितिनिकेषु अंध्र-पलिदेषु[203] सवत्र देवनं-

प्रियस ध्रमनुशस्ति अनुवटंति

यत्र पि देवनंप्रियस दुत नो व्रचंति[204] ते पि

श्रुतु देवनप्रियस ध्रम-वुटं विध्(ा)नं

ध्रमनुशस्ति ध्रमं (अ)नुविधियिशं(ति) च

यो (स) लघे एतकेन भो(ति) सवत्र विजयो सव(त्र) पु(न)

11. विजयो प्रिति-रसो सो

लघ भ(ोति) प्रिति ध्रमं-विजयस्पि

लहुक तु खो सो प्रिति

परत्रि(क)मेव मह-फल मेञति देवन (ँ) प्रियो

एतये च अठये अयि ध्रम-दिपि निपि(स्त)किति पुत्र

पपोत्र मे असु नवं विजयं व विजेत(ि)वअ[205] मञिषु

स्प(कस्पि)[206] यो विजय(े क्षं)ति[207] च लहु-द(ं)डत च

रोचेतु तं च यो विज[208] मञ(तु)

12. यो ध्रम-विजयो सो हिदलोकिको परलोकिको

सव-चति-रति भोतु य (घ)त्रंम-रति

स हि हिदलोकिक परलोकिक[209]

हिन्दी अर्थ

1. सिंहासन पर बैठने के आठ वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा कलिंग जीता गया। डेढ़ लाख प्राणी वहाँ से बन्दी बनाकर बाहर भेजे गये, एक लाख वहाँ मारे गये और उसके कई गुना मर गये।

2. तत्पश्चात् अब कलिंग के विजित होने पर देवताओं के प्रिय की रुचि धर्मपालन (धर्म की शुद्धि), धर्मकर्म (धर्मानुराग) और धर्मानुशष्टि (धर्मोपदेश) में तीव्र हो गई। कलिंग विजित कर देवताओं के प्रिय को खेद है।

3. क्योंकि यह विजय कोई विजय नहीं है। इसमें वध, मरण और निष्कासन होता है। वह देवताओं के प्रिय के द्वारा अत्यन्त वेदनीय और गम्भीरता से अनुभव किया गया। इससे भी अधिक गम्भीर देवानां प्रिय के लिए यह है क्योंकि वहां

4. ब्राह्मण, श्रमण या अन्य सम्प्रदाय या गृहस्थ रहते हैं, जिनमें अग्रजों की सेवा, माता–पिता की सेवा, गुरु सेवा, मित्र, परिचित, सहायक,

5. ज्ञातिजनों तथा दास–भृतकों के प्रति सद्व्यवहार और दृढ़ भक्ति पाई जाती है। युद्ध में वहाँ आघात, वध और प्रियजनों का निष्कासन होता है। यही सब मनुष्यों की दशा होती है। फिर भी जो सुव्यवस्थित स्नेह वाले होते हैं उनके मित्र, परिचित और ज्ञातिजन संकट को प्राप्त होते हैं।

6. उनसे उनको आघात होता है। यही सब मनुष्यों की दशा होती है। वह देवताओं के प्रिय के मत में गम्भीर है। ऐसा एक भी देश नहीं है जिसमें रहने वालों का किसी सम्प्रदाय में विश्वास न हो। इसलिए जितने लोग कलिंग मे मारे गये, मरे या बन्दी बनाकर ले जाये गये।

7. उनका सौवां या सहस्रवां भाग भी आज देवताओं के प्रिय के मत में घृणित है। देवताओं के प्रिय के विचार में यदि कोई उपकार करें तो वह क्षम्य हे। वहां तक जहां तक क्षमा करना सम्भव है और जो आटविक प्रदेश देवताओं के प्रिय द्वारा विजित उसके राज्य में हैं उन्हें वह अनुनय द्वारा शान्त करता है, परिवर्तित करता है तथा अपनी कृपा के अतिरिक्त उन्हें दण्ड देने की अपनी शक्ति को बताता है।

8. देवताओं का प्रिय उनसे कहता है कि वे अपने पूर्व कर्मों के लिए लज्जित हों नहीं तो नष्ट कर दिए जाएँगे। देवताओं का प्रिय सभी प्राणियों के अक्षय, संयम, सदाचरण और प्रसन्नता की इच्छा करता है। देवताओं का प्रिय के अनुसार धर्मविजय की प्रमुख विजय है। यह विजय बार–बार देवताओं के प्रिय द्वारा यहां और सभी सीमान्त राज्यों में

9. आठ सौ योजन दूर स्थित अन्तियोक नामक यवन राजा और उस अन्तियोक के अतिरिक्त चार राजा–तुलमय (टालमी), अन्तिकेन (अण्टीगोनस गोनैटस), मक (मेगास थियास), अलिकसुन्दर (इपिरस या कोरिंथ का एलेक्जेण्डर) और दक्षिण का चोल, पाण्ड्य, ताम्रपर्णी तक की गई हैं। इसी प्रकार राज्य, प्रदेशों, कम्बोजों, नाभकों, नाभपंक्तियों

10. भोजों, पिटैनिको, आंध्रो तथा पुलिंदो में सर्वत्र देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का पालन होता है। जिन स्थानों में देवताओं के प्रिय दूत नहीं पहुँचते वहां भी लोग देवताओं के प्रिय के धर्म का व्यवहार, विधान और धर्मानुशासन सुनकर धर्म का आचरण करते हैं और करते रहेंगे। इससे जो विजय प्राप्त होता है। वह सर्वत्र पुनः

11. प्रीति देने वाला होता है। धर्म विजय से प्राप्त प्रीति गाढ़ी होती है। पर यह प्राप्ति छोटी है क्योंकि देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी

परमार्थ को ही महाफल मानता है। इस निमित्त यह धर्मलिपि अंकित कराई गई कि मेरे पुत्र, पौत्र जो इसको सुने वे नया विजय न करें। अगर उन्हें शस्त्र विजय करना ही पड़े तो शान्ति और लघुदण्डता का अनुसरण कर उसमें आनन्द लें। वे धर्म विजय

12. को ही विजय माने। वही इहलौकिक और पारलौकिक सुख का कारण है। उद्यम में ही उन्हें आनन्द हो क्योंकि वह इहलौकिक एवं पारलौकिक जीवन के लिए कल्याणकारी होता है।

14. (गिरनार)

पंक्ति 1. अयं धंम–लिपी[210] देवानंप्रियेन प्रियदसिना[211] र(ा)ञा

ल(ॆ)खापिता[212] अस्ति एव

2. संखित(ॆ)न अस्ति मझमेन अस्ति विस्ततन[213]

न च[214] सर्वं (ष)र्वत घटितं [215]

3. महालके हि विजितं बहु च लिखितं लिखापयिसं चेव[216]

अस्ति–च–एत कं [217]

4. पुन पुन वुतं [218] तस तस अथस माधुरताय किंति[219]

जनो तथा पटिपजेथ

5. तत्र एकदा[220]

असमात्(ा) लिखितं अस देसं [221] व सछाय[222]

(का)रनं व

6. (अ)लोचेत्पा लिपिकरापरधेन व[223]

हिन्दी अर्थ

1. यह लिपि देवानां प्रियदर्शी राजा द्वारा लिखवाई गई है।
2. संक्षेप में, मध्यमरीति में और विस्तार में सभी सर्वत्र सम्भव नहीं है।
3. विशाल साम्राज्य है। बहुत लिखा गया है। और बराबर लिखा जायगा। यह
4. पुनः पुनः कहा गया अपने अर्थ में माधुर्य के कारण इसलिए कि लोग इसका अनुपालन करें।
5. इसमें एक अपूर्ण लिखी है। स्थान, संक्षेपीकरण अथवा
6. लेखक के अपराध के कारण।

ङ (सात स्तंभ लेख) 1

पंक्ति 1. देवानंपिये पियदसि लाज हेवं आहा

सडुवीसति-

2. वस-अभिसितेन मे इयं धम-लिपि लिखापिता
3. हिदत-पालते दुसंपटिपादये अंनत अगाया धंम-

कामताया

4. अगाय पलीखाया अगाय सु(सू)याया अगेन भयेना
5. अगेन उसाहेन

एस चु खो मम अनुसथिया

6. धंमापेखा धंम-कामता चा सुवे सुवे वढिता

वढीसति चेवा

7. पुलिसा पि च मे उकसा चा गेवया चा मझिमा चा अनुवि–

धीयंती

8. संपटिपादयंति चा अलं चपलं समादपयितवे

हेमेवा अंत–

9. महामाता पि

एस हि विधि या इयं धंमेन पालना धंमेन

विधाने

10. धंमेन सुखियना धंमेन गोती ति

हिन्दी अर्थ

1. देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा – छब्बीस

2. वर्ष अभिषिक्त होने पर मैंने यह धर्मलिपि लिखवाई।

3–5. बिना उच्चतम धर्मकामना, आत्मपरीक्षा, शुश्रूषा, धर्ममय तथा उत्साह के इहलौकिक तथा पारलौकिक कल्याण दुष्कर है। किन्तु यह मेरा धर्मोपदेश।

6. धर्मापेक्षा और धर्मकामना निरन्तर बढ़ा है और बढ़ेगा।

7. मेरे राजपुरुष जो उच्च तथा मध्यम है धर्मोपदेश का अनुसरण

8. तथा सम्पादन करते हैं। चतुर व्यक्ति द्वारा भी धर्मानुसरण कराने में वे समर्थ हैं। इसी प्रकार

9. अन्तमहामात्र भी। यही रीति है जिससे धर्म द्वारा प्रजापालन, धर्म द्वारा संविधान

10. धर्म द्वारा प्रजा को सुखी करने और धर्म से रक्षा करने की।

स्तंभ लेख 2

पंक्ति 1. देवानंपिये पियदसि लाज

2. हेवं आहा

धंमे साधू कियं चु धंमे ति

अपासिनवे बहु कयान

3. दया दाने सचे सोचये

चखु–दाने पि मे बहुविधे दिंने

दुपद–

पंक्ति 4. चतुपदेसु पखि–वालिचलेसु विविधे मे अनुगहे कटे आ पान–

5. दाखिनाये

अंनानि पि च मे बहूनि कयानानि कटानि

एताये मे

6. अठाये इयं धंम–लिपि लिखापिता हेवं अनुपटिपजंतु

चिलं–

7. थितिका च होतू ती ति

ये च हेवं संपटिपजीसति से सुकटं कछती ति

हिन्दी अर्थ

1. देवानंपिय प्रियदर्शी राजा ने

2. ऐसा कहा– धर्म साधु है। धर्म क्या है? अल्प पाप, बहुकल्याण

3. दया, दान, शौच। ज्ञान दृष्टि भी मैंने विविध प्रकार का दिया। मनुष्य,

4. चौपाए, पक्षी और जलचरों पर मेरे द्वारा विविध प्रकार की कृपा की गई,

5. अभयदान भी दिया गया और अन्य भी बहुत से कल्याण किए गये। मैंने

6. इस उद्देश्य से यह धर्मलिपि लिखवाई कि लोग इसका अनुसरण करें।

7. कि यह स्थायी हो। जो इसको इस प्रकार स्वीकार करेंगे वे सुकृत करेंगे।

स्तंभ लेख 3

पंक्ति 1. देवानंपिये पियदसि लाज हेवं आहा

कयानंमेव देखति इयं मे

2. कयाने कटे ति

नो मिना पापं द(`)खति इयं मे पापे कटे ति इयं वा

आसिनवे

3. नामा ति

दुपटिवेखे चु खो एसा

हेवं चु खो एस देखिये

इमानि

4. आसिनव–गामीनि नाम अथु चंडिये निठूलिये कोघे माने

इस्या

5. कालनेन व हकं मा पलिभसयिसं

एस बाढ देखिये

इयं मे

6. हिदतिकाये इयंमन मे पालतिकाये

हिन्दी अर्थ

1. देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा - मनुष्य कल्याण ही देखता है। मैंने यह

2. कल्याण किया। वह थोड़ा भी पाप नहीं देखता कि यह पाप मैंने किया अथवा वह पाप है।

3. यह सचमुच कठिनाई से देखा जा सकता है पर इसे अवश्य देखना चाहिए कि ये

4. पाप की ओर ले जाते हैं - चण्डता, निष्ठुरता, क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या

5. इनके कारण मैं अपने को भ्रष्ट कर दूँ। इसे गम्भीरता से देखना चाहिए कि ये

6. मेरे इस लोक के लाभ के लिए हैं तथा ये परलोक के कल्याण के लिए हैं।

स्तंभ लेख 4

पंक्ति 1. देवानंपिये पियदसि ल(ा)ज हेवं आहा

सडुवीसति-वस-

2. अभिसितेन मे इयं धंम-लिपि लिखापिता

लजूका मे

पंक्ति 3. बहूसु पान-सत-सहसेसु जनसि आयता

तेसं ये अभिहाले वा

4. दंडे वा अत-पतिये मे कटे किंति लजूका अस्वथ अभीता

5. कंमानि पवतयेवू जनस जानपदसा हित-सुखं उपद-
हेवू

6. अनुगहिनेवु चा
सुखीयन-दुखीयनं जानिसंति धंम-युतेन च

7. वियोवदिसंति जनं जानपदं किंति हिदतं च पालतं च

8. आलाधवेयू ति
लजूका पि लघंति पटिचलितवे मं
पुलिसानि पि मे

9. छंदंनानि पटिचलिसंति
ते पि च कानि वियोवदिसंति येन मं लजूका

10. चघंति आलाघयितवे
अथा हि पजं वियताये घातिये निसिजितु

11. अस्वथे होति वियत घाति चघति मे पजं सुखं पलि-
हटवे

12. हेवं ममा लजूकाकटा जानपदस हित-सुखाये
येन एते अभीता

13. अस्वथ संतं अविमना कंमानि पवतयेवू ति एतेन मे
लजूकानं

14. अ(ि)भहाले व दंडे वा अत-पतिये कटे
इछितविये ि(ह) एसा किंति

15. वियोहाल-समता च सिय दंड-समता चा

अव इते पि च मे आवुति

16. बंधन-बधानं मुनिसानं ती(ी)लत-दंडानं पत-

वधानं तिनि दिवसा(न) मे

17. योते दिंने

नातिका व कानि निझपयिसंति जीविताये तानं

पंक्ति 18. नासंतं वा निझपयिता[224] दानं दाहंति-पालतिकं

उपवासं व कछंति

19. इछा हि मे हेवं निलुघसि पि कालसि पालतं आलाघयेवू ति

जनस च

20. वढति विविधे धंम-चलने संयमे दान-सविभागे ति

हिन्दी अर्थ

1. देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा - छब्बीस वर्षों से
2. अभिषिक्त होने पर मेरे द्वारा यह धर्मलिपि लिखवाई गई है। मेरे रज्जुक
3. कई लाख प्राणियों और लोगों के लिए नियुक्त हैं। उनका जो अभियोग लगाने का अधिकार अथवा
4. दण्ड का अधिकार है उसमें उन्हें मेरे द्वारा स्वतन्त्रता दी गई है क्योंकि रज्जुक आश्वस्त एवं निर्भय होकर
5. कार्य में प्रवृत्त हों, जनता और जनपदों के हित एवं सुख पहुँचाने की व्यवस्था करें।

6. और उन पर कृपा करें। वे सुख और दुःख के कारणों को जानेंगे और अधिकारियों द्वारा

7. जनपद के लोगों को उपदेश करेंगे कि लोग इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति के लिए

8. प्रयत्न करें। रज्जुक भी मेरी सेवा के लिए चेष्टा करते हैं। मेरे राजपुरुष भी

9. मेरी इच्छाओं का पालन करेंगे। वे कुछ लोगों को उपदेश करेंगे जिससे रज्जुक मुझे

10. प्रसन्न करने की चेष्टा करेंगे। जिस प्रकार योग्य धाय के हाथ में सन्तान सौंप कर

11. माता–पिता निश्चिन्त होते हैं। योग्य धाय चेष्टा करती है मेरे सन्तान को सुख प्रदान करने के लिए।

12. इसी प्रकार जनपद के हित सुख के लिए रज्जुक नियुक्त हुए हैं जिनसे निर्भय

13. और आश्वस्त होते हुए प्रसन्नचित कर्मों में प्रवत्त हों। इसीलिए मेरे द्वारा रज्जुकों को

14. अभियोग लगाने एवं दण्ड देने के अधिकार में स्वायत्तता दी गई है। इसकी इच्छा करनी चाहिए।

15. उनमें व्यवहार समता और दण्ड समता होनी चाहिए। यह मेरी आज्ञा है।

16. कारावास में बंधे तथा मृत्युदण्ड पाए हुए लोगों को मेरे द्वारा तीन दिनों की

17. छूट दी गई है। इसी बीच उनके स्वजन उनका जीवन बचाने के लिए राज्जुओं को इस पर पुनर्विचार के लिए आकृष्ट करेंगे।

18. अथवा उनके जीवन के अन्त तक ध्यान करते हुए दान देंगे पारलौकिक कल्याण के लिए अथवा उपवास करेंगे।

19. मेरी इच्छा है कि कारावास में रहकर भी लोग परलोक का ध्यान करें कि

20. लोगों में धर्माचरण, संयम और दान वितरण बढ़े।

स्तंभ लेख 5

पंक्ति 1. देवानंपिये पियदसि लाज हेवं आहा

सडुवीसति-वस-

2. अभिसितेन मे-इमानि जातानि अवधियानि कटानि सेयथा

3. सुके सालिका अलुने चकवाके हंसे नंदीमुखे गेलाटे

4. जतूका अंबा-कपीलिका दली अनठिक-मछे वेदवेयके

5. गंगा-पुपटके संकुज-मछे कफट्(ा)-सयके पंन-

ससे सिमले

6. संडके ओकपिंडे पलसते सेत-कपोते गाम-कपोते

7. सवे चतुपदे ये पटिभोगं नो एति न च खादियती

...............ि [225]

8. (ए)लका चा सूकली चा गभिनी व पायमीना व

अवधि(य्.प.) के[226]

9. पि च कानि आसंमासिके

वधि-कुकुटे नो कटविये

तुसे सजीवे

10. नो झापेतविये

दावे अनठाये वा विहिसाये वा नो झापेतविये

11. जीवेन जीवे नो पुसितविये

तीसु चातुमासीसु तिसायं [227] पुंनमासियं

12. तिंनि दिवसानि चावुदसं पंनडसं पटिपादय (`)

धुवाये चा

पंक्ति 13. अनुपोसथं मछे अवधिये नो पि विकेतविये

एतानि येवा दिवसानि

14. नाग–वनसि केवट–भोगसि यानि अंनानि पि जीव–निकायानि

15. नो हंतवियानि

अठमी–पखाये चावुदसाये पंनडसाये तिसाये

16. पुनावसुने तीसु चातुंमासीसु सुदिवसाये गोने नो नील–

खितविये

17. अजके एडके सूकले ए वा पि अंने नीलखियति नो नीलखितविये

18. तिसाये पुनावसुने चातुंमासिये चातुंमासि–पखाये

अस्वसा गोनसा

19. लखने नो कटविये

याव–सडुवीसति वस–अभिसितेन मे एताये

20. अंतलिकाये पंनवीसति बंधन–मोखानि कटानि

हिन्दी अर्थ

1. देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा - छब्बीस वर्षों से
2. अभिषिक्त होने पर इन जीवधारियों को मैंने अवध्य घोषित किया। वे हैं -
3. शुक, सारिका (लालपक्षी), चकवा, हंस, नन्दीमुख (मैना का एक प्रकार), गेलाट
4. गीदड़, रानीचींटी, कछुई, अस्थिरहित (बिना कांटे की) मछली, वेद वेयक
5. गंगा-कुक्कुट, संकुजमत्स्य, कछुआ, साही, नपुंसक शश, बारहसिंगा,
6. सांड, गोधा, मग, सफेद कबूतर, ग्राम कपोत
7. और सभी प्रकार के चौपाए जो न उपयोग में आते हैं न खाए जाते हैं।
8. गर्भिणी अथवा दूध पिलाती हुई बकरी, भेड़, शकूरी अवध्य बताई गई। इनके बच्चे भी
9. जो एक महीने के होते थे वे भी। कुक्कुट की वधिया नहीं करनी चाहिए। सजीव भूसी
10. नहीं जलानी चाहिए। व्यर्थ के लिए या हिंसा के लिए जंगल नहीं जलाना चाहिए।
11. जीव से जीव का पोषण नहीं करना चाहिए। तीनों चौमासों में तिष्य पूर्णमासी को
12. तीन दिन -चतुर्दशी, पूर्णिमा और प्रतिपादा, निश्चित रूप से

13. उपवास के दिन मछलियाँ नहीं मारनी चाहिए और न बेचनी चाहिए। इन दिनों

14. नागवनी, मछलियों के तालाब में जो भी दूसरे जीव हों

15. उन्हें नहीं मारना चाहिए। प्रत्येक पक्ष की पंचमी, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, तिष्य

16. पुनर्वसु, तीन चातुर्मासो, के शुक्ल–पक्ष में गौ को दागना नहीं चाहिए।

17. बकारा, भेड़, सूअर अथवा जो पशु दागे जाते हैं उनको भी दागना नहीं चाहिए।

18. तिष्य, पुनर्वसु, प्रत्येक चतुर्मास की पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चतुर्मास के शुक्ल पक्ष में अश्व और गौ को

19. दागना नहीं चाहिए। छब्बीस वर्ष अभिषिक्त होने पर मैंने इस बीच

20. पच्चीस बार बन्धन–मोक्ष (बन्दियों की मुक्ति) किया।

स्तंभ लेख 6

पंक्ति 1. देवानंपिये पियदसि लाज हेवं आहा दुवाडस–

2. अस–अभिसितेन मे धंम–लिपि लिखापिता लोकसा

3. हित–सुखाये से तं अपहटा तं तं धंम–वढि

पापोवा

4. हेवं लोकसा हित–(सुखे) ति पटिवेखामि अथ इयं

5. नातिसु हेवं पतियासंनेसु हेवं अपकठेसु

6. किमं [228] कानि सुखं अवहामीति तथ च विदहामि

हेमेवा

7. सव-निकायेसु पटिवेखामि

सव-पासंडा पि मे पूजिता

8. विविधाय पूजाया

ए चु इयं अत्(I) ना पचूपगमने

9. से मे मोख्य-मते

सडुवीसति-वस-अभिसितेन मे

10. इयं धंम-लिपि लिखापिता

हिन्दी अर्थ

देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा राज्याभिषेक के बारह वर्ष बाद जनता के हित तथा सुख के लिए धर्मलिपि लिखवायी गयी कि वे प्रत्येक तथ्य को ग्रहण करें तथा उससे विभिन्न पक्षों में धर्म का विकास कर सके। मैं देखना चाहता हूँ कि लोगों के हित और सुख को, ज्ञातियों के कल्याण को जो मेरे समीप तथा मुझसे दूर हैं मैं देखना चाहता हूँ कि किसकी कौन-सी भलाई की जा सकती है और उसी प्रकार मैं आचरण करता हूँ। सभी सम्प्रदायों का मैंने अनेक प्रकार से आदर किया है। किन्तु व्यक्तिगत रूप से लोगों से मिलने को मैं मुख्य कर्त्तव्य मानता हूँ। यह धर्म लिपि मैंने अपने अभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में खुदवाया।

स्तंभ लेख 7

पंक्ति 1. देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा

ये अतिकंतं

2. अंतलं लाजाने हुसु हेवं इछिसु कथं जने

3. धंम-वढिया वढेया नो चु जने अनुलुपाया धंम-
वढिया

4. वढिथा
एतं देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा
एस मे

5. हुथा
अतिकंतं च अंतंल्(ा)ं [229] हेवं इछिसु लाजाने कथं
जने

6. अनुलुपाया धंम-वढिया वढेया ति नो च जने अनुलु-
पाया

7. धंम-वढिया वडिथा
से किनसु जने अनु(प)टिपजेया

8. किनसु जने अनुलुपाया धंम-वढेया ति
(ि)कनसु कानि

9. अभ्युंनामयेहं धंम-वढिया ति
एतं देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं

10. आहा
एस मे हुथा
धंम-सावनानि सावापायामि-धंमानुसथिनि

11. अनुस(ा)सामि

एंत जने सुतु अनुपटीपजीसति अभ्युंनमिसति

12. धंम-वढिया च बाढं वढिस(ि)त

एताये मे अठाये धंम-सावनानि सावापितानि धंमा

नुसथिनि विविधानी आनपितानि (य) ....(इस)ा[230] पि बहुने

जनसि आयता ए ते पलियोवदिसंति पि पविथलिसंति पि

लाजूका पि बहुकेसु पान-सत-सहसेसु आयता ते पि मे

आनपिता हेवं च हेवं च पलियोवदाथ

पंक्ति 13. जनं धंम-यु (त)

(देव)ानंपिये पियदसि हेवं आहा

एतमेव मे अनुवे-खमाने धंम-थंभानि कटानि

धंम-महामाता कटा धं(म).ा ...[231] कटे

देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा

मगेसु पि मे निगोहानि लोपापितानि छायोपगनि होसंति

पसु-मुनिसानं अंबा-वडिक्या लोपापिता

अढ-(को)ि (स)क्यानि पि मे उदुपानानि

14. खानापापितानि निंसि(ढ)या च कालापिता

आपानानि मे ब(ह)ुकानि तत तत क(ा)लापितानि पटीभो-गाये

प्(ा)सु-मुनिसानं

(ल).........[232] एस पटीभोगे नाम

विविधाया हि सुखायनाया पुलिमेहि पि लाजीहि ममया च

सुखयिते लोके

इमं चु धंमानुपटीपती अनुपटीपजंतु ति एतदथा मे

15. एस कटे

देवानंपिये पियदसि हेवं आहा

धंम-महामाता पि मे ते बहुविधेसु अठेसु अनुग-

हिकेसु वियापटासे पवजीतानं चेव गिहिथानं च

सव ... (ड) ेसु[233] पि च वियापटासे

संघठसि पि मे कटे इमे वियापटा होहंति ति हेमेव

बाभनेसु आ(ज) ीविकेसु पि मे कटे

16. इमे वियापटा होहंति ति निगंठेसु पि मे कटे इमे वियापटा

होहंति नाना-पासंदेसु पि मे (क)टे इमे वियापटा

होहंति ति पटिविसिठं पटीविसिठं तेसु तेसु (ते) ...

माता[234] धंम-महामाता चु मे एतेसु चेव विया(प)टा सवेसु

च अंनेसु पासंडेसु

देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा

पंक्ति 17. एते च अंने च बहुका मुखा दान-विसगसि वियापटासे

मम चे देविनं च सवसि च मे ओलोघनसि ते

बहुविधेन आ(का)लेन तानि तानि तुठायतन(ा)नि पटी

...............[235] हिद चेव दिसासु च

दालकानं पि च मे कटे अंनानं च देवि-कुमालानं

इमे दान-विसगेसु वियापटा होहंति ति

18. धंमापदानठाये धंमानुपटिपतिये

एस हि धंमापदाने धंमपटीपति च या इयं दया

दाने सचे सोचवे मघवे साध(व) ` च लोकस हेवं

वढिसति ति देवानंपिये (प...स.[236] ल)ाजा हेवं आहा

यानि हि (क)ानि चि ममिया साधवानि कटानि तं लोके

अनूप्(ा)टीपंने तं च अनुविधियंति

तेन वढिता च

19. वढिसंति च माता-पि(ि)तसु सुसुसाया गुलुसु सुसुसाया वयो-

महालकानं अनुपटीपतिया बाभन-समनेसु कपन-

वलाकेसु आव दास-भटकेसु संपटीपतिया

देवानं(ि)प(य्...य)दसि[237] लाजा हेवं आहा

मुनिसानं चु या इयं धंम-वढि वढिता दुवेहि

येव आकालेहि धंम-नियमेन च निझतिया (च)

20. तत तु लहु से धंम-नियमे निझतिया व भुये

धंम-नियमे चु खो एस ये मे इयं कटे इमानि च

इमानि जातानि अवधियानि

अंनानि पि चु बहु(क्)...[238] धंम-नियमानि यानि से

कटानि

निझतिया व चु भुये मुनिसानं धंम-वढि वढिता

अवहिंसये भुतानं

पंक्ति 21. अनालंभाये पानानं

से एताये अ(थ)ाये इयं कटे पुतापपोतिके चंदमसु–

लियिके होतु ति तथा च अनुपटीपजंतु ति

हेवं हि अनुपटीपजंतं हि(द)त–(पाल)ते आलधे होति

सतविसति–वसाभि(ि)सतेन मे इयं धंम–लिबि लिखा–

पापिता ति

एतं देवानंपिये आहा

इयं

22. धंम–लिबि अत अथि सिला–थंभानि वा सिला–फलकानि वा

तत कटविय एन एस चिल–ठितिके सिया

हिन्दी अर्थ

1. देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा। पुराने समय में जो
2. राजा हुए उन्होंने इच्छा की कि किस प्रकार लोगों में
3. धर्मवृद्धि बढ़े किन्तु धर्मवृद्धि अनुरूप
4. न हुई। इस पर देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा। ऐसा मुझे
5. लगा विगत काल में इस प्रकार राजाओं ने इच्छा की कि किस रीति से लोगों में
6. अनुरूप धर्मवृद्धि हो किन्तु लोगों में अनुरूप
7. धर्म की वृद्धि न हुई। तो किस विधि से लोग धर्म का अनुसरण करें?

8. किस प्रकार लोगों में धर्मवृद्धि अनुरूप बढ़े? किस प्रकार और किसकी

9. धर्म की बाढ़ से उन्नति कराऊँ? इस पर देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा

10. कहा। ऐसा मुझे लगा की लोगों को धर्म श्रावण सुनवाऊँ और धर्मानुशासन देने का

11. आदेश दूँ कि लोग इसे सुनकर अनुसरण कर सके और अपनी उन्नति कर सके।

12. और इससे धर्मवृद्धि द्वारा वे अत्यधिक बढ़ेंगे। इस प्रयोजन से मेरे द्वारा धर्मश्रावण सुनाये गए और विविध धर्मानुशासनों को आज्ञापित किया गया जिससे मेरे पुरुष भी जो बहुत से लोगों पर नियुक्त हैं चारों ओर धर्म को स्पष्ट करेंगे और फैलावेंगे। राजुक भी जो कोई कई लाख प्राणियों पर नियुक्त हैं वे भी मेरे द्वारा आज्ञापित है। कि इस–इस प्रकार

13. उपदेश दें। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने इस प्रकार कहा। इसी को देखकर मेरे द्वारा धर्मस्तम्भ स्थापित किए गए, धर्ममहामात्र की नियुक्ति की गई, धर्मश्रावण किया गया। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कहा। मार्गों में मेरे द्वारा न्यग्रोध लगाए गए, पशुओं तथा मनुष्यों के छाया के लिए आम्रवाटिकायें लगवाई गई हैं। आधे–आधे कोस पर कुएँ भी

14. खुदवाए गए, विश्रामगृह स्थापित किए गए। पशुओं तथा मनुष्यों के उपयोग के लिए यहां वहां बहुत से प्याऊ मेरे द्वारा बनवाए गए किन्तु यह आनन्द अत्यन्त निम्न प्रकार का है। लोग पूर्व राजाओं द्वारा तथा मेरे द्वारा विभिन्न प्रकार के सुख से सुखी बनाए गए हैं। लोग इस धर्माचरण का अनुसरण श्रद्धा और भक्ति से करें। मेरे द्वारा

15. ये सब किए गए। देवताओं के प्रियदर्शी राजा ने कहा। मेरे द्वारा धर्म महामात्र की नियुक्ति बहुविध लोक–कन्याणकारी कार्यों के लिए की गयी है। वे प्रव्रजित गहस्थों और सभी धार्मिक सम्प्रदायों में नियुक्त हैं। ये संघ के कार्यों के देखरेख के लिए मेरे द्वारा नियुक्त हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणों तथा आजीविकों में

16. निर्ग्रन्थों में मेरे द्वारा ये व्याप्त हैं, अनेक धार्मिक सम्प्रदायों में भी मेरे द्वारा ये व्याप्त हैं। विविध श्रेणियों तथा बहुत से कार्यों के लिए अनेक महामात्र हैं किन्तु धर्ममहामात्र इनमें तथा अन्य सब सम्प्रदायों के लिए नियुक्त हैं। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा

17. ये तथा अन्य बहुत से मुख्य कर्मचारी मेरे तथा देवियों के दान के विषय में नियुक्त हैं। सभी मेरे अन्तःपुर में रहने वाले विभिन्न प्रकार के दान के अवसर का उपयोग करते हैं यहाँ (पाटलिपुत्र में) और अन्य दिशाओं में (राज्य के भाग में) राजकुमारों के सम्बन्ध में भी तथा अन्य देवी कुमारों के दान–वितरण में ये नियुक्त हैं

18. धर्म के सत्कार्य के लिए और धर्म के प्रतिपादन के लिए। यह धर्मावदान और धर्मप्रतिपत्ति को उत्पन्न करता है, जो लोगों में दया, दान, सत्य, शुचि, मार्दव और साधुता के कारण बढ़ता है। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा जो कुछ मेरे द्वारा साधुकार्य किया गया है उनका लोगों द्वारा आचरण किया गया है और अनुसरण किया गया है। उससे लोगों में बढ़ा है

19. और बढ़ेगा – माता–पिता की सुश्रूषा, गुरु–सुश्रूषा, वयोवद्धों, ब्राह्मणों, श्रमणों, कृपणों, निर्धनों, दासभृतकों के प्रति उचित व्यवहार। देवतओं के प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा कि मनुष्यों में जो यह धर्मवृद्धि हुई है वह दो कारणों से हुई है– धर्म नियमन और धर्म में ध्यान से।

20. उसमें धर्म नियमन लघु महत्त्व का है जबकि गम्भीर ध्यान ही विशेष महत्त्व का है। धर्म नियम जो मेरे द्वारा इस प्रकार आज्ञाप्त किया गया है - ये जीव अवध्य हैं। अन्य भी बहुत से धर्म नियमन हैं जो मैंने बनवाये हैं। किन्तु ध्यान द्वारा ही मनुष्यों में अधिक धर्मवृद्धि हुई है जिसमें - जीवों की अहिंसा,

21. प्राणियों का अवध। इस प्रयोजन के लिए यह धर्मलिपि उत्कीर्ण की गई है कि पौत्र प्रपौत्र के शासनकाल तक और सूर्य चन्द्र की स्थिति तक यह रहने वाली हो और लोग इसका अनुसरण करें। इस प्रकार इसके अनुसरण करने से ऐहिक और पारलौकिक कल्याण प्राप्त होता है। 27 वर्ष अभिषेक के बाद मेरे द्वारा यह धर्मलिपि लिखवाई गई। इस पर देवताओं के प्रिय ने कहा

22. जहाँ शिलास्तम्भ या शिला-फलक हैं उनपर यह धर्मलिपि उत्कीर्ण की जानी चाहिए जिससे यह चिरस्थायी हो सके।

च. चार लघु स्तंभ लेख

1. (सारनाथ)

पंक्ति 1. देवा ...[239]

2. एल् ....

3. पाट[240] ....ये[241] केनपि संघे भेतवे

ए चुं खो

4. (भिख)ू (वा भिख)ुनि वा संघ भ(ाखि)त[242] स(े)

ओदातानि दुस(ा)ि (न) (स)ंनंघापयिया आनावाससि

5. आवासयिये

हेवं इयं सासने भिखु-संघसि च भिखुनि-

संघसि च विंनपयितवे

6. हेवं देवानंपिये आहा

हेदिसा च इका लिपी तुफाकंतिकं हुवति संसलनसि

निखिता

7. इकं च लिपिं हेदिसमेव उपासकानंतिकं निखिपाथ

ते पि च उपासकां अनुपोसथं यावु

पंक्ति 8. एतमेव सासनं विस्वंसयितवे अनुपोसथं च धुवाये

इकिके माहामाते पोसथाये

9. याति एतमेव सासनं विस्वंसयितवे आजानितवे च

आवते च तुफाकं आहाले

10. सवत विवासयाथ तुफे एतेन वियंजनेन

हेमेव सवेसु कोट–विषवेसु एतेन

11. वियंजनेन विवासापयाथा

हिन्दी अर्थ

1. देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा आज्ञा देते हैं

2. जो पाटलिपुत्र के महामात्र हैं उनके द्वारा संघ को संगठित किया गया है।

3. पाटलिपुत्र तथा अन्य नगरों में ऐसा करना चाहिए जिससे किसी के द्वारा संघ भेद न हो सके। जो भी कोई

4. भिक्षु या भिक्षुणी संघ में भेद उत्पन्न करेगा उसे श्वेतवस्त्र धारण कराकर एकान्त स्थान में

5. रखा जाएगा यह आज्ञा भिक्षु संघ तथा भिक्षुणी संघ को बतला देना चाहिए।

6. इस प्रकार देवताओं के प्रिय ने कहा। इस प्रकार का एक लेख आप लोगों के समीप इकट्ठा होने के स्थान पर होना चाहिए।

7. और इसी प्रकार का एक लेख उपासकों (गृहस्थों) के पास रखें। वे उपासक भी प्रत्येक उपवास के दिन आवें।

8. इस शासन में विश्वास करें। उपवास के दिन निश्चय ही प्रत्येक महामात्र उपवास के लिए

9. आयेगा। इस आज्ञापन में विश्वास करने और इसे अच्छी तरह जानने के लिए और जितना आप लोगों का आहार-कार्य क्षेत्र है

10. सर्वत्र राजपुरुषों को भेजिए इस शासन का अक्षरानुसार पालन करने के लिए। इसी प्रकार सभी कोटों तथा विषयों में इस शासन के

11. अक्षरानुसार अधिकारियों को भेजिये।

2. (कौशांबी)

पंक्ति 1. (देवानं) ि (प)ये आनपयति

कोसंबियं महाम(ा)त

2. ....(स)म(गे क)टे

स(ं)घ्(ा)सि नो ल्(ा)हिये

3. ....(संघं भा)खति भिख(ु) व(ा) भिख (ु)नि

वा (से पि) चा

4. (ओ)दात(ा)नि दुसानि (स)नंघपयितु अ(नावा)स(ि)स (आ)व(ा)-

सयिय(े)

3. (सांची)

पंक्ति 1. ....

2. ...(य)ा भे(त)...[243]

...(घ) `[244] ...मगे[245] कटे

3. (भि)खून(ँ) च भि(खुन) िनं च (ा) ति (प) ुत-प-

4. (पो)तिके चं(द)म्(ा-सू)रि(यि)के

ये संघं

5. भ(ा)खति भिखु वा भिखुनि वा ओदाता-

6. नि दुस(ा)ि (न) सनं (धाप) ि (य)तु अना(वा)-

7. ससि वा(सा)पेतविय(`)

इछा हि मे किं-

8. ति संघे समगे चिल-थितीके सिया ति

4. (रानी का लेख)

पंक्ति 1. देवानंपियषा व्(ा)चनेना सयत महमता

2. वतविया

ए हेता दुतियाये देवीये दाने

3. अंबा-वडिका वा आलमे व दान-(गह) ` (व ए वा पि अ)ने

4. कीछि गनीयति ताये देविये षे नानि

(हे)वं ....(न) ...[246]

5. दुतीयाये देविये ति तीवल-मातु-कालुवाकिये

छ. स्मारक स्तंभ लेख

1. (रुम्मिनदेई)

पंक्ति 1. देवान(पि)येन पियदसिन लाजिन वीसति-वसाभिसितेन

2. अतन आगाच महीयिते हिद बुधे जाते सक्यमुनी ति

3. सिला विगडभी चा कालापित सिला-थभे च उसपापिते

4. हिद भगवं जाते ति

लुंमिनि-गामे उबलिके कटे

5. अठ-भागिये च

हिन्दी अर्थ

1. राज्याभिषेक के बीस वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा

2. यहाँ स्वयं आकर पूजा की गई क्योंकि यहीं बुद्ध शाक्यमुनि जन्म लिए थे।

3. यहाँ पत्थर की दृढ़ दीवार बनवाई गई और शिला-स्तम्भ खड़ा किया गया

4. क्योंकि यहाँ भगवान बुद्ध उत्पन्न हुए थे। अतएव लुम्बिनी ग्राम को करमुक्त किया गया

5. और अष्टभागी बनाया गया।

2. (निग्लीव)

पंक्ति 1. देवानंपियेन पियदसिन लाजिन चोदसवसा (भसि)-

त(े)न्(ा)

2. बुधस कोनाकमनस थुबे दुतियं वढिते

3. ... साभिसितेन[247] च अतन आगाच महीयिते

4. ....पापिते[248]

ज. गुफा लेख

1. (निग्रोध)

पंक्ति 1. लाजिना पियदसिना दुवाडस-(वसाभिसितेना)

2. (इयं निगोह-)कुभा दि(न अजीविकेहि)

हिन्दी अर्थ

1. बारह वर्ष अभिषिक्त होने पर राजा प्रियदर्शी द्वारा

2. यह निग्रोध गुफा आजीवकों को दी गई

2. (खलतिक पर्वत)

पंक्ति 1. लाजिना पियदसिना दुवा-

2. डस-वसाभिसितेना इयं

3. कुभा खलतिक-पवतसि

4. दिना (आजीवि)केहि

हिन्दी अर्थ

1. राजा प्रियदर्शी द्वारा

2. बारह वर्ष अभिषिक्त होने पर यह

3. गुफा खलतिक पवर्त में

4. आजीविकों को दी गई

3. (खलतिक पर्वत, सं. 2)

पंक्ति 1. लाज पियदसी एकुनवी-

2. सति-वसाि (भ)सि(त) ज(लघ)ो-

3. (सागम)थात (मे) इ(यं कुभा)

4. सुि (पय) ` ख.................[249] (दि) -

5. ना[250]

हिन्दी अर्थ

1. राजा प्रियदर्शी ने उन्नीस

2. वर्ष अभिषिक्त होने पर वर्षा काल

3. के उपयोग के लिए यह गुफा

4. सुन्दर खलतिक पर्वत पर दिया।

---

72 इस लेख की पहली पंक्ति में इस शब्द तक लेख उत्तरी वाचनाओं में नहीं मिलता। सिद्दपुर मे "हेवं च वतविया" गायब है।

73 मास्की में यहां "देव (ा) न (ं) पियस असोक् (ा) स" मिलता है।

74 आह या आहा दूसरी वाचनाओं में।

75 साति (र) केकानि रूप॰)।

76 रूप॰ य सुमि प्रकास (स) क (`)
वेरा॰ च हकं उपासके
सह॰ (अ) उपासके सुमि।
मास्की अं सु (ि) म बु (घ) शके।

77 उत्तर की वाचनाओं में कालक्रम की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण "एकं सवछरं" गायब है।

78 संवछरे के लिए भूल से।

79 उपगते (मास्की) ; उपयाते (बैरा॰) ; उपेते (रूप॰)।

80 रूप॰ या (इ)माय कालाय जंबुदिपसि
सह॰ (एतेन च अंत) लेन जंबुदीपसि मास्की पुरे जंबू....(ि)स
रूप॰
अमिसा देवा हुसु ते दानि (ि)मस(ा) कटा।
सह॰
अंमिसं–(दे)वा संत मुनिसा ि (म) सं–देव (कटा)
मास्की (ये अमिसा देवा हुसु) ते दा(ि)न मिसिभूता।

81 बैराट (नो) हि ए(स) ` म(ह)तनेव चकिये।
मास्की न हेवं दखितविये (उडा)लके व इम अधिगछ (`) या

82 मास्की में इस शब्द के स्थान पर "धम–युते(न)" शब्द का प्रयोग हुआ है जो बड़ा सारगर्भ है। जो शब्द यहां लिखा है वह भूल से पकममीणेण के लिए लिख दिया गया है।

83 मास्की में यहां अठे शब्द है।

84 अधिगतवे (मास्की)

85 रूप॰ एतिय अठाय च सावने कटे।

86 रूप॰ ख(ु)दका च उडाला।

87 रूप॰ और सिद्द॰ में 'अटा' रूप मिलता है।

88 मे के लिए गलती से।

89 जानंतु (रू॰ , स॰ और बै॰)।
मास्की का भिन्न पाठ है : (खदुक) `(च)(उड)ालके च वतविया हेवं वे कलंतं भ(दक) ` (से अठे ति से अठे चिरथिि)टक(`) च व(ढि)सिति चा दिय(ढि)यं हे(वं) ति; "जो लोग छोटे हैं या बड़े उनसे कहना : 'यदि आप ऐसा करेंगे तो शुभ (होगा) और चिरस्थायी होगा और फिर डेढ़ गुनी वृद्धि होगी" (हुल्ट्श)।

90 पकमे (सिद्द॰) ; पलाकमे (सह॰) ; पकरा (रूप॰)।

91 रूप॰ सवर विवसेतवा(य) ति
सार॰ सवत विवासयाथ तुफे एतेन वियंजनेन

92 रूप॰ व्य(ु)ठेना सावने कटे 200 50 6 सत विवासा त।
सह॰ इयं (च सवने) ि(व)वुथेन दुवे सपंना लाति–सता विवुथा ति 200 50 6.

93 यथारहं जटिंग-रामे॰ में
94 यह शब्द खरोष्ठी लिपि में लिखा है।
95 जैसा डॉ॰ बेणी माधव बरुआ ने कहा है लेख के फलक में यह शब्द दिसेयो मालूम पड़ता है (इ॰ हि॰ क्वा॰, 2, 88)।
96 जैसा बरुआ ने दिखलाया है (वही) इसे वितवे पढ़ना चाहिए।
97 हुल्ट्श के फलक में यह अंश "भिखुपो ये चा भिखुनि ये चा," "बहुत लोग जो भिक्षु हैं या भिक्षुणी हैं" मालूम पड़ता है। यह बात बरुआ की बतलाई है (वही)।
98 एतेना के लिए भूल से।
99 जौगड़ में "देवानंपिये हेवं आहा : समापायं महामात नगलवियोहालक हेवं वतविया।"
100 पूरा रूप सव-मुनिसेसु होगा।
101 पूरा रूप पापुनाति होगा जैसा जौगड़ में है।
102 जौगड़ में बहुक अर्थात् बहुधा, अक्सर।
103 जौगड़ में अन्ये च (व)गे बहुके।
104 वेदयति (जौ॰)।
105 किति के लिए भूल से।
106 उथाय(ा) (जै॰); उगछ उगछे के लिए भूल से।
107 एतविये पि नी(ि) तयं (जौ॰)।
108 णिझप(े)त(वि)ये (जौ॰)।
109 जौ॰ में एतं।
110 जौ॰ में अनुतिसं।
111 जौ॰ में "महामत नग लवियोहालक" है।
112 पूरा पाठ है एन जनस; जौ॰ में 'एन (मुनि)स(ानं)' है।
113 इसे महामातं पढिये
114 जौ॰ में यहां एक शब्द और है 'अनु(स)यान'।
115 जौ॰ में यहां ये शब्द है "महामात(ं) अचंड(ं) अफंल(ुस)ं त"।
116 जौ॰ में यहां शब्द है "...वचनिक्(ा)"=शायद लाजवचनिक जो कि दूसरे कलिंग चट्टान लेख, जौगड़ में है।
117 धौ॰ का पाठ है : 'देवानंपियस वचनेन तोसलियं कुमाले महामाता च वतिवय'।

118 अंतिम पाठ शब्द भूल से पुनः लिखे गए हैं। लिपिकार ने ऐसी भूलें कम ही की हैं (मिला० लिपिकरापराधेन, च० ले० 14)

119 शायद एतका के लिए भूल से।

120 दुखं के लिए जैसा धौ० में है।

121 धौ० में इस शब्द के लिए 'देवानंपिये अफाका ति' है।

122 अनुसासितु के लिए भूल से

123 वेदितु के लिए भूल से

124 धौ० के लेख में अंतिम छह शब्द नहीं मिलते।

125 धौ० में 'देसावुतिके' पाठ है जो देसायुतिके के लिए भूल से लिखा है।

126 धौ० में पटिबला।

127 धौ० में एहथ।

128 समयं के लिए भूल से।

129 धौ० में इस शब्द के बाद 'तिसेन नखतेन' पाठ भी है।

130 धौ० में यहां पाठ–भेद है : 'कमं चु खणसि खनसि अंतला पि तिसेन'।

131 इस शब्द के बाद जौ० में 'खेपिंगलसि पवतसि' और धौ० में '...(सि पव)तसि' है।

132 साधु–मता (गिर०)।

133 पुलुवं (जौ०)।

134 अज (गिर०, धौ. और जौ०)।

135 ती (गिर०), तिनी (काल०)।

136 आर भरे (गिर०)।

137 मोरा (गिर०), मजूला (जौ०)।

138 विजितसि (काल०), विजिते (शाह०)।

139 अंता (काल०), अत (मा०)।

140 अन्यत्र पंडिया।

141 सातियपुतो (काल०), सतियपुत्रो (शाह०)।

142 केरलपुत्र (मा०), केललपुतो (काल०), केडरपुत्रो (शाह०) के लिए भूल से।

143 अन्यत्र सामंता।

144 वूत (शाह०)।

145 शाह० में यहां से प्रारम्भ कर पंक्ति 8 में पंथेसू शब्द तक लेख नहीं है।

146 अन्यत्र मगेसु।

147 अन्यत्र उदुपानानि।

148 लुखानि (काल०, धौ० और जौ०), रुछनि (मा०)। शाह० में यहां से तीन शब्द नहीं हैं।

149 पटिभोगाये (काल०, धौ० और जौ०)।

150 निक्रमतु (शाह० और मा०), निखमंतु (काल०), निखमावू (धौ० और जौ०)।

151 धौ० और जौ० में जीवेसु।

152 अन्यत्र अपभंडता।

153 समास के दोनों शब्द अन्यत्र उलट गए हैं।

154 शाह० में जोति-कंधनि।

155 धौ० में समन-बाभनेसु।

156 वुढ-सुसूसा (धौ०), वुढनं सुश्रुष (शाह०)।

157 नताले चा पनातिक्या चा (काल०)।

158 आ कपं (धौ०), आव-कपं (काल०)।

159 शाह० में स्रेठं।

160 शाह० में निपिस्तं।

161 अलोचयिसु (काल०, मा०, धौ० और जौ०)।

162 निपेसितं (शाह०)।

163 शाह० में 'मे अपच व्रक्षंति' है।

164 हापयिसति (काल० और धौ०)।

165 कछंति (काल० और धौ०)।

166 यहां गिर० का पाठ है 'सुकरं हि पाप'।

167 गंधारानं (गिर०)।

168 रिस्टिक-पेतेणिकानं (गिर०); रठिकनं पितिनिकनं (शाह०); लठिक पितेनिकेसु (धौ०)।

169 अपरंत (शाह०) आपलंता (धौ०)।

170 महालकेसु (धौ०)।

171 अपरिगोधाय (गिर०), अपलिगोध (शाह०)।

172 पजाव (काल०)।

173 थैरेसु (गिर०)।

174 पाटलिपुते च (गिर॰)।
175 धौ॰ में 'सवेसु सवेसु' है।
176 इस शब्द और इससे अगले शब्द के बीच धौ॰ में 'मे ए वा पि' भी हैं।
177 भातीनं (धौ॰); भतुन के लिए भूल से भतन।
178 भगिनीनं (धौ॰)।
179 धंम-निस्रितो (गिर॰)।
180 धौ॰ में 'सव-पुठवियं' है।
181 अन्यत्र लिपि।
182 शाह॰ में निपिस्त।
183 शाह॰ में निपिस्त।
184 पूरा पाठ है 'देवानंप्रियो पियदसि'।
185 पढ़िए 'पुर्व'।
186 पूरा पाठ सवे काले।
187 अदमानसा (काल॰), अशमनस (शाह॰), अशतस (मा॰)।
188 धौ॰ और जौ॰ में 'मे अंते ओलोघनसि' पाठ है।
189 जौ॰ में 'प्रटिवेदयंतु मे ति'।
190 शाह॰ और मा॰ में अहं।
191 काल॰, धौ॰ और जौ॰ में सावकं।
192 काल॰, धौ॰ और जौ॰ में अतियायिके।
193 काल॰, मा॰, धौ॰ और जौ॰ में होति।
194 शाह॰ में अनंतरियेन।
195 शाह॰ में भूल से पांचवी पंक्ति में सर्वत्र शब्द से लेकर यहां तक की इबारत फिर से लिख दी गई है।
196 धौ॰ और जौ॰ में 'हेवं मे अनुसये' पाठ है।
197 अन्यत्र -सव-लोक-हितेन' पाठ है।
198 अन्यत्र येहं और शाह॰ मं व्रचेयं पाठ है।
199 काल॰, धौ॰ और जौ॰ में कानि, शाह॰ में ष और मा॰ में षे।
200 शाह॰ में स्पग्रं।
201 काल॰ और मा॰ में से =अभी, अब।
202 शाह॰ में 'ध्रम निपिस्त'।
203 'चिरथितिक भोतु' (शाह॰), 'चिल-ठितिक्या होतु' (काल॰)।

204 पढ़िये प्रियद्रशि।
205 अन्यत्र बाढं।
206 ञयासु (गिर॰)।
207 अहुंसु (गिर॰), हुसु (काल॰), हुवंति नं (धौ॰, जौ॰)।
208 अयाय (गिर॰)।
209 संबोधिं (गिर॰)।
210 बाम्हण-समणानं (गिर॰)।
211 थैरानं (गिर॰)।
212 अभिलामे (धौ॰ और जौ॰)।
213 कालसी के व्याकरण के अनुसार उपदान का सप्तमी का रूप '-असि' में अंत करना चाहिए। अतः यह पजोपदाये होना चाहिए जैसा कि धौ॰ जौ॰ और गिर॰ में 'पुत्र-लाभेसु' रूप मिलता है।
214 महिड़ायो (गिर॰), स्त्रियक (शाह॰), इथी (धौ॰)।
215 छुदं (गिर॰), पुतिक (शाह॰)।
216 कटविये के लिए भूल से।
217 ततेत (गिर॰), अत्र (मा॰), ततेस (धौ॰)।
218 गिर॰ में सामान्य रूप 'बम्हण-समणानं' ही है।
219 इस विराम चिन्ह को सेनार्ट और बुइलर तं पढ़ते हैं।
220 स्पइकेन (शाह॰ और मा॰)
221 निस्तानाय (गिर॰), निफतिया (धौ॰)।
222 निवटेति (मा॰) के लिए भूल से।
223 अथ (शाह॰) के लिए भूल से।
224 पुनं पसवति के लिए भूल से।
225 पढ़िये पुंनम्।
226 कालसी में पाठभेद तीसरी पंक्ति में निवुतिया शब्द से शुरू होता है। धौली और जौगड़ के पाठ गिरनार के आधार पर ही लिखे गए हैं।
227 दानं के लिए भूल से।
228 अस्ति के भूल से।
229 अनुगहो के लिए भूल से।
230 ञातिकेन के लिए भूल से।
231 सहायेन के लिए भूल से।

232 साधु के लिए भूल से।
233 पियदषि के लिए भूल से।
234 गिर॰ में महाथावहा।
235 गिर॰ में तदात्पनो दिघाय।
236 एतकाये के लिए भूल से
237 इछति के लिए भूल से
238 पलकमति के लिए भूल से।
239 गिर॰ में पारत्रिकाय।
240 पलिषवे के लिए भूल से।
241 गिर॰ में जनेन।
242 गिर॰ में तत इदं भवति है।
243 –संस्तुतेन के लिए भूल से।
244 संस्कृत प्रसव्यते; गिर॰ में भवति है।
245 विविधाय के लिए भूल से।
246 तेन के भूल से।
247 शाह॰ और मा॰ में अकरेन।
248 काल॰ और मा॰ में बढं।
249 शाह॰ में क्षणति।
250 करोतो के लिए भूल से। शाह॰ में यहां से पांच शब्द भूल से फिर से लिखे गए हैं।
251 शाह॰ में सयमो।
252 बहुका के लिए भूल से।
253 एतायाठाये (का॰)।
254 इथिधियख– (का॰); इस्त्रिधियक्ष – (शाह॰); इस्त्रिजक्ष– (मा॰)।
255 व्रच (मा॰)।
256 काल॰ में कलिग्या विजिता।
257 सत–सहस्र–मात्रम् (गिर॰)।
258 तत्रा हतं (गिर॰)।
259 धंमवायो (गिर॰)।
260 यहां सभी वाचनाओं में ब्राह्मण श्रमण से पहले आता है।
261 गिहिया (काल॰)।

262 उपघाते (काल॰)।

263 विनिखमण (गिर॰)।

264 सिनेहो के लिए भूल से।

265 यहां कालसी (और मा॰ में) निम्नलिखित पाठभेद है। नथि चा षे जन्(ा) पदे यता नथि इमे निकाया आनता य(ो)नेष(ु) । बंह्म ने च(ा) षमने-चा नथि चा कुवापि जन्(ा)पदषि (य)ता न्(ा)थि म्(ा)नुषान्(ा) एकतल(ि)ष पि पाषडषि।

266 यावतको (गिर॰)।

267 अनुनिझपेति के लिए भूल से; मा॰ में अनुनिझपयति पाठ है।

268 मादव (गिर॰)।

269 अंतियोगेना (काल॰)।

270 मादव (गिर॰)।

271 मगा (गिर॰)।

272 राज-विसयम्हि (गिर॰)।

273 नाभक-नाभपंतिषु (काल॰ और मा॰)।

274 पारिंदेसु (गिर॰); पालदेषु (काल॰)।

275 यंति (काल॰ और मा॰)।

276 विजेतव्यं (गिर॰), विजयतविय (काल॰)।

277 सरसके (गिर॰), षयकषि (काल॰)।

278 छाति (गिर॰)।

279 विजयं के लिए भूल से।

280 गिरनार के पाठ में बाईं ओर दो कटी-पिटी लाइनें हैं। पहली पंक्ति में हुल्ट्श ने त(े ष) शब्द पढ़ा है। इसे वे प्रसिद्ध बौद्ध मंत्र 'हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत्। तेषां च' आदि का एक अंश मानते हैं। दूसरी पंक्ति में वे ि(पप)ा अक्षर पढ़ते हैं। उनका अनुमान है कि इसके बाद लिपिकरेण शब्द रहा होगा। इसी पाठ में दाईं ओर ये शब्द हैं - (स)र्व-स्वेतो हस्ति सर्व-लोक-सुखाहरो नाम', 'पूरा सफेद हाथी, सबके लिए सुख लाने वाला।'

281 ध्रम-दिपि (शाह॰ और मा॰)।

282 प्रिशि(न) (शाह.)। प्रियद्रशिन के लिए भूल से।

283 शाह॰ में निपेसपित।

284 विस्ततेन के लिए भूल से; विथटेना (काल० और जौ०); विस्त्रिटेन (शाह०)।

285 हि=के लिए, दूसरे पाठों में।

286 शाह० में गटिते, जो घटिते के लिए भूल से लिखा है।

287 काल० में इसके बाद निक्यं=नित्यं शब्द है।

288 काल० में एत कं के स्थान पर हेता शब्द है। शाह० और मा० में अत्र है।

289 लपितं (शाह०)।

290 काल० शाह० और मा० में येन।

291 तत्र एकदा के ये भेद हैं :

काल० षे षाया अत (f)कछि

शाह० सो स्रिया व अत्र किछे

धौ० और जौ० ए पि चु हेत असमति

292 दिषा (का०), देशं (शाह०)।

293 संखय (शाह० और मा०) ; षंखेये (काल०)।

294 दिपिकरस व अपरधेन (शाह०)।

295 निझपयितवे (बिहार के तीन स्तंभ लेखों में)।

296 अजका नानि (अन्य तीन पाठों में)।

297 इसे अवधिया पोतके पढ़िये।

298 तिसा = तिष्या से। अन्य पाठों में तिसि से बने तिसियं शब्द का प्रयोग होता है।

299 बिहार के पाठों में किंमं।

300 अंतलं के लिए भूल से।

301 पूरा पाठ यथा पुलिसा।

302 अर्थात् धंम–सावने।

303 पूरा पाठ लहुके चु।

304 पूरा पाठ सव–पासंडेसु।

305 पूरा पाठ ते ते महामाता।

306 बुइलर के मत से पटीपादयंति; पटीवेदयंतु।

307 पढ़िये पियदसि।

308 पढ़िये–पिये पियदसि।

309 पढ़िये बहुकानि।

310 पढ़िये देवानंपिय।

311 अर्थात् पाटलिपुत्र।

312 वोयर ने पूरा किया 'न सकिये'।

313 वेनिस ने पढ़ा।

314 पढ़िये, भेतवे, जैसा सारनाथ लघु स्तंभ लेख की तीसरी पंक्ति में है।

315 पढ़िये संघे।

316 पढ़िये समगे, जैसा आठवीं पंक्ति में है।

317 हुल्ट्श ने पूरा किया विनती=सं. विज्ञप्ति।

318 बुहलर ने पूरा किया वीसति वसाभिसितेन जैसा रूम्मिनदेई के लेख की पहली पंक्ति में है।

319 रुम्मिनदेई में तीसरी पंक्ति के बाद बुइलर ने पूरा किया सिला-थभे च उसपापिते।

320 पढ़िये खलतिकपवतसि।

321 लेख के अंत में स्वस्तिक और छुरे की आकृतियाँ बनी हैं जिसके नीचे मछली की आकृति है। वी. एच. जैक्सन ने चौथी पंक्ति को यों पढ़ा है 'सुपिये ख आजीविकेहि दि-' (ज॰ वि॰ उ॰ रि॰ सो॰, 12, 52)। उनका कहना है कि खाली जगह में पाँच अक्षरों के लिए ही स्थान है न कि दस अक्षरों के लिए जैसा हुल्ट्श का अनुमान है।

Priyadarshi Emperor Ashoka's Seventh Edict

(Topara-Delhi)

'इमे वियापटा होहंति ति निगंठेसु[322] पि मे कटे इमे वियापटा होहंति। नानापासंडेसु पि मे कटे इमे वियापटा होहंति ति पटीविसठं पटीविसठं तेसु तेसु ते-ते महामाता धम महामता चु मे एतेसु चेव वियापटा सवेसु च अंनेसु पासंडेसु देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा।'

अशोक राधाकुमुद मुखर्जी, पृ. सं. 209

Translation :- I have so organised that they (Senior Ministers for Religious affairs) will make arrangement for Nirgranthas (Digambar Jains) and for various other faiths. I have appointed many senior Ministers to look after various categories of mankind (society) and also have assigned them many specific tasks; but I have appointed 'Senior Ministers for Religious Affaires' for these as well as for all other faiths. Thus speaks the Ruler-the belovede of the Gods.

(1) निर्ग्रन्थ-

यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्था निष्परिग्रहः। -(जावालोपनिषद्, पृष्ठ 130)

यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्थः। -(तैत्तिरीय आरण्यक, 10/83)

निर्ग्रन्थ-एतेन मूलसंघादि दिगम्बराः। -(आचार्य हरिभद्रसूरि, 'प्रशमरति प्रकरण' 9/42)

निर्ग्रन्थ भदन्तेति प्रयोक्तृभिः -(भरतनाट्यशास्त्र 17-7)

यानि - नाट्यशास्त्र में निर्देश देना पड़ा कि निर्ग्रन्थ-दिगम्बर मुनि के साथ 'भदन्त' भगवान् संबोधनपूर्वक अत्यन्त आदर के साथ संभाषण करना चाहिए।

(1) Nirgrantha –

They of form (appearance) as when born-Nigranthas, devoid of possessions. -(Javalopanishad, P. 130)

Of form (appearance) as when bron-Nigrantha.

-(Taittareeya Aaranyak, 10-83)

'Nigrantha-Those Digambars from the Mulasangh and other orders of monks'

-(Acharya Haribhadrasuri, Prashamarati Prakaran, 9èk42)

The doctrine of the Tirthankars from the first Tirthankar Lord Rishabdev to Tirthankar Lord Mahavir-Vardhaman were held in esteem in ancient India. Rishabdeb and Vardhaman are also referred to as 'Jina' and 'Nirgrantha'. Those who worship Nigranthas are also called 'Jaina'.

(2) Dharma Mahamatya-Senior Ministers for Religious affairs-

Senior Officials during Emperor Ashoka's regime who looked after religious matters and tasks propagated by him.

---

322 The 'Nigrantha' implied 'Digambar Jain

सम्राट् खारवेल शिलालेख, उत्कल (उड़ीसा)

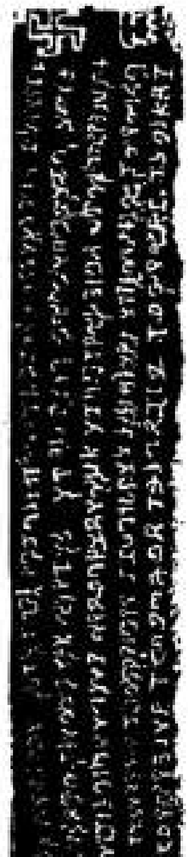

लिपि ब्राह्मी, भाषा औड्रमागधी, समय ई.पू. दूसरी शताब्दी

णमो अरिहंतानं णमो सवसिधानं ऐरेण महाराजेन महामेघवाहनेन चेतिराजवसवधेन ....
कलिंग के खारवेल सम्राट् महामेघवाहन तथा उनके राज्यकाल के तेरहवें वर्ष में
(दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व)उदयगिरी में उनका जैन सम्मेलन हुआ ....

King Mahameghevahana Kharvela of Kalinga and his Jaina council held at Udayagiri in the 13th year of his reign (2nd Century B.C.)

(89th Inter-Parliamentary Conference), 1979

'ब्राह्मीलिपि प्रवेशिका' प्रकाशक-कुन्दकुन्द भारती प्राकृतभाषा शोध-संस्थान नई दिल्ली से साभार उद्धृत।

कलिंग चक्रवर्ती खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख प्रशस्ति का मूलपाठ

डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल

मूलपाठ

(पंक्ति 1) नमो अरहंतानं (।) नमो सवसिद्धानं (।) ऐरेन[323] महाराजेन महामेघवाहनेन चेतिराजवसवधनेन[324] पसथ-सुभलखनेन[325] चतुरंतलुठितगुनोपहितेन[326] कलिंगाधिपतिना सिरिखारवेलेन।

संस्कृतपाठ

नमोऽर्हद्भ्यः (।) नमः सर्वसिद्धेभ्यः (।) ऐलेन महाराजेन महामेघवाहनेन चेदिराज[2] वंशवर्धनेन प्रशस्तशुभलक्षणेन चतुरंतलुठितगुणोपहितेन[3] कलिंगाधिपतिना श्रीक्षारवेलेन।

हिन्दीपाठ

अरहंतो को नमस्कार। सब सिद्धों को नमस्कार। ऐर (ऐल) महाराज, महामेघवाहन (महेन्द्र) चेदिराजवंशवर्धन, प्रशस्त शुभ लक्षणवाले, चतुरन्त पहुँचे हुए गुणवाले कलिंगाधिपति श्रीखारवेल ने।

मूलपाठ

(पंक्ति 2) पंदरसवसानि सिरि कडारशरीरवता क्रीड़ता कुमार क्रीड़िका (।) ततो लेख-रूप-गणना-ववहारविधि-विसारदेन सवविजावदातेन नव वसानि योवराजं

(प) सासितं (।) संपुंण चतुवींसतिवसो तदानि वधमानसेसयो वेनाभिविजयो[327] ततिये।

संस्कृतपाठ

पञ्चदशवर्षाणि श्रीकडारशरीरवता क्रीड़िताः कुमारक्रीड़ाः (।) ततो लेख्यरूपगणना–व्यवहारविधिविशारदेन सर्वविद्यावदातेन नव वर्षाणि यौवराज्यं प्रशासितम् (।) सम्पूर्ण चतुर्विंशतिवर्षस्तदानीं वर्धमानशैशवो वेनाभिविजय[328] स्तृतीये।

हिन्दीपाठ

पन्द्रह वर्ष तक श्रीकडार (गौर वर्ण वाले) शरीर से लड़कपन के खेल (कीड़ाएँ) खेले। तिसके बाद

लेख्य (सरकारी हुक्मनामे) रूप (टकसाल) गणना (सरकारी हिसाब–किताब, आय–व्यय) कानून (व्यवहार) और धर्म (विधि) (शास्त्र) में विशारद होकर वर्ष विद्यावदात (सब विद्याओं से परिशुद्ध) उन्होंने) युवराज पद पर नौ वर्ष तक शासन किया। तब चौबीस वर्ष पूरे हो चुकने पर (आप) जो बचपन ही से वर्धमान हैं, जो अभिविजय में वेन (राजा) है, तीसरे।

मूलपाठ

(पंक्ति 3) कलिंगराजवंस–पुरिसयुगे महाराजाभिसेचनं पापु–
नाति (।) अभिसितमतो च पथमे वसे वात–विहत गोपुर–पाकारनिवेसनं पटिसंखारयति (।) कलिंगनगरि खबीरं [329] (इ) सि–ताल–तड़ाग[330] पाडियो च वंधापयति (।) सबूयान पटिसंठपनं च।

संस्कृतपाठ

कलिंगराजवंशपुरुषयुगे महाराजाभिसेचनं प्राप्नोति (।) अभिषिक्त[331] मात्रश्च प्रथमे वर्षे वातविहतं गोपुर प्रतिसंस्कारयति (।) कलिंगनगर्याम्[332] खिबीरविं तल–तड़ाग–पालीश्च बन्धयति (।) सर्व[333] प्रतिसंस्थापनं च।

हिन्दीपाठ

पुरुषयुग में (तीसरी पीढ़ी में) कलिंग के राजवंश में, महाराज्याभिषेक को प्राप्त हुए। (अभिषेक होते ही) प्रथम (राज्य) वर्ष में तूफान से गिरे हुए (राजधानी के) फाटक और शहर-पनाह की इमारतों की मरम्मत कराई। कलिंग नगरी (राजधानी) में ऋषि खिबोर के ताल-तड़ाग बांध बंधवाए, सब बागों की मरम्मत।

मूलपाठ

(पंक्ति 4) कारयति (॥) पनतीसाहि सतसहसेहिं पकतियो च रंजयति (।) दुतिये च वसे अचिंतयिता सातकणिं पछिम दिसं हयगजनररधबहुलं दंडं पठायति (।) कन्हवेनां[334] गताय च सेनाय वितासितं[335] मुसिक नगरं (।)[336] ततिये पुन वसे।

संस्कृतपाठ

कारयति (॥) पञ्चत्रिंशतिद्भ[337] शतसहस्रैः प्रकृतीश्च रंजयति (।) द्वितीये च वर्षे अचिन्तयित्वा शातकर्णिं पश्चिमदेशं हय-गज-रथ-बहुलं दण्डं प्रस्थापयति (।) कृष्णवेणां[338] गतया च सेनया वित्रासितं मूषिकनगरं (।)[339] तृतीय पुनर्वर्षे।

हिन्दीपाठ

कराई (।) पैंतीस लाख प्रकृति (रिआया) का रंजन किया (।) दूसरे वर्ष में शातकर्णि राजा की कुछ परवाह (चिन्ता) न करते हुए पश्चिम दिशा (पर चढ़ाई) करते हुए) घोड़े-हाथी-पैदल रथवाली बड़ी सेना भेजी। कान्हवेण (कृष्ण वेणा नदी) पर पहुंची। सेना से मूषिक-नगर को बहुत त्रस्त किया। फिर तीसरे वर्ष।

मूलपाठ

(पंक्ति 5) गंधव-वेदबुधो दंप-नतगीत-वादित संद नाहि[340] उसव समाज कारापनाहि च कोडापयति[341] नगरिं (।) तथा

चवुथे वसे विजाधराधिवासं अहतपुवं कलिंगयुवराज निवेसितं .... वितध–मकुट–सबिल मढिते[342] च निखित छत।

संस्कृतपाठ

गन्धर्ववेदबुधो दम्प[343] (एस) नृत्य–गीत–वादित्र–सन्दर्शनैः उत्सव–समाज कारणैश्च[344] कीड़यति नगरीम् (।) तथा चतुर्थे वर्षे विद्याधराधिवासम् अहतपूर्वं कलिंग–पूर्व–राजनिवेशितं ... वितध मकुटान्[345] सार्धित बिल्माश्च निक्षिप्त–छत्र।

हिन्दीपाठ

(आप) गन्धर्ववेदपण्डितों ने दम्प (डफ) नृत्य–गीत–वादित्र (बाजे) के संदर्शनों (तमाशों) से उत्सव, समाज (नाटक दंगल आदि) कराते हुए नगरी को खेलाया। तथा चौथे वर्ष विद्याधराधिवास को, जिसे कलिंग के पूर्वराजाओं ने बनवाया था और कभी गिरा. ...., व्यर्थ जिनके मुकुट हो गए हैं, जिनके जिरहबख्तर दो पल्ले काटकर गिरा दिग गए हैं जिनके छत्र ....

मूलपाठ

(पंक्ति 6) भिंगारे हित रतन–सापतेये[346] सवरठिक भोजके पादे वंदापयति (।) पंचमें चेदानी बसे नंदराज–ति–बस–सत ओघाटितं तन सुलिय वाटा पनाडि नगरं पवेस (य) ति (।) सो ....भिसितौ च राजसूय (`) संदसयंत्तो सवकर वणम्

संस्कृतपाठ

श्रृंगारान्[347] हृत–रत्न–स्वापतेवान्[348] सर्वराष्ट्रिक–भोजकान् पादाभिवादयते[349] (।) पञ्चमे चेदानीं वर्षे नन्दराजस्य

त्रि–शत–वर्षे अवघट्टिता[350] तनस्रलियवाटात्[351] प्रणालीं नगरं प्रवेशयति (।) सो (ऽपि च वर्षे षष्ठे) ऽभिषिक्तश्च राजसूयं[352] संदर्शयन् सर्व–कर–पणम्[353]

हिन्दीपाठ

और शृंङ्गार (राजसी चिह्न सोने चाँदी गडुए झारी) छीन लिए गए हैं, रत्न और स्वापतेय (धन) जिनके, (ऐसे) सब राष्ट्रिक भोजकों से अपने चरणों में वंदना करवाई। अब पाँचवें वर्ष में नन्दराज के 103 वर्ष (संवत्) में खोदी गई नहर (।) को तनसुलिय वाट (सड़क या बाड़े) से राजधानी के अन्दर ले आए। (छठे वर्ष में) अभिषिक्त हो राजसूर्य दिखलाते हुए कर (टिक्स) के सब रुपैये।

मूलपाठ

(पंक्ति 7) अनुगह अनेकानि सतसहसानि विसजति पौरं जानपदं सतमं च वसे पसासतो वजिरघरव (ँ) ति धुसित घरिनी स (-मातुकपद) पुना (ति ? कुमार) .... (।) अठमे च वसे महता सेना ..... गोरधगिरि

संस्कृतपाठ

अनुग्राहन् अनेकान्[354] शतसहस्र[355] विसृजति पौराय जानपदाय[356] (।) सप्तमे च वर्षे प्रशासतो वज्रगृहवती धुषिता गृहणी (सन्मातृपदं प्राप्नोति ?) (कुमारं) ....(।) अष्टमे च वर्षे महती सेना.......... गोरत्थगिरिम्

हिन्दीपाठ

छोड़ दिए, अनुग्रह (नए हक) अनेकों लाखों पौर जानपदों बख्शे (।) सातवें वर्ष में राज्य करते हुए (आप) गृहणी वज्र पर (कुल) वाली घुषिता (नामवाली या प्रसिद्ध) मातृपदवी को प्राप्त हुई (?) (कुमार) (?) ...... आठवें वर्ष में महा ....सेना.....गोरथगिरि को. ....।

मूलापाठ

(पंक्ति 8) घातापयिता राजगहं उपपीड़ापयति (।) एतिनं कम्पापदान[357] संनादेन संवित-सेन्य-वाहिनो[358] विपमुंचितु मधुरं

अपयातो यवनराज डिमित ...... (मो?) यच्छति (वि) .... पलव

संस्कृतपाठ

घातयित्वा राजगृहमुपपीड़यति (।) एतेषां च कर्मावदान-संनादेन संवीत सैन्यवाहनो[359] विप्रमोक्तुं मथुरामयातो यवनराजा डिमित .... (मो?) गच्छति (वि) .... पल्लव

हिन्दीपाठ

को तोड़ कर राजगृह को घेर दबाया। उनके कर्मों के अवदान (वीर कथा) से सन्नाद से यूनानी राजा डिमित (डिमेट्रिक) अपनी सेना और छकड़े (कम-सरियट) बटोरते हुए मथुरा त्यागने को पीछे पैर किए। नवें वर्ष (आप श्रीखारवेल) देते हैं ....पत्तों ....(से भरे हुए)

मूलापाठ

(पंक्ति 9) कपरुखे हय-गज-रथ-सहयत्ते[360] सवयरावास[361] परिवसने स अगिणठिया (।) सब गहने च कारयितुं बम्हणाने जातिं[362] परिहारं ददाति। (।) अरहतो[363] ..... ब..... न.......... गिव।

संस्कृतपाठ

कल्पवृक्षान्[364] हय-गजरथान् सयंतृन् सर्वगृहावास परिवसनानि साग्निष्ठिकानि (।) सर्वग्रहणं च कारपिलुं ब्राह्मणानां जातिं परिहारं ददाति (।) अर्हत .... व[365] ....न.........गिया (?)

हिन्दीपाठ

कल्पवृक्ष, घोड़े हाथी रथ, रथ हांकने वालों समेत मकान शालाएं अग्निकुंडो सहित। इस सब को ग्रहण कराने के लिए ब्राह्मणों की जाति को जागीरें दीं। अर्हतके ....

मूलपाठ

(पंक्ति 10) .....(क)....मान (ति)........ रा (ज) संनिवास[366] महाविजयं पासादं कारयति। अठतिसाय सतसहसेहि (।) दसमे च वसे दंड संधि साममयो[367] भरथवस पठाने महिजवनं[368] ....ति कारापयति ..... (निरितय) उपातानं च मनि-रतना (नि) उपलभते (।)

संस्कृतपाठ

... (क) ... ि...मानति (?) राजसन्निवासैः महाविजयं प्रासादं कारयति अष्टात्रिशता शतसहस्त्रैः (।) दशमे च वर्षे दण्डसन्धिसामययो भारतवर्ष-प्रस्थाने[369] मही जयनं...ति कारयति ... (निरित्या ?) उद्याताना[370] च मणिरत्नानि उपलभते (।)

हिन्दीपाठ

शाही इमारत (राज संन्निवास) महाविजय (नामक) प्रासाद आपने अड़तीस लाख (पण, रुपैये) से बनवाया। दसवें वर्ष में दंड-संधि-साम (नीति) मय आपने मही जय करने भारतवर्ष को प्रस्थान किया ... जिन पर चढ़ाई की उनके मणि-रत्न प्राप्त किए।

मूलपाठ

(पंक्ति 11) ....०.........मंडं च अवराज निवेसितं[371] पीथड-गदभनांगलेन कासायति (ि) जनस दंभावनं च तेरसवस सतिक (०) तुभिदति तमरदेह संघातं[372] (।) वारसमे च वसे ...... हस....... के ...... ज........... सवसेहि वितासयति उतरापथ राजानो ....

संस्कृत पाठ

.......०......मण्डं च अपराजनिवेशतं पृथुल गर्दभ-लांगलेन कर्षयति

जिनस्य दम्भापनं त्रयोदश वर्षशतकं भिनत्रि (।) तामर–देह–संघातं (।) द्वादशेच वर्षे ....भिः वित्रासयति उत्तरापथराजान्।

हिन्दीपाठ

(११ वें वर्ष में) बुरे राजा (अपराजा) के बनवाए हुए मंड (बाजार या मंडप) को बड़े गदहों के हलसे जुतवा डाला। जिन (भगवान्) के प्रति दंभ कराने वाले एक सौ तेरह वर्ष वाले सीस (तमर) के मूर्ति–संघात को तोड़ डाला। बारहवें वर्ष में ...... उत्तरापथ के राजाओं को खूब त्रस्त किया।

मूलपाठ

(पंक्ति 12) मागधानं च विपुलं भयं जनेतो हथी सुगंगीय (ं)[373] पाययति (।) मागधं च राजानं बहसतिमितं च पादे वंदायति (।) नंदराजनीतं च कलिंगजिन[374] संनिवेसं ...... गहरतनान पडिहारेहिं[375] अंगमागध वसुं च नेयाति (।)

संस्कृतपाठ

मागधानां च विपुलं भयं जनयन् हस्तिनः सुगांगेयं पाययति (।) मागधं च राजानं बृहस्पतिमित्र पादावभिवादयतं (।) नन्दराजानीत च कलिंगाजिन सन्निवेशं ..... गृहरतानां प्रतिहाररागं मागध–वसूनि च नाययति (।)

हिन्दीपाठ

..... मगधवालों को एकदम भयभीत करते हुए हाथियों को सुगांगेय (प्रासाद) पर पहुंचाया और मगध के राजा बृहस्पतिमित्र को अपने पैरो गिरवाया (पैरों में वंदना करवाई) तथा राजा नंद के ले गए कलिंग जिन–मूर्ति को .... और गृहरत्नों को ले, बदला चुकाते हुए (प्रतिहारों से) अंगमगध का धन ले आए।

मूलपाठ

(पंक्ति 13) ......तु (̇) जठर-लिखितवरानि सिंहरानि निवेसयति सतवेसकिनं परिहारेण (।) अभुतमछरियं हथिनावन[376] परिपुरं सबदेन हय-हथी रतना (मा) निकं पंडराजा चेदानि अनेकानि मुतमणि रतनानि अपरहारयति इध सतो

संस्कृतपाठ

..... तु जठोल्लिखितानि वराणि भिखराणि विवेशयति शतवेशिकानां परिहोरण (।) अद्भुतमाश्चर्यं च हस्तिनावां पारिपुरं सर्वदेयं हयहस्ति-रत्न-माणिक्यं पाण्ड्य राजात् चेदानी मनेकानि मुक्तामणि रत्नानि आहारयति इह शक्तः

हिन्दीपाठ

..... भीतर से लिखे (खुदे) हुए सुन्दर या बड़े (वरानि)) शिखर बनवाए। साथ ही सौ कारीगरों को जागीरें दी। अद्भुत आश्चर्य हाथियों वाले जहाज भरे हुए, सब नजर, हय-हाथी-रत्न-मणिका पाण्डराजा के यहां से इस समय अनेक मोती मणि रत्न हरवा लाए यहां पर, इस शक्त (लायक, महाराज) ने

मूलपाठ

(पंक्ति 14) ....सिनो वसीकरोति (।) तेरसमे च वसे सुपवत विजयचक-कुमारीपवते अरहिते (य?) पखीण संसितेहि कायनिसीदीयाय[377] यापञवकेहि[378] राजमितानि[379] चिनवतानि[380] वसासितानि[381] (।) पूजायरत[382] उवास खारवेलसिरिना जीवदेहसिरिका[383] परिखिता[384] (।)

संस्कृपाठ

........सिनो वशीकरोति (।) त्रयोदशे च वर्षे सुप्रवृत्त विजयच्रके कुमारी पर्वते ऽ हितं प्रक्षीणसंसृतिभ्यः कायिकानिषीद्यां पापज्ञापकेभ्यः

राजभूतिश्चीर्णवता (एव?) शासिता (।) पूजायां रतोपासेन क्षारवेलेन श्रीमता जीवदेहश्रीकता परीक्षिता: (।)

हिन्दीपाठ

............सियो को वश किया। तेरहवें वर्ष में पूज्य कुमारी पर्वत पर जहां (जैनधर्म का) विजयचक सुप्रवृत्त है, प्रक्षीण-संसृति (जिन्होंने जन्म-मरण मिटा डाला है) कायनिषीदी (स्तूप) पर (रहने वालों) पाप बतलानेवालों (पापज्ञापकों) के लिए व्रत पूरे हो जाने पर मिलने वाली राजभृतियां कायम कर दी (शासित कर दी) पूजा में उपवास पूराकर खारवेलश्री ने जीव और देह की, श्री की परीक्षा कर ली (जीव देह परख डाला)

मूलपाठ

(पंक्ति 15) ....(सु) कतिसमण सुविहितानं (नुं?) च सत दिसानं[385] (नुं?) आनिनं तपसि इसिनं[386] संधियनं (नुं?) (;) अरहत निसीदिया समीपे पभारे बराकर-समुथापिताहि अनेक योजना-हिताहि प.......सि... ओ. .....सिलाहि[387] सिंहपथ रानिसि.....(ँ) घुडाय निसयानि

संस्कृपाठ

सुकृतिश्रमणानां सुविहितानां शतदिशानां तपस्विऋषीणां संघिनां (।) अर्हन्निषीद्या: समीपे प्राग्भारे बराकरसमुत्थापिताभिरनेकयोजनापहृताभि: ....शिलाभि: सिंहप्रस्थीयायै राज्ञ्यै सिन्धुड़ायै नि:श्रयाणि

हिन्दीपाठ

सुकृति श्रमण सुविहितशत दिशा के ज्ञानी तपस्वी ऋषी संघी लोगों का .... (।) अर्हत की निषीदी के पास, पहाड़ पर अच्छी खानियों से निकाल लाए हुए अनेक योजनों से आए गए ....पत्थरों से सिहप्रस्थवाली रानी सिंधुला के लिए निश्रय........

मूलपाठ

(पंक्ति 16) ....घंटालकतो[388] चतरे च वेड्रियगमे थंमे पतिठापयति (।) पानतरिया सत सहसेहिं (।) मुरिय[389] काल[390] वोछिन्नं[391] च चोयठि अंग[392] सतिकं [393] तुरियं उपादयति (।) क्षेमराजा स बड़राजा स भिखुराजा धमराजा पसंतो सुनंतो अनुभसंतो कालाणानि (।)

संस्कृतपाठ

..........घण्टालक्तः (?) चतुरश्च वैदूर्यगर्भान् स्तंभान् प्रतिष्ठापयति (।) पंचसप्तशत सहस्त्रैः मौर्यकाल व्यवच्छिन्नं चतुषष्टिकांगसप्तिकं तुरीयमुत्यदयति (।) क्षेमराजः सः वर्द्धराजः सः भिक्षुराजः धर्मराजः पश्यत् श्रृण्वन् अनुभवन् कल्याणानि (।)

हिन्दीपाठ

.........घंटायुक्त (?) और चार खंभे जिनमें वैदूर्य जड़े हुए हैं, स्थापित किये। पचहत्तर लाख (के खर्च) से। मौर्यकाल में उच्छिन्न चौसठी (चौसठ अध्याय वाले) अंग सप्तिक का चतुर्थ भाग फिर से प्रस्तुत करवाया इस क्षेमराजने वृद्धराजने भिक्षुराजने देखते सुतते, अनुभव करते हुए कल्याणों को (।)

मूलपाठ

(पंक्ति 17) गुणविसेस-कुसलो सब पाखंडपूजको सबदेवायतन संकारकारको (ऽ) प्रतिहत चकियाहिनिबलो चक्रधुरो गुतचक्को पवतचको राजसिवसकुल[394] विनिश्रितो[395] महाविजयो राजाखारवेलसिरि (।)

संस्कृतपाठ

........गुणविशेषकुशलः सर्वपाषण्डपूजकः सर्वदेवायतन-संस्कार-कारकः (ऽ) अप्रतहत-चक्रिवाहिनीबलः चक्रधरः गुप्तचक्रः प्रवृत्तचक्रः राजर्षिवंशकुल विनिःसृतो महाविजयो राजा क्षारवेलश्रीः

हिन्दीपाठ

हैं गुण–विशेषकुशल सब मजहवों को इज्जत देने वाले, सब (तरह के) देव मंदिरों की मरम्मत कराने, न रुकने वाले रथ और सैन्य वाले चक्र (राज्य) के चक्रधुर (नेता), गुप्त (रक्षित) चक्रवाले, प्रवृत्तचक्रवाले राजर्षिवंश विनिसृत महाविजय राजा खारवेलश्री (खारवेलश्री)।।

323 आर्येण (डॉ. सूबेसिंह राणा)
324 चेटराजवंशवर्धनेन (मुनि कल्याणविजय) चेति=चेदि=चेत=चैद्य।
325 लखणेन (बरुआ)
326 गुण–उपेतेन (बरुआ)
327 वधमान–सेसयोवनाभिविजयो (बरुआ)
328 वेण्याभिविजयः (डॉ. राणा)
329 (जायसवाल के साथ बनर्जी की भी सहमति है) खिबीर–इतिहास–तड़ाग
330 इसिताल–तड़ाग (वही)
331 अभिषिक्तवान् च (डॉ. राणा)
332 नगरीम् (वही)
333 सर्वोद्यान (डॉ. राणा)
334 कन्हवेणां (डॉ. राणा) ; कञ्ह (बनर्जी)
335 वित्रासिति (राणा)
336 असिकनगर (वही) (ख) बनर्जी
337 पञ्चत्रिशता (वही)
338 वेण्वा (वही)
339 वित्रायति (वही)
340 संदसनाहि (डॉ. राणा)
341 कीडापयति (वही)
342 सविप्रवजिते (बरुआ)
343 दर्प (वही)
344 करणाभिः (वही)
345 मुकुटे (बरुआ)
346 समतेये (डॉ. राणा)
347 शृंगारं (वही)
348 सम्पतिकम (वही)

349 पादौ वन्दयति (वही)

350 नन्दराजत्रिवर्षशतोद्घाटितां (राणा)

351 वर्त्मन: (राणा)

352 राजैश्वर्यं (वही), श्रीसरकार के मतानुसार जैनराजा खारवेल के साथ 'राजसूय' जोड़ना ठीक नहीं।

353 सर्वाकार-वर्णा (डा. राणा)

354 अनुग्रहानेकानि (राणा)

355 शतसहस्त्राणि (मुद्राणां) (वही)

356 पौरजानपदम् (राणा)

357 कंमपदान (डॉ. राणा)

358 वाहने (वही)

359 वाहनं (वही)

360 सहयति (राणा) (यति-बरुआ) सह-यत (बनर्जी)

361 सब धरावास .... (प्रिन्सिप) घरवसय (प्रिन्सिप) घरवसय (कंनिघम) घरवध ं (इन्द्र जी)

362 ज (य) (वही) जत (प्रिन्सिप)

363 अरहत (वही)

364 कल्पवृक्ष: (वही)

365 नवमे च वर्षे (वही)

366 मानतिराज सं निवास (जायसवाल) - द्वितीय वाचन वसुविजय (बरुआ)

367 दितिभिसर (कनिंघम)

368 महयन (वही)

369 प्रस्थानम् (राणा)

370 अपयातानां च (वही)

371 पुवराजनिवेसितम् (बरुआ)

372 त्रमिरदहसंघातं (मित्तल)

373 गंगायपाययति (मित्तल)

374 नंदराजजितं च कलिंगजन (बरुआ)

375 गहरतन परिहारेहिं (इन्द्रजी) कितवनय निपुरेहि (बरुआ)

376 हथिनिवास (मित्तल) हथिनबुन (प्रिन्सिप) हथि-नवेन (कनिंघम) हथिनाव (तं) (बरुआ)

377 कय्य (बरुआ) कल्ल (पाली)

378 यापूजावकेहि (मित्तल) यापुहवकेहि (प्रिन्सिप) यापुजवेहि (कनिंघम)

379 भीतनं (बरुआ)

380 चिन्नवतानं (पालि)

381 वसासितानं (बरुआ)

382 पूजानुरत् (मित्तल) पूजायरत (बरुआ)383 जीवदेहि (सायि) का (मित्तल) जि. ..देत (प्रिन्सिप) सयिका (बरुआ)

384 रखिति (प्रिन्सिप और कनिंघम) परिखात (बरुआ)

385 सबदिसानं (मित्तल)

386 सिसपुस (कनिंघम) (सम) पसि (नं) (बरुआ)

387 पक्क सिसेहि सत (सहसा) हि सिलाहि (बरुआ)

388 पहलके (प्रिन्सिप) पटालके (इन्द्रजी)

389 मुखिय (मित्तल)

390 कल (मित्तल तथा कनिंघम)

391 वोछिने (बरुआ)

392 च चोपथ अगि (प्रिन्सिप) च चेयढ अगे (कनिंघम) च चोयथ अगे (इंद्रजी) चोयढ अंगे (बरुआ)

393 सतिक (प्रिन्सिप) सतिकं (इंद्रजी) सतिकं (स्टेन कोने)

394 राजिसिवंसकुल (बरुआ)

395 विनिगत (कनिंघम)

वर्ष 1956 में प्राकृत शोध-संस्थान वैशाली (बिहार) में शिलान्यास के समय

स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का

प्राकृत साहित्य की महत्ता पर भाषण

"जैन आचार्यों और विद्वानों की एक और विशेषता उनकी रचनाओं की व्यापकता है। प्रायः सभी की भाषा प्राकृत है, परन्तु उनकी साहित्यिक परिधि महावीर-स्वामी के उपदेश और धार्मिक विषयों के विवेचन तक ही सीमित नहीं है, जैन श्रमणों ने लोकभाषा को साहित्य का वाहन बनाया था। उन युगों की देश की लोकभाषा प्राकृत थी। इस कारण प्राकृत भाषा में आज विपुल साहित्य मिल रहा है, शिलालेख मिल रहे हैं, सिक्के मिल रहे हैं। सुनते हैं कि इस भाषा के छोटे-बड़े, प्रत्येक विषय को मिलाकर एक हजार के करीब ग्रन्थ हैं जिनमें महावीर के उपदेश सम्बन्धी धार्मिक ग्रन्थसूत्र, निर्युक्कियाँ, चूर्णियाँ, भाष्य, महाभाष्य, टीका आदि के 300 से 350 ग्रन्थ हैं।

धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त लौकिक साहित्य भी जैसे काव्य, छन्द, नाटक, कोष, गणित, मुद्राशास्त्र, रत्नपरीक्षा शास्त्र, ऋतुविज्ञान, जातीय विज्ञान, भूगोल, ज्योतिष, शिल्प, कहानियाँ, चरित्र, कथानक, प्रवासकथा आदि मानव जीवन से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयों पर उत्तम-उत्तम ग्रन्थ जैन श्रमणों ने प्राकृत भाषा में लिखे हैं और जो उन्होंने लिखा, बड़ी बारीक छानबीन के साथ विस्तार से लिखा है।

इस व्यापकता के कारण जैन साहित्य अथवा प्राकृत साहित्य का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। जैसा मैंने अभी कहा, ईसा से पूर्व सातवीं शताब्दी से लेकर इधर आठवीं शताब्दी तक प्राकृत में ग्रन्थों की रचना होती रही। हमारे इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण काल में देश के विभिन्न भागों में जो राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति रही है, उस पर इस साहित्य द्वारा काफी प्रकाश पड़ता है।

प्राकृत साहित्य का अधिकांश भाग अभी भी इतिहास के साधारण विद्यार्थी की पहुँच से बाहर है और हमारी साहित्य-सम्बन्धी धारणायें प्राकृत साहित्य में दिए गए तथ्यों और विवरणों से अभी प्रभावति नहीं हो पाई हैं। इस बात से आशा होती है कि भारत के साहित्य में जो सबसे अधिक अन्धकारमय काल है, अर्थात् जिस काल के सम्बन्ध में हमारी जानकारी बहुत कम है अथवा अधिकतर अटकल पर आधारित है, उस काल के सम्बन्ध में प्राकृत साहित्य से प्रकाश पड़ता है। संभव है हमारे इतिहास की अनेकों गुत्थियाँ इससे सुलझ जायें और टूटी हुई श्रृंखलायें जुड़ जायें।"

- 'प्राकृत तीर्थ' (जुलाई-सितम्बर 2008) श्रवणबेलगोल, कर्नाटक से साभार -

महाप्रतापी राजा खारवेल

प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रासाद

"कलिंग में चेदिवंश का राज्य स्थापित हुआ। उस वंश का तीसरा राजा खारवेल बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने विदर्भ (बराड़) तक अपनी प्रभुता जमा ली और दक्खिन में पांड्य-राजा तक चढ़ाइयाँ की। सुभागसेन की मृत्यु के बाद बल्ख यूनानी राजा देमेत्रियस ने भारत का उत्तरी-मंडल जीत लिया और मध्य-देश पर चढ़ाई कर पाटलिपुत्र तक को आ घेरा। खारवेल ने तब मगध की सहायता की। यूनानियों को खदेड़ता हुआ वह उत्तरापथ तक उनके पीछे गया। मगध के अन्तिम मौर्य राजा बृहद्रथ या बृहस्पतिमित्र को अपने राष्ट्र के उस उद्धारक के सामने झुकना पड़ा।

खारवेल जैनधर्म का अनुयायी था। उड़ीसा के भुवनेश्वर के पास हाथीगुम्फा की चट्टान पर प्राकृतभाषा में उसकी प्रशस्ति खुदी है, जिसमें उसकी विजयों और प्रजाहित के अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों का तिथिवार उल्लेख किया गया है। प्राचीन ऐतिहासिक वाङ्मय का वह एक अनमोल लेख है।"

- (संस्कृत और संस्कृति, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृष्ठ 130)

इस क्षेत्र की प्राचीनता तथा विशेषता का अवलोकन करने के लिए भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबेटन एवं राजगोपालाचारी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरु, राज्यपाल डॉ. कैलासनाथ काटजू और महामहिम श्री विश्वम्भरनाथ पाण्डे यहाँ पधारे थे। श्री पाण्डे ने जैनधर्म के सिद्धान्तों पर बड़ा ही उद्बोधक भाषण दिया

था। यहाँ प्रत्येक वर्ष देश-विदेश से बहुत से ऐतिहासिक, मर्मज्ञ विद्वान् तथा कला समीक्षक आते रहते हैं।

-(श्री खण्डगिरि उदयगिरि दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र,

प्रकाशक- श्री दिगम्बर जैन समाज, कटक, निवेदन)

ब्राह्मी-लिपि एवं देवनागरी-लिपि के वर्णमाला का परिचय

'ब्राह्मीलिपि प्रवेशिका' प्रकाशक-कुन्दकुन्द भारती प्राकृतभाषा शोध-संस्थान नई दिल्ली से साभार उद्धृत।

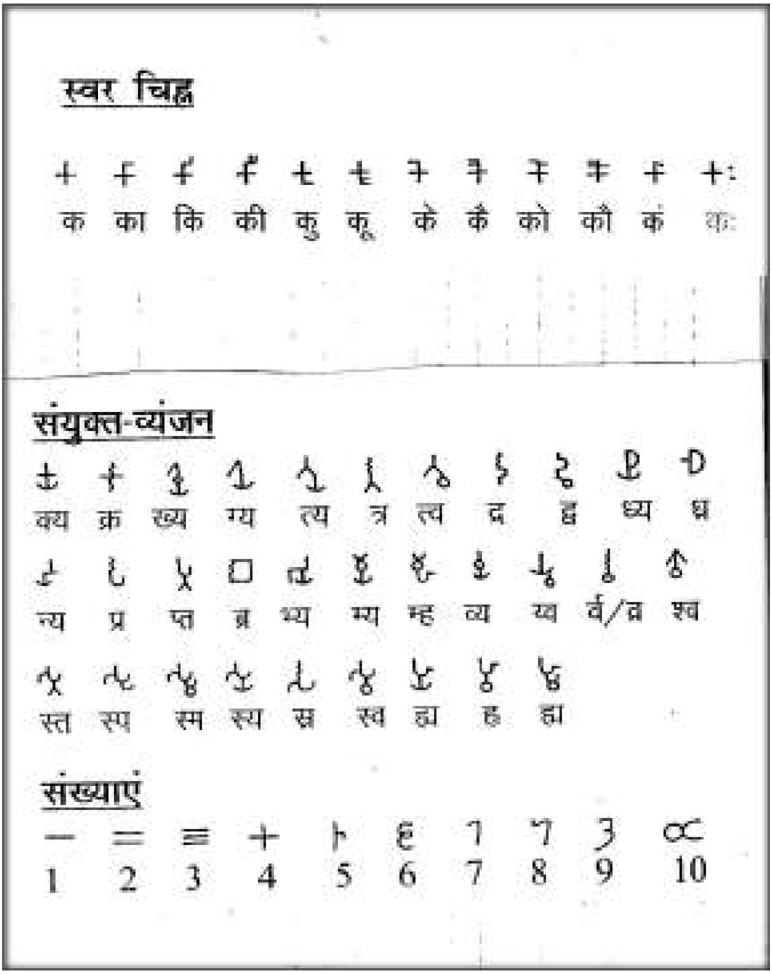

‘ब्राह्मीलिपि प्रवेशिका’ प्रकाशक–कुन्दकुन्द भारती प्राकृतभाषा शोध–संस्थान नई दिल्ली से साभार उद्धृत।

संगोष्ठी में शोध-पत्र वाचक विद्वानों का पता

1. प्रो. डॉ. राजाराम जैन
   बी-5/40 सी, धवलगिरि, सेक्टर-34, नोएडा-201301 (उ.प्र.)
   फोन न. 0120-2505808, मो. +91 9871535222

2. प्रो. किरणकुमार थपल्याल
   बी-1, 18/1 अलीगंज, सैक्टर-के, लखनऊ-226024 उ.प्र.
   फोन नं. 0522-4062924

3. डॉ. रवीन्द्र कुमार वशिष्ठ
   शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
   मो. +91 9818192925
   म्ःउंपस रू ताअेंपीजीं/हउंपसण्बवउ

4. प्रो. वीरसागर जैन
   सी-274/4 द्वितीयतल अर्जन नगर सफदरजंग एन्क्लेव नई दिल्ली-110029
   फोन नं. 011-26177207, मो. +91 9868888607
   E-mail : veersagarjain@gmail.com

5. डॉ. जयकुमार उपाध्ये
   ई-42, द्वितीयतल साकेत समीप पी.वी.आर. अनुपम सिनेमा नई दिल्ली -110017
   फोन न. 011-26537039, मो. +91 9810083412
   E-mail : drjaykumarlbs@gmail.com

6. डॉ. कल्पना जैन
   मिनि कुतुब व्यू अपार्टमेन्ट, वार्ड नं. 8, प्लाट नं. 1047/4,

फ्लैट नं. 202
काम्पीटेंट के पास, जैन दादावाडी, महरौली, नई दिल्ली–110030
फोन नं. 011–55738679, मो. +91 9868058029

7. डॉ. केशव नारायण मिश्र
राजनीतिशास्त्र –श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
4 कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली–110016

8. डॉ. कुलदीप कुमार
जैनदर्शन–विभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री
राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
4 कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली–110016

9. डॉ. रंजना जैन
बी–32 छत्तरपुर एक्सटेंशन, नंदाफार्म के पीछे, नई दिल्ली–110030

10. श्रीमती डॉ. मंजूषा संठी
शोधछात्रा–श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
4 कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली–110016

11. डॉ. रजनीश शुक्ल
57, आर.पी.एस. कॉलोनी, खानपुर, नई दिल्ली–110062

12. श्रीमती श्वेता बार्ष्णेय
शोधछात्रा–श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
4 कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली–110016

13. दिनेश
शोधछात्र–श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
4 कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली–110016

वाचस्पति सभागार में आयोजित 'प्राकृत अभिलेख' संगोष्ठी के कतिपय चित्र

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्

(मानितविश्वविद्यालयः)

कुतुबसांस्थानिकक्षेत्रम्, नवदेहली - 110016

त्रिदिवसीया राष्ट्रिया संस्कृतसंगोष्ठी-निमंत्रणम्

बुध-गुरु-शुक्र-वासरम् 9-10-11 मार्च, 2011 ई.

प्राकृतभाषाविभागीया राष्ट्रिया संगोष्ठी

- द्वितीयदिवसीयः कार्यक्रमः -

दिनाङ्क - 10/03/2011 समयः प्रातः दशवादने

विषयः-	ईसापूर्वतःप्राकृताभिलेखानां समीक्षणम्
अध्यक्षः-	प्रो. वाचस्पति उपाध्यायः कुलपतिः श्री ला.बा.शा.रा.सं. विद्यापीठम्
प्रमुख अतिथि-	प्रो. के. के. थपलियालः, लखनऊ
सारस्वतातिथि-	प्रो. के.एन. दीक्षित, भारतीयपुरातात्त्विकसंस्थान, नई दिल्ली
विषयप्रवर्तनम्-	प्रो. सुदीप कुमार जैनः सङ्कायप्रमुखः
प्रथमसत्र सञ्चालकः-	डॉ. जयकुमार उपाध्ये विभागाध्यक्षः
द्वितीयसत्र सञ्चालिकाः-	डॉ. कल्पना जैनः वरिष्ठ व्याख्यात्रिः

प्रवर्तकः

साहित्यसंस्कृतिसङ्कायः प्रमुखः

प्रो. सुदीपकुमार जैनः

संयोजकः	संयोजकः	संयोजकः
डॉ. देवदत्तचतुर्वेदी	**डॉ. इच्छारामद्विवेदी**	**डॉ. जयकुमार उपाध्ये**
अध्यक्षः साहित्यविभागः	अध्यक्षः पुराणेतिहासविभागः	अध्यक्षः प्राकृतभाषाविभागः

संप्रेषकः

डॉ. बी के. महापात्रः

कुलसचिवः

संपादक परिचय

नाम– डॉ. जयकुमार उपाध्ये

जन्मतिथि– 01, जून, 1956

जन्मस्थान– कोथली, कर्नाटक

शैक्षणिक योग्यता– प्राकृतप्रभाकर – पाथर्डी, अहमदनगर महाराष्ट्र। बी.ए. – कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़। एम.ए., पीएच.डी.– मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)।

विशेषज्ञता– प्राकृतविद्या, जैनविद्या, ज्योतिषविद्या, वास्तुविद्या, संगीतविद्या।

कार्यक्षेत्र– एसोसिएट प्रोफेसर, पूर्व अध्यक्ष प्राकृतभाषा विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं. विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

प्रकाशित ग्रन्थ–

1. दशलक्षणधर्म का उपदेश सार संग्रह।
2. सदाचार का आधार : विवाह पुस्तक का एक स्वतंत्र अध्याय।
3. श्री शांतिनाथ पूजा विधान पुस्तक।
4. अद्यतन प्रकाशित शोध–आलेख पच्चीस।

स्थायी पता– ई–42, द्वितीयतल, साकेत, समीप पी.वी.आर. अनुपम सिनेमा, नई दिल्ली–110017

ग्रन्थपरिचय

'प्राकृतभाषा–अभिलेख' इस सम्पादित ग्रन्थ में ईसापूर्व के प्राचीन प्राकृतभाषा के शिलालेखीय साहित्य का विश्रुत विशेषज्ञों के शोधपूर्ण आलेखों का प्रामाणिक संकलन है।

उक्त ग्रन्थ में प्राकृतभाषा, ब्राह्मीलिपि, चित्रलिपि, भावलिपि, खरोष्ठीलिपि, गुप्तलिपि, शारदालिपि, नागरीलिपि के अलावा भाषिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, दार्शनिक एवं राजनैतिक आदि विशिष्ट बिन्दुओं पर आधारित चिन्तन परक, शोध–आलेख प्रस्तुत हुए हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में सम्राट् अशोक एवं सम्राट् खारवेल के अभिलेखों के प्राकृतमूलपाठ, संस्कृतछाया एवं हिन्दी अनुवाद के साथ जिज्ञासुओं के लिए उपलब्ध कराया गया है। प्राकृतभाषा के उच्चशिक्षा प्राप्त करने वाले शोधार्थियों के लिए यह सामग्री अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

आई.एस.बी.एन. : 81–87987–65–0

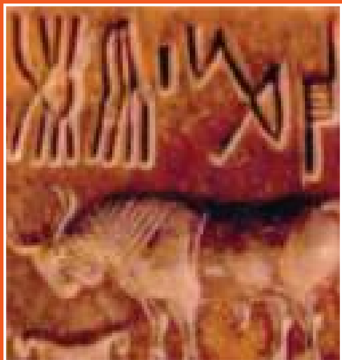

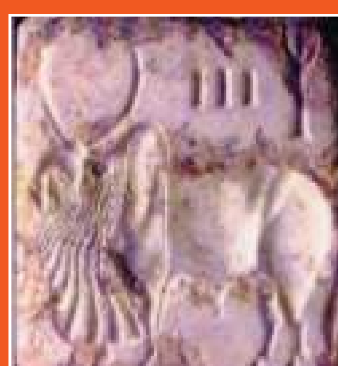

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः

बी-4, कुतुबसांस्थानिकक्षेत्रम्, नवदेहली-110016